CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत
जिज्ञासा और समाधान

डॉ. तेज सिंह टाक

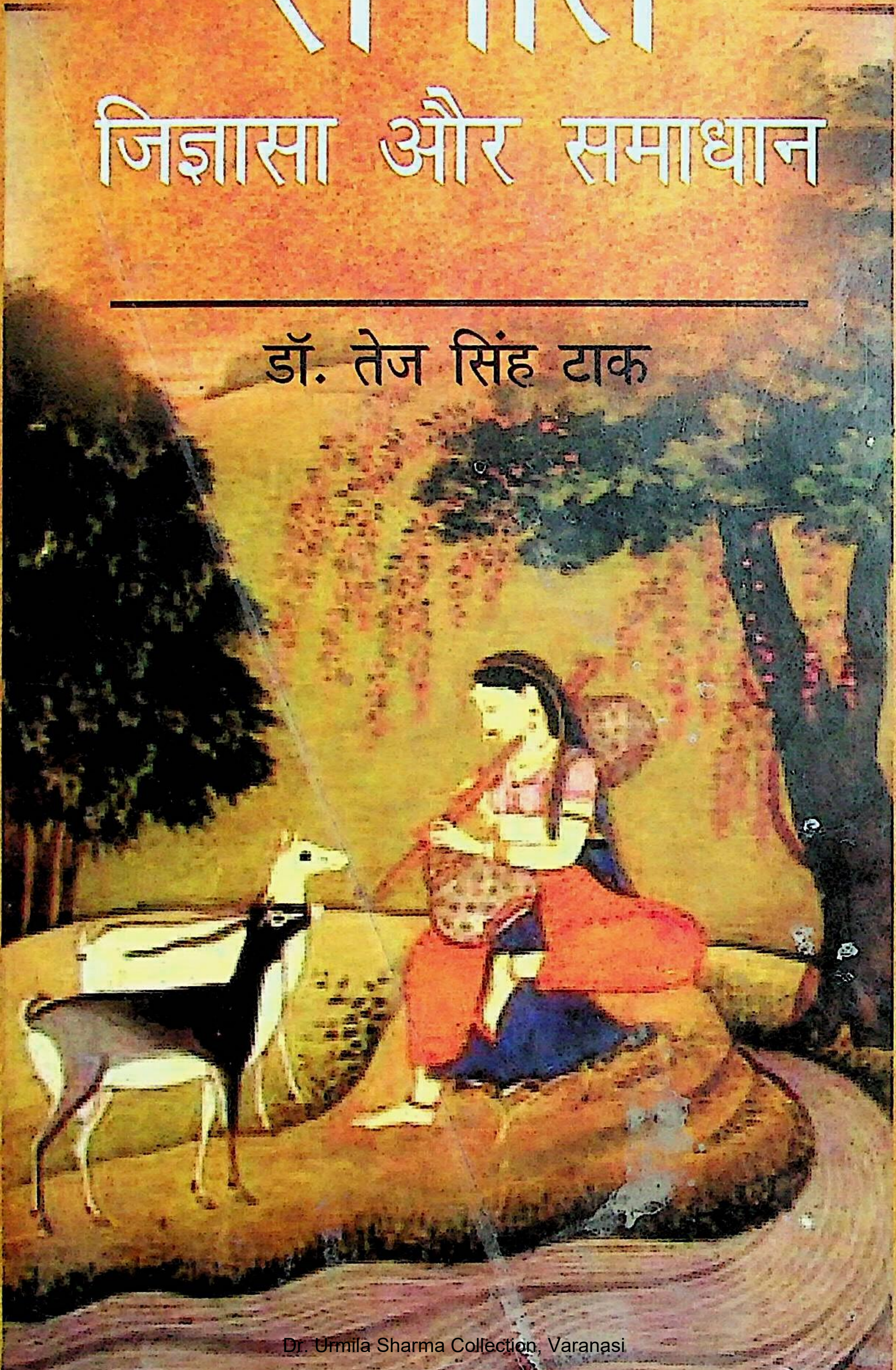

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"संगीत ही एक ऐसा ऐन्द्रिय सुख है जिसमें कोई बुराई नहीं है।" जॉनसन का यह कथन सर्वथा सत्य है। संगीत न केवल लौकिक सुख देता है वरन् अलौकिक आनन्द की भी सृष्टि करता है। आज के जटिल मशीनी युग में संगीत ही एक ऐसा वटवृक्ष दिखाई पड़ता है जिसके नीचे व्यक्ति को सांसारिक चिन्ताओं की धूप में सन्तोष की छाँव प्राप्त हो सकती है।

एक ओर जहाँ जीवन का प्रत्येक पल व्यस्त हो चुका हो वहाँ कला क्षेत्र में सुख लोभ त्याग कर रचनात्मक होना निश्चित ही अत्यन्त साहस का कार्य है। इस अर्थयुग में भी कला-संस्कृति के उत्थान हेतु यदि कोई स्वयं को समर्पित कर देता है तो यह उसकी त्याग भावना का परिचायक है।

डॉ0 तेज सिंह टाक ने एक ऐसे ही कलासेवी बनकर संगीत-शास्त्र का संगीत-व्यवहार से तादात्म्य स्थापित करने का बीड़ा उठाया है जो स्तुत्य है। इनकी पुस्तक "संगीत-जिज्ञासा और समाधान" से 'व्यवहार' और 'शास्त्र' में एक अनन्यता स्थापित होगी, इसमें सन्देह नहीं।

सर्वप्रथम व्यक्ति के जन्म के साथ ही जिज्ञासा अपने मौलिक रूप में प्रकट होती है और अन्त तक व्यक्ति जिज्ञासा की नाव पर बैठकर ज्ञान और प्रगति के नए-नए कीर्तिमानों का स्पर्श करता जाता है। संगीत में ऐसी जिज्ञासाएँ संगीत के चमकदार भविष्य का आधार बन सकती हैं और यदि साथ ही उनका समाधान भी होता चले तो उन रहस्यों से भी पर्दा उठ सकता है जिनकी अनुभूतियाँ तो होती है पर अभिव्यक्ति के लिये शब्द नहीं मिलते हैं।

डॉ0 तेज सिंह टाक की इस पुस्तक में जहाँ संगीत की पारिभाषिक शब्दावलीयाँ, विज्ञान पर आधारित विषय, अन्य संगीत-विषयक लेख और संगीत के प्रासंगिक ऐतिहासिक ग्रन्थों का समावेश है वहीं उनके अपने शोधग्रन्थ के एक महत्वपूर्ण अंश का संक्षिप्त रूप भी है जो संगीत के प्रति उनकी निष्ठा को परिलक्षित करता है।

यद्यपि यह पुस्तक स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर लिखी गई है फिर भी संगीत रसिक, शास्त्र-जिज्ञासु और शिक्षकगण भी इससे लाभान्वित होंगे ऐसा विश्वास है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

5-3
CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत
जिज्ञासा और समाधान

(विशारद, निपुण, प्रवीण, अंलकार, बी.म्यूज़, एम.म्यूज़ के विद्यार्थियों, शोधार्थियों तथा सभी संगीत-जिज्ञासुओं के लिए विशेष)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत
जिज्ञासा और समाधान

(विशारद, निपुण, प्रवीण, अंलकार,
बी.म्यूज़, एम.म्यूज़ के विद्यार्थियों, शोधार्थियों तथा
सभी संगीत-जिज्ञासुओं के लिए विशेष)

डॉ. तेज सिंह टाक

राधा पब्लिकेशन्स
नई दिल्ली-110002

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

© लेखकाधीन

प्रथम संस्करण- 2001
द्वितीय संस्करण 2012
ISBN: 978-81-7487-779-6

ISBN 81-7487-779-7
9788174877796

राधा पब्लिकेशन्स
4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002
फोन: 23247003, 23254306
Email : radhapublications@rediffmail.com
Website : www.radhapublications.com

श्री नितिन गर्ग द्वारा राधा पब्लिकेशन्स के लिए प्रकाशित तथा
एशियन ऑफसेट प्रिंटर्स, मौजपुर, शाहदरा, दिल्ली में मुद्रित।

SANGEET JIJNAASAA AUR SAMAADHAAN — DR. TEJ SINGH TAK

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समर्पण

मेरी ज्ञान-सम्भावना को आकार एवं पोषण

देने वाली परमधैर्य एवं स्नेहमयी

"बहनजी"

प्रो. प्रेमलता शर्मा को सश्रद्ध समर्पित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

– प्रथम संस्करण का –

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक की महानु-गुरुजी-स्वनामधन्या प्रो. प्रेमलता शर्मा जी की अनुजा-शिष्या डॉ. उर्मिला शर्मा के प्रोत्साहक अभिमत एवं इस पुस्तक के प्रथम संस्करण के प्रकाशकीय की यर्थाथता देखकर हम इस का यह नवीन संस्करण (संशोधित एवं परिवर्द्धित) प्रकाशित कर रहे हैं। संगीत जगत् के जिज्ञासुओं, विद्यार्थियों, शोधार्थियों के लिए यह अतीव उपयोगी निधि है, जो प्रो. प्रेमलता शर्मा की दृष्टि को अपनी प्रज्ञा से समन्वित करके उनके सच्चे शिष्य द्वारा 'गुरूदक्षिणा'-रूप में प्रस्तुत की गई है।

"संगीत ही एक ऐसा ऐन्द्रिय सुख है जिसमें कोई बुराई नहीं है।" जॉनसन का यह कथन सर्वथा सत्य है। संगीत न केवल लौकिक सुख देता है वरन् अलौकिक आनन्द की भी सृष्टि करता है। आज के जटिल मशीनी युग में संगीत ही एक ऐसा वटवृक्ष दिखाई पड़ता है जिसके नीचे व्यक्ति को सांसारिक चिन्ताओं की धूप में सन्तोष की छाँव प्राप्त हो सकती है।

एक ओर जहाँ जीवन का प्रत्येक पल व्यस्त हो चुका हो वहाँ कला क्षेत्र में सुख लोभ त्याग कर रचनात्मक होना निश्चित ही अत्यन्त साहस का कार्य है। इस अर्थयुग में भी कला-संस्कृति के उत्थान हेतु यदि कोई स्वयं को समर्पित कर देता है तो यह उसकी त्याग भावना का परिचायक है।

डॉ. तेज सिंह टाक ने एक ऐसे ही कलासेवी बनकर संगीत-शास्त्र का संगीत-व्यवहार से तादात्म्य स्थापित करने का बीड़ा उठाया है जो स्तुत्य है। इनकी पुस्तक "संगीत-जिज्ञासा और समाधान" से 'व्यवहार' और 'शास्त्र' में एक अनन्यता स्थापित होगी, इसमें सन्देह नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वप्रथम व्यक्ति के जन्म के साथ ही ज़िज्ञासा अपने मौलिक रूप में प्रकट होती है और अन्त तक व्यक्ति जिज्ञासा की नाव पर बैठकर ज्ञान और प्रगति के नए-नए कीर्तिमानों का स्पर्श करता जाता है। संगीत में ऐसी जिज्ञासाएँ संगीत के चमकदार भविष्य का आधार बन सकती हैं और यदि साथ ही उनका समाधान भी होता चले तो उन रहस्यों से भी पर्दा उठ सकता है जिनकी अनुभूतियाँ तो होती है पर अभिव्यक्ति के लिये शब्द नहीं मिलते हैं।

डॉ. तेज सिंह टाक की इस पुस्तक में जहाँ संगीत की पारिभाषिक शब्दावलीयाँ, विज्ञान पर आधारित विषय, अन्य संगीत-विषयक लेख और संगीत के प्रासंगिक ऐतिहासिक ग्रन्थों का समावेश है वहीं उनके अपने शोधग्रन्थ के एक महत्वपूर्ण अंश का संक्षिप्त रूप भी है जो संगीत के प्रति उनकी निष्ठा को परिलक्षित करता है।

यद्यपि यह पुस्तक स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर लिखी गई है फिर भी संगीत रसिक, शास्त्र-जिज्ञासु और शिक्षकगण भी इससे लाभान्वित होंगे ऐसा विश्वास है।

कहना अनुचित न होगा कि डॉ. तेज सिंह टाक ने प्रज्ञाचक्षु होते हुए भी इतना महत्वपूर्ण संकल्प लेकर समाज को एक वन्दनीय प्रेरणा दी है।

बेकराँ आलमी फ़ाउण्डेशन की ओर से इस पुस्तक के प्रकाशन में सभी सहयोगियों के अतिरिक्त पुस्तक की क्लिष्ट संरचना को अपेक्षित ढंग से कम्पोज़ करने के लिये श्री कपिल चाँदवानी और उनके सहायकद्वय श्री अरविन्द प्रताप सिंह एवं अजित अग्रवाल को आभार तथा आकर्षक आवरण योजना के लिए श्री प्रकाश तिवारी को धन्यवाद।

अन्त में इस संस्करण की सफलता की कामना और अगले संस्करण के लिए विद्वज्जनों की मूल्यवान टिप्पणियों की प्रतीक्षा के साथ-

विश्वासपूर्ण आशा है कि संगीतजगत् के पाठक इस का भरपूर स्वागत करेंगे।

बेकराँ आलमी फ़ाउण्डेशन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

सामान्यतया संगीत सम्बन्धी साहित्य दो प्रकार का प्राप्त है- (1) विचारोत्तेजक, विश्लेषणात्मक और विवराणात्मक तथा (2) विभिन्न पाठ्यक्रमों पर आधारित परीक्षोपयोगी। इन दोनों प्रकारों में एक बड़ा अन्तराल है।

प्रथम प्रकार के उपलब्ध साहित्य में संगीत के विषय में अत्यन्त गहन और गम्भीर सामग्री है जो इतने उच्चस्तर की है कि वह केवल शोधार्थियों या सम्बन्धित विद्वानों के ही उपयोग में आ सकती है। उस साहित्य से सामान्य विद्यार्थी समुचित लाभ नहीं उठा पाता है, और दूसरे प्रकार के साहित्य से संगीत सम्बन्धी जो जानकारी मिलती है वह अपर्याप्त होती है। वह साहित्य निम्न स्तर की कक्षाओं से लेकर अधिकतम स्नातक स्तर तक की जिज्ञासाओं को ही शान्त कर पाता है अतः बीच में एक शून्य की स्थिति है जिसको भरना संगीत के भविष्य के लिये अपरिहार्य है। अब चूंकि संगीत को विधिवत् शिक्षा का एक विषय स्वीकार कर लिया गया है अत्तः विश्वविद्यालय-स्तर पर संगीत-शास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकों की आवश्यकता का अत्यधिक अनुभव किया जा रहा है। अभी तक स्नातक या विशारद स्तर की संगीत-शास्त्र की परीक्षाओं में अधिकाँशतः प्रायोगिक संगीत या Practicle के प्रश्न ही पूछें जाते हैं अतः विद्यार्थी आसानी से सन्तोषजनक अंक प्राप्त कर लेते हैं और शास्त्र की ओर से उदासीन रहते हैं। उन्हें यह भ्रम भी रहता है कि प्रयोग के ज्ञान से ही वे शास्त्र में भी पारंगत हैं क्योंकि लिखित परीक्षा के पर्याप्त अंक उनकी इस मान्यता को पुष्ट करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्नातक के बाद परास्नातक-स्तर पर यह समस्या व्यापक हो जाती है क्योंकि उनके स्तर के अनुरूप शास्त्र की पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। यदि वे परीक्षोपयोगी पुस्तकों का अध्ययन करते हैं तो उनकी आवश्यकता की पूर्ति सीमित हो जाती है और यदि संगीत-सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों को पढ़ने का प्रयास करें तो भाषा की क्लिष्टता और विषय की दुरूहता के कारण न केवल तथ्य उनकी समझ से परे रहता है वरन् एक विशेष प्रकार की अरुचि भी उत्पन्न होने का भय रहता है। हमने इन्हीं समस्याओं के समाधान का प्रयास किया है और इस विश्वास के साथ कि हमारे इस प्रयास से विद्यार्थियों की समस्याएँ अवश्य ही किसी हद तक सुलझेंगी और मात्र परीक्षा ही नहीं बल्कि पाठ्यक्रमोत्तर जानकारी भी उन्हें हो सकेगी। सरल भाषा, सहज शैली और बोधगम्यता को ध्यान में रखते हुए विषय को यथासम्भव प्रामाणिक बनाने का भी हमारा प्रयास रहा है। यद्यपि हमारी व्यक्तिगत निष्ठा राष्ट्रभाषा हिन्दी और देवनागरी के प्रति है अतएव प्रस्तुत पुस्तक में वर्तनी (Spelling) की शुद्धता का भी विशेष ध्यान रखा गया है। नाट्य-शास्त्र और संगीत-रत्नाकार को आधार बनाकर यदि विभिन्न विषयों की शास्त्रीय व्याख्या की गई है तो ध्वनि-विज्ञान सम्बन्धी गुत्थियाँ प्रो. ललित किशोर सिंह के ग्रन्थ 'ध्वनि और संगीत' के आधार पर सुलझाई गयी हैं।

प्रस्तुत पुस्तक "संगीत : जिज्ञासा और समाधान" की रचना की पृष्ठभूमि में प्रायः पच्चीस वर्ष पहले प्रो. प्रेमलता शर्मा जी के निर्देशन और कठोर अनुशासन में किया गया अध्ययन है। उस समय भी और आज भी बाहरी दृष्टिहीनता ने बड़ी बाधाएँ उत्पन्न कीं किन्तु शायद यह संकल्प पूरा होना था इसलिए मुझे अपनी स्मरण शक्ति को विकसित कर उसकी निर्भरता बढ़ानी पड़ी जिससे इस पुस्तक में किसी विषय के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी तथ्यों से बचा जा सका है अतः जो बाह्य दृष्टिहीनता ज्ञानार्जन में बाधक थी वही विषय को आत्मसात् करने में साधक सिद्ध हुई।

शास्त्रीय संगीत का अर्थ है वह संगीत जो शास्त्र पर आधारित हो, पर वस्तुस्थिति में शास्त्र और व्यवहार दोनों क्षेत्र इतने व्यापक हैं कि एक ही व्यक्ति दोनों में पारंगत हो ऐसा प्रायः असम्भव होता है। अब आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षित कलाकार शास्त्र की ओर तथा शास्त्रज्ञ संगीत के व्यवहार की सूक्ष्मता की ओर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्मुख हों और एक दूसरे को संगीत का पूरक मानते हुए पर्याप्त आदर प्रदर्शित करें। क्योंकि ये दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं। पूर्वाग्रहों से मुक्त सद्‌भाव की परम्परा भारतीय संगीत को निरंतर उन्नति के शिखर की ओर ले जाएगी इसमें सन्देह नहीं है।

इस पुस्तक में कतिपय स्थानों पर टेम्पर्ड-स्केल वाले वाद्य-यन्त्रों या दक्षिण भारतीय संगीत के बारे में कुछ टिप्पणियाँ हो गई हैं जो विषय को स्पष्ट करने हेतु वाञ्छित थीं।

किसी कार्य की समालोचना ही उसके परिमार्जन का मार्ग प्रशस्त करती है अतः यदि इस पुस्तक के सन्दर्भ में विद्धज्जनों के बेबाक एवं स्वस्थ विचार प्राप्त होंगे तो हमें अत्यन्त संतोष होगा।

पुस्तक रचना किसी यज्ञ से कम नहीं होती और मेरे लिए तो इसकी प्रत्येक आहुति दूसरों के सहयोग से सम्भव हुई। मेरी ओर से इन सभी सहयोगियों को सामूहिक धन्यवाद। माँ सरस्वती द्वारा प्रदत्त अन्तर्ज्ञान को पुस्तकीय रूप में परिवर्तित करने का श्रेय शेष सहयोगियों के अतिरिक्त मुख्य रूप से निर्मल दर्शन और कु. दिव्या श्रीवास्तव को जाता है इन्हें हृदय से आशीर्वाद। परिवार के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन मैं इसलिए अनुचित समझता हूँ कि मेरे घर के सभी सदस्य तो मेरे जीवन के प्रकाश-स्तम्भ हैं। मेरी धर्मपत्नी उमा देवी के धैर्यपूर्ण आजीवन सहयोग का कोई मूल्य नहीं चुकाया जा सकता। मैं इन सभी के लिए ईश्वर से सत्‌कामना करता हूँ।

मैं भारतखण्डे संगीत-संस्थान की कुलपति महोदया श्रीमती पूर्णिमा पाण्डे का भी आभार व्यक्त करता हूँ कि इन्होंने मुझे स्नातकोत्तर कक्षाओं में संगीत-शास्त्र के अध्यापन का अवसर दिया जिससे मुझे विद्यार्थियों की शास्त्रगत समस्याओं से प्रत्यक्षतः जुड़ने का अवसर मिला। वाराणसी की डॉ. सुभद्रा चौधरी, डॉ. ऊर्मिला शर्मा एवं लखनऊ के श्री के.के. कपूर भी धन्यवाद के पात्र हैं जिनकी प्रेरणा, परामर्श एवं सहयोग से इस पुस्तक का प्रणयन सम्भव हुआ। भातखण्डे-संस्थान के पुस्तकालय के श्री अखिलेश मिश्र के सहयोग के प्रति भी कृतज्ञ हूँ।

मैं अपने गुरु तुल्य पद्‌मश्री पं. बलवन्त राय भट्‌ट और पं. गणेश प्रसाद मिश्र का आभारी हूँ कि उन्होंने इस अकिंचन को प्रस्तुत पुस्तक के लिए आशीर्वचन प्रदान किए।

अब उन गुरुओं, विशेष कर मेरी शोध निर्देशिका प्रो. प्रेमलता शर्मा को प्रणाम करता हूँ जिनके संरक्षण में संगीत-शास्त्र के प्रति मेरी रुचि जागृत और पल्लवित हुई। इन स्मृतियों को नमन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्त में उस परमेश्वर के प्रति श्रद्धा व्यक्त करता हूँ जिसकी असीम कृपा से अनेक बाधाओं के उपरान्त भी यह पुस्तक अस्तित्व में आ सकी।

सुहृद विद्वानों से, शिक्षकों से तथा योग्य विद्यार्थियों से प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा है। उनकी अमूल्य राय भविष्य की रचना में मार्गदर्शन करेगी।

सबके सहयोग का प्रार्थी

डॉ. तेज सिंह टाक

कार्तिक पूर्णिमा
30 नवम्बर, 2001
लखनऊ

द्वितीय संस्करण की भूमिका

पिछले कुछ वर्षों से "संगीत : जिज्ञासा और समाधान" के पुनः प्रकाशन की माँग आ रही थी क्योंकि पाठक इस पुस्तक की कमी शिद्दत से महसूस कर रहे थे, अब ईश्वर की अनुकम्पा से इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इसे पाठकों के हाथ मे सौंपते हुए मुझे आनंद की अनुभूति हो रही है। प्रथम संस्करण के कुछ शीर्षक जैसे- संगीत, वाग्गेयकार, आविर्भाव- तिरोभाव आदि को इसमे से हटा दिया गया है और कुछ नये शीर्षक जैसे- प्रणव भारती, भरत का संगीत सिद्धान्त आदि को इसमें सम्मिलित किया गया है। वर्तनी को पाठकों की माँग के अनुसार सरल कर दिया गया है तथा सूक्ष्म संशोधनों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

लखनऊ
15 जुलाई, 2011
व्यासपूर्णिमा

डॉ. तेज सिंह टाक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय सूची

प्रथम-अध्याय

1. श्रुति 1

श्रुति की परिभाषा, श्रुतियाँ की संख्या, श्रुतियाँ समान-असमान और सारणा-चतुष्टयी, आन्दोलन संख्या को लेकर, वीणा के तार की लम्बाई के आधार पर, सेवर्ट विधि से, श्रुतियों पर स्वरों की स्थापना, श्रुति और स्वर में सम्बन्ध श्रुति-जातियाँ, श्रुतियों के नाम

2. ग्राम-मूर्च्छना 24

ग्राम-मूर्च्छना, ग्राम, पूर्ण-ग्राम, मध्यम-ग्राम, मूर्च्छना, मूर्च्छना का उद्‌देश्य, बृहद्‌देशी की द्वादश-स्वर-मूर्च्छना

3. जाति-गान 37

शुद्ध-जातियाँ, संसर्गजा, जाति-भेद, अंश भेद से

4. गांधर्व-गान 41

गांधर्व-गान, मार्ग-देशी, गान्धर्व

5. प्रबन्ध 48

प्रबन्ध का इतिहास, प्रबन्ध की तुलना पुरुष से प्रबन्धों की जातियाँ, प्रबन्धों के भेद-उपभेद, सूड प्रबन्ध, आलिक्रम, विप्रकीर्ण, स्वरार्थ-प्रबन्ध, चतुरंग-प्रबन्ध, तिरविट-प्रबन्ध, कैवाड-प्रबन्ध, विचारणीय बिन्दु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय अध्याय

1. भारतीय-संगीत में वैज्ञानिकता 59

शुद्ध-सप्तक, हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति के दस-थाट, संवाद-विवाद, मुस्लिम गायक-वादकों का उद्गम, उर्दू-फारसी के संगीत-ग्रन्थ

2. नाद 65

आहत-नाद, अनाहत-नाद, प्रहार द्वारा, घर्षण द्वारा, वायु को भरकर या निकाल कर, नाद के तीन लक्षण या विशेषताएँ, तारता या नाद का ऊँचा-नीचापन, तापमान का प्रभाव, तीव्रता छोटा-बड़ापन, नाद की जाति या टिम्बर, आवर्तकों की संख्या के कारण, आवर्तकों के क्रम के कारण, आवर्तकों की प्रबलता के कारण

3. ड्रोन या स्वारित 76

ड्रोन या स्वारित

4. संवाद-विवाद 80

परिणामी स्वरों का संवाद-विवाद पर प्रभाव, उप स्वरों का संवाद-विवाद पर प्रभाव, षड्ज-पंचम संवाद, षड्ज-मध्यम संवाद, षड्ज-गांधार संवाद षड्ज-धैवत संवाद, षड्ज-कोमल गांधार संवाद, षड्ज-कोमल धैवत संवाद

5. स्वरान्तर 91

प्रथम अन्तराल, दूसरा अन्तराल, तीसरा अन्तराल, चौथा अन्तराल, पाँचवाँ अन्तराल, छठा अन्तराल, सातवाँ अन्तराल, आठवाँ अन्तराल या सप्तकान्तर, स्वरान्तर निकालने के विधि, अति इष्ट स्वरान्तर, इष्ट-स्वाान्तर, अनिष्ट- स्वरान्तर-अन्तराल, अतिअनिष्ट-स्वरान्तर

6. शुद्ध-विकृत स्वर और ग्राम 96

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

7. हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति के दस-थाट 102

दस थाट, दस थाटों की वैज्ञानिकता, थाट या मेल बनाने के छह नियम, यमक का नियम

8. ग्राम अथवा सप्तक बनाने की विधि 111

प्राकृतिक ग्राम, चक्रिक-प्रक्रिया, हारमोनियम की सहायता से, गणित के माध्यम से, सेवर्ट विधि, सङ्क्रमिक-प्रक्रिया, द्विस्वरक ग्राम या डायटोनिक स्केल, श्रुतिमूलक ग्राम या इनहार्मोनिक स्केल, सम-साधृत ग्राम या टेम्पर्ड स्केल

तृतीय अध्याय

1. संगीत-रत्नाकर 125

संगीत रत्नाकर, वातावरण, विषय वस्तु, स्वराध्याय, संगीत की परिभाषा, पिण्डोत्पति, नाद स्थान, श्रुति, स्वर आदि, नाद की व्यापकता, स्थान, श्रुति, स्वर, ग्राम-मूर्च्छना, खण्ड मेरु, साधारण प्रकरण, वर्ण-अलंकार प्रकरण, जाति प्रकरण, गीति प्रकरण, सम्भाविता, पृथुला, रागविवेकाध्याय, ग्राम-राग देशी-राग, प्रकीर्णकाध्याय, आवाज़ के गुण-दोष, वृन्दगान, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय, तत वाद्य, सुषिर वाद्य, आनद्ध या अवनद्ध वाद्य, घनवाद्य, नृत्याध्याय

2. स्वरमेल-कलानिधि 141

उपोद्घात प्रकरण, स्वर प्रकरण, हिन्दुस्तानी स्वरों के अनुसार रामामत्य के स्वर, वीणा प्रकरण, राग प्रकरण

3. चतुर्दण्डी-प्रकाशिका 148

विषय वस्तु, वीणा प्रकरण, श्रुति प्रकरण, स्वर प्रकरण, मेल प्रकरण, राग प्रकरण, आलाप प्रकरण, ठाय (स्थाय) प्रकरण, गीत प्रकरण, प्रबन्ध प्रकरण, ताल प्रकरण, निष्कर्ष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

4. संगीत परिजात 158

काल, स्थान, शुद्ध सप्तक, विकृत स्वर, शुद्ध अवस्था से स्वरों को ऊँचा करके, शुद्ध अवस्था से स्वरों को नीचा करके, मूर्च्छना व मेल, वीणा पर लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापना, रागों का विवेचन, रागों का रसों से सम्बन्ध

5. राग तत्व विबोध 167

विषय वस्तु प्रस्तावना, श्रुति-जाति प्रकरण, ग्राम-मूर्च्छना प्रकरण गमक प्रकरण, मेल-लक्षण प्रकरण, राग प्रकरण, श्रुति-निर्णय

6. श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् 173

लक्ष्य संगीत का नाम, विषय वस्तु, स्वराध्यायस्वर, दस थाट, रागाध्याय, रागों का इतिहास, उद्देश्य

7. अभिनव राग-मंजरी 179

स्वराध्याय, उद्देश्य, संगीत, नादोत्पत्ति, श्रुतियों के नाम, श्रुति-स्वर व्यवस्थिति, सप्तक, विकृत स्वर, वीणा पर स्वरों की स्थापना, वादी-संवादी ग्रह न्यास, वर्ण लक्षण, अलंकार, गमक, ग्राम, मूर्च्छना, मेल, राग लक्षण, जनक-मेल (मेल स्वरूप), आलाप, सुगायक-दुर्गायक, शरीरम्, रागाध्याय, कल्याण मेल के अन्तर्गत 13 राग, विलावल मेल के 18 राग, खमाज मेल के 11 राग, भैरव मेल के अन्तर्गत 10 राग, भैरवी मेल के 5 राग, तोड़ी मेल के अन्तर्गत 3 राग

8. प्रणव भारती 186

लेखक परिचय, ग्रन्थ परिचय, परिशिष्ट

9. भरत का संगीत सिद्धान्त 202

लेखक परिचय, ग्रन्थ परिचय, अनुबन्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थ अध्याय

1. स्वरोच्चार 219

मींड, कण, खटका, मुर्की, आन्दोलन

2. रागों का ऋतुओं से सम्बन्ध 225

3. राग-रागिनी वर्गीकरण 229

चार मतों के राग-रागिनियाँ

4. मेलोडी व हार्मोनी 237

मेलोडी का क्षेत्र, हार्मोनी, मेलोडी और हार्मोनी का अन्तर्सम्बन्ध, मेजर कार्ड्स, माइनर कार्ड्स

5. कटपयादि संज्ञा एवं बहत्तर मेल 242

6. छन्द और ताल में सम्बन्ध 250

लघु, गुरु, संगीत में लघु-गुरु की अवधारणा, वार्णिक छन्द, मात्रिक छन्द, छन्द के चार चरण, छन्दों का तालों से सम्बन्ध, प्रथम प्रकार, दादरा, कहरवा, तीव्रा, रूपक और धमार, सादरा अथवा झपताल, त्रिताल, द्वितीय प्रकार

7. लयकारी 261

सरल लयकारी, जटिल लयकारी, सरल लयकारियाँ लिखने की विधि, प्रथम विधि, द्वितीय विधि, जटिल लयकारियाँ लिखने की विधि, बियाड़

8- संगीत में लय का महत्व 270

9. साहित्य और संगीत का सम्बन्ध 275

साहित्य और संगीत में समानता, अलंकार, रस, ताल और छन्द, छन्द और ताल में अन्तर, काकु का महत्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट-1

संगीत-सम्बन्धी ग्रन्थों में गणित का महत्त्व 280

स्वर प्रस्तार, वीणा पर स्वरों की स्थापना, मेल, कटपयादि संज्ञा, ताल प्रस्तार

सहायक ग्रन्थों की संकेत सूची 300

परिशिष्ट-२

(डॉ. रमापन्त के हेतु)

(शोधप्रबन्ध का सार)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम अध्याय

श्रुति

श्रुतियों पर विचार करते समय निम्नलिखित बिन्दु सामने आते हैं:-

(1) श्रुति की परिभाषा, (2) श्रुतियों की संख्या, (3) श्रुतियाँ समान या असमान होना और सारणा चतुष्टयी, (4) श्रुतियों पर स्वरों की स्थापना और ग्राम में श्रुतियों की व्यवस्था, (5) श्रुति व स्वर में सम्बन्ध, (6) श्रुतियों की जातियाँ और (7) श्रुतियों के नाम।

1- श्रुति की परिभाषाः- 'श्रूयते इति श्रुतिः' अर्थात् जो ध्वनि कानों को सुनाई दे वह श्रुति है परन्तु इस परिभाषा से तो वे सभी प्रकार की ध्वनियाँ श्रुति हो सकती हैं जो हमें सुनाई देती हैं लेकिन यदि संगीत की दृष्टि से देखें तो सारी ध्वनियाँ श्रुतियाँ नहीं हो सकती हैं।

किसी भी ध्वनि को उत्पन्न करते समय आरम्भ में जो आघात किया जाता है उससे उत्पन्न ध्वनि की इकाई ही श्रुति है और उसके बाद होने वाला अनुरणन, स्वर होता है। घण्टे पर हथौड़े के प्रहार से आरम्भ में जो 'टन्' जैसी पहली ध्वनि सुनाई देती है वह श्रुति है और उसके बाद होने वाली गूँज स्वर है। स्वर के लिए गूँज या ध्वनि की निरन्तरता के साथ-साथ आधार-स्वर से उसका सम्बन्ध होना भी आवश्यक है। स्वर की परिभाषा में 'श्रुत्यनन्तर-भावी' (सं.र.1,पृ.82) कहा गया है, यानी श्रुति के बाद में होने वाला नाद। परन्तु इस परिभाषा से भी उक्त ध्वनि, संगीत की श्रुति नहीं हो सकती है क्योंकि प्रत्येक कटु या मधुर ध्वनि के आरम्भ में प्रहार से उत्पन्न होने वाली मौलिक ध्वनि तो होगी ही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाट्यशास्त्र की टीका 'अभिनव-भारती' में अभिनव गुप्त ने स्वर की परिभाषा देते हुए कहा है किः-

'श्रुतिस्थानाभिघातप्रभवशब्दप्रभावितोऽनुरणनात्मा स्निग्धमधुरः शब्द एव स्वरः।'

(नाशा.4अभि.भा.,पृ.11)

अर्थात् श्रुति उत्पन्न करने वाले स्थान पर प्रहार से निकला ध्वनि है जिसके अनन्तर स्वर गूँजने वाला है यानि तन्त्री आदि के उस स्थान-विशेष पर आघात से उपयुक्त तारता (Pitch) की ध्वनि निकलने वाली है वही संगीतोपयोगी श्रुति है। इस प्रकार प्रहार से उत्पन्न ध्वनि श्रुति हो गई और तदनन्तर अनुरणनात्मक स्निग्ध मधुर ध्वनि स्वर कहलाई।

अभिनवगुप्त ने श्रुति शब्द का प्रयोग तीन तरह से अर्थों में किया हैः- रक्त या अरक्त ध्वनि, ध्वनि के स्थान और उनके अंतराल। परवर्ती संगीत शास्त्रियों ने भी "स्थान अंतराल और तारता का श्रुति शब्द से ही नामकरण कर अभिनव का ही अनुकरण किया है।"

एक सप्तक में वे छोटे-छोटे अन्तराल जो मध्य-षड्ज से उसके दुगुने ऊँचे तार-षड्ज तक हों, संगीत में उपयोग होने वाली श्रुतियाँ होती हैं। ये अन्तराल एक-दूसरे से कुछ ऊँचे होने चाहिएँ। जैसे किसी मकान की छत पर जाने के लिए सीढ़ियाँ होती हैं, यदि वे बड़ी-बड़ी होंगी तो उनकी संख्या कम होगी, जिन्हें स्वर कहा जा सकता है। यदि ये सीढ़ियाँ कुछ छोटी कर दी जाएँ तो उनकी संख्या अधिक हो जाएगी, तब ये शुद्ध और विकृत स्वर हो जाएँगे जो क्रमशः सात व बारह हैं; यदि सीढ़ियाँ और अधिक छोटी कर दी जाएँ तो यह संख्या बाइस हो सकती हैं, यही श्रुतियाँ हैं। अब प्रश्न यह हो सकता है कि बाइस ही क्यों, इससे अधिक या कम क्यों नहीं? इसका उत्तर है कि श्रुति के लिए निम्न कसौटी हैः-

(1) जो स्पष्ट सुनाई दे अर्थात् एक दूसरे से अलग पहचानी जा सके यानी कान उन छोटे अन्तरालों को आसानी से ग्रहण कर सके।

(2) छोटे अन्तराल के नाद (गूँज) जो सुनने में मधुर हो उन्हीं के आरम्भ का कठोर नाद ही श्रुति है।

(3) जो अलग-अलग रागों में स्वर का रूप धारण कर सके। इस नियम से इन श्रुतियों का आकार निश्चित हो जाएगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब यह स्पष्ट हुआ कि मात्र वे बाईस ध्वनियाँ जो सारणा-प्रक्रिया से सिद्ध होती है, किन्तु उसके अनन्तर अनुरणनात्मक ध्वनि स्वर बनती है, जिनका आधार स्वर से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। जो वाद्य आदि के माध्यम से स्पष्ट सुनी जा सकती हैं, वे ध्वनियाँ श्रुति कहलाती हैं।

2. श्रुतियों की संख्याः- श्रुतियों की संख्या 1, 2, 3, 4, 9, 22, 66 व अनन्त श्रुतियाँ कही गई हैं। 'श्रुति एक ही है' कहने वालों का मत है कि प्रत्येक ध्वनि के आरम्भ का जो नाद है वही श्रुति है।

दो प्रकार की श्रुतियाँ मानने वालों में विश्वावसु हैं इनके अनुसार पहली शुद्ध स्वरों की और दूसरी अन्तर श्रुति है, जो कि दो स्वरों के मध्य स्थित है। शुद्ध स्वर 7 हैं शेष (22-7)=15 अन्तर श्रुतियाँ हुईं।

चूँकि सप्तक तीन (मन्द्र, मध्य व तार) होते हैं अतः श्रुतियाँ भी तीन प्रकार की हो सकती हैं।

चार श्रुतियाँ मानने वालों के मत से आयुर्वेद के अनुसार शरीर में प्रमुख तीन धातु होते हैं अतः जिस धातु से जो व्यक्ति अधिक प्रभावित होता है उस व्यक्ति के कण्ठ की श्रुति उस धातु की होगी। ये धातु- कफ़, पित्त, वात, इन तीनों का मिश्रण सन्निपात के नाम से जाना जाता हैं। इस प्रकार चार श्रुतियाँ हो सकती हैं।

नौ श्रुतियाँ मानने वालों का यह कहना है कि स्वर तीन ही हैं जो चार, तीन और दो श्रुति के होते हैं। तीनों को मिलाकर (4+3+2) कुल 9 श्रुतियाँ होती हैं क्योंकि शेष सप्तक मैं इन अन्तरालों की पुनरावृत्ति ही है। अतः सभी स्वर (4, 3, 2) श्रुति के ही हैं।

बाईस श्रुतियाँ मानने वालों का कहना है सातों स्वरों को मिलाकर (षड्ज, मध्यम, पञ्चम की चार-चार; ऋषभ, धैवत की तीन-तीन; गान्धार, निषाद की दो-दो) कुल 22 श्रुतियाँ होती हैं। प्रायः सभी ग्रन्थकार बाईस श्रुतियों की संख्या से सहमत हैं। 'चतुर्दण्डी-प्रकाशिका' का यह श्लोक तो प्रसिद्ध ही है:-

'चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यम पञ्चमा:,
द्वे-द्वे निषादगान्धारो त्रिस्त्री रिषभ धैवतो।' (चतु.प्र.,पृ.-44)

छियासठ श्रुतियाँ मानने वाले मन्द्र, मध्य, तार तीनों सप्तकों या स्थानों की बाईस-बाईस श्रुतियाँ मानते हैं। तीनों स्थानों की 22+22+22=66 श्रुतियाँ हुईं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनन्त श्रुतियाँ मानने वालों में कोहल प्रमुख है, उनके अनुसार श्रुतियों की संख्या को मापा नहीं जा सकता, यह तो जैसे आकाश में पक्षियों के लिए रास्ता निश्चित नहीं किया जा सकता या समुद्र की लहरो को नहीं गिना जा सकता ठीक उसी प्रकार संगीत में अलग-अलग स्वर संगतियों के अनुसार कलाकार अलग-अलग श्रुतियों के प्रयोग से स्वरों को लगाता है। जिस कलाकार का जितना अधिक अनुभव होता है वह इन अनन्त श्रुतियों के प्रयोग से अपने गायन व वादन को उतना ही अधिक प्रभावी बनाता है अतः इनकी संख्या निश्चित नहीं की जा सकती है।

3. श्रुतियाँ समान-असमान और सारणा-चतुष्टयीः- श्रुतियों के माप के विषय में प्राचीन व मध्यकालीन ग्रन्थों में कुछ नहीं कहा गया है। भरत व शार्गदेव ने श्रुति-विवेचन बहुत ही संक्षिप्त किया है। उनके द्वारा किए गए वर्णन को लेकर वर्तमान के विद्वानों में दो मत हैं। पं. भातखण्डे व उनकी परम्परा के विद्वान प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुतियों को समान मानते हैं। पं. विष्णु दिगम्बर की परम्परा के तथा कुछ अन्य धारा के विद्वानों का मत है कि श्रुतियाँ कभी भी समान नहीं हो सकतीं। दोनों ही मतों का आधार सारणा-चतुष्टयी है जिसके द्वारा प्राचीन ग्रन्थकारों ने श्रुतियों की सिद्धि के लिए एक प्रयोग दिया है। यहाँ उसे भरत मुनि के ही शब्दों में प्रस्तुत किया जा रहा है। जिसे 5 भागों में बांट कर विषय को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है-

(1) दोनों वीणाओं को षड्ज ग्राम में मिलाना (2) पहली सारणा
(3) दूसरी सारणा (4) तीसरी सारणा (5) चौथी सारणा

(1) द्वे वीणे तुल्यप्रमाणतन्त्र त न् त् र् युपवादनदण्डमूर्च्छने कृत्वा षड्जग्रामाश्रिते कार्ये।

अर्थात् दो ऐसी वीणाएँ लें जिनका आकार, नाद, तन्त्रियाँ, दण्ड आदि समान नाप के हों। सर्वप्रथम दोनों वीणाओं को षड्ज-ग्राम में मिला लें। इनमें से एक का नाम ध्रुव-वीणा है और दूसरी का चल-वीणा। दोनों वीणाओं में सात-सात तार हैं। प्रथम तार को कहीं भी मिला लें जो षड्ज होगा। चौथा तार षड्ज-मध्यम संवाद के आधार पर मध्यम में मिला लें। सेवर्ट विधि में षड्ज शून्य है तो मध्यम 125 पर हुआ। पाँचवें तार को षड्ज से संवाद करते हुए षड्ज-पञ्चम भाव से मिला लें। सेवर्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विधि में षड्ज-पञ्चम का अन्तराल 176 सेवर्ट होता है। मध्यम (चौथा तार) को षड्ज मानकर षड्ज-मध्यम भाव से, सातवें तार को निषाद (वर्तमान कोमल-निषाद) से मिला लें। सेवर्ट विधि में (125+125=)250 पर निषाद हुआ। मध्यम को ही षड्ज मानकर षड्जान्तर (वर्तमान षड्ज से शुद्ध-गान्धार) के अन्तराल पर छठे तार को मिला लें जो कि धैवत है। सेवर्ट विधि में षड्ज से शुद्ध-गान्धार का अन्तराल 97 सेवर्ट होता है। अतः (125+97 =) 222 पर धैवत हुआ। इस धैवत को यदि षड्ज मानें और अवरोही क्रम से इसके मन्द्र मध्यम को स्थापित करें तो वह स्वर शुद्ध ऋषभ होगा। सेवर्ट विधि में इसका स्थान (222-176 =) 46 सेवर्ट पर हुआ। यदि निषाद को षड्ज मानकर अवरोही क्रम से उसके मध्यम की स्थापना करें तो वह स्वर गान्धार होगा। सेवर्ट विधि में इसका स्थान (250-176 =) 74 पर हुआ। सातों स्वरों को क्रमानुसार रखने पर षड्ज-ग्रामिक स्वर इस प्रकार हुएः–

सा	रे	ग	म	प	ध	नि
4	7	9	13	17	20	22
0	46	74	125	176	222	250

(2) **प्रथम सारणा करने के लिए कहा गया है-**

तयोरन्यतरस्यां पञ्चमस्यापकर्षे श्रुतिं मध्यमग्रामिकीं कृत्वा तामेव च पञ्चमस्य श्रुत्युत्कर्षवशात् षड्जग्रामिकीं कुर्यात्। एकश्रुतिरपकृष्टा भवति।

चल-वीणा के पञ्चम को उतार कर मध्यम-ग्राम की बना लें अर्थात् चल-वीणा, जिस पर सारणा करनी है उसके पञ्चम को एक श्रुति उतार लें जिससे वह मध्यम-ग्राम की हो जाए। मध्यम ग्राम के स्वरों में ऋषभ-पञ्चम का अन्तराल (176-46 =) 130 सेवर्ट है जो षड्ज-मध्यम संवाद से 5 सेवर्ट अधिक है। मध्यम-ग्राम में 5 सेवर्ट कम करके पञ्चम को 176 के स्थान पर 171 पर लाना होगा जिससे उसका पञ्चम, ऋषभ से संवाद करने लगे, तत्पश्चात् पञ्चम को बिना उतारे शेष स्वरों को उतना-उतना उतार कर वीणा को पुनः षड्ज-ग्राम की बना लें। अब दोनों वीणाओं में एक श्रुति का अन्तर हो गया है। अतः प्रथम सारणा पूर्ण हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
	3	6	8	12	16	19	21
296	(-5)	41	69	120	171	217	245

(3) दूसरी सारणा के लिए कहा गया है

पुनरपि तद्वदेवापकर्षेत्, यथा गांधारनिषादवन्तावितरस्यामृषभधैवतौ प्रवेक्ष्यतः द्विश्रुत्यधिकत्वात्।

अर्थात् पुनः वैसे ही स्वरों को उतारें जिससे चल वीणा के ग और नि अचल वीणा के, रे और ध में दो श्रुति अधिक होने के कारण प्रवेश कर जायें। श्रुतियों को समान और असमान मानने वालों की ग्रन्थि इसी दूसरी सारणा से आरम्भ होती है इसलिए भरत मुनि के तत्सम्बन्धी विवरण को दो भागों में बाँट कर विचार किया जा सकता हैं– (1)'पुनरपि तद्वदेवापकर्षेत्', इसका अर्थ है कि चल-वीणा को फिर से वैसे ही उतार लें। यह अंश समान श्रुति कहने वालों का आधार है। (2)'यथा गांधारनिषादवन्तावितरस्यामृषभधैवतौ प्रवेक्ष्यतः द्विश्रुत्यधिक-त्वात्।' इसका अर्थ है कि चल-वीणा के गान्धार व निषाद दो श्रुति अधिक होने के कारण ध्रुव-वीणा के ऋषभ व धैवत में मिल जाएँगे। यह अंश असमान श्रुतियों को मानने वालों का आधार है।

	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
	2	5	7	11	15	18	20
273	(-28)	18	46	97	148	194	222

(4) **पुनरपि तद्वदेवापकृष्टायां धैवतार्षभावितरस्यां पञ्चमषड्जौ प्रवेक्ष्यतः त्रिश्रुत्यधिकत्वात्।**

इसी प्रकार तीसरी सारणा में पुनः कहा गया है कि फिर से वैसे ही उतार लें, जिससे चल वीणा के तीन श्रुति के 'ऋषभ' और 'धैवत' ध्रुव वीणा के 'षड्ज' और 'पञ्चम' मे क्रमशः मिल जाएँगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
	1	4	6	10	14	17	19
255	(-46)	0	28	79	130	176	204

(5) तद्वत्पुनरपकृष्टायां पञ्चममध्यमषड्जा इतरस्यां मध्यमगान्धारनिषादवन्तः प्रवेक्ष्यन्ति चतुःश्रुत्यभ्यधिकत्वात्।

चतुर्थ सारणा में पुनः वैसे ही करें जिससे चल-वीणा के चार श्रुति वाले स्वर पञ्चम, मध्यम और तार-षड्ज ध्रुव-वीणा के क्रमशः मध्यम, गान्धार और निषाद में मिल जाएँगे।

	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
	0(22)	3	5	9	13	16	18
250	(-51)	-5	23	74	125	171	199

भरत मुनि द्वारा दिए गए श्रुति-सम्बन्धी संक्षिप्त विधान ने वर्तमान के विद्वानों को दो वर्गों में विभक्त कर दिया है। दूसरी, तीसरी तथा चौथी सारणा के निर्देश को यदि दो भागों में बांटें तो प्रथम भाग पर बल देने वालों का मत है कि भरत व शांर्गदेव की श्रुतियाँ समान थीं। क्योंकि चारों बार समान रूप से कहा गया है कि ठीक वैसी ही प्रक्रिया पुनः करनी है अतः परिणाम चारों बार समान ही होना चाहिए, अलग-अलग नहीं। इस मत का अनुसरण करने वालों में मुख्य रूप से पं. भातखण्डे और उनकी परम्परा के विद्वान आते हैं। भरत मुनि द्वारा दिए गए दूसरे अंश पर बल देने वालों का कहना है कि परिणाम पर ध्यान देना चाहिए। षड्ज-ग्राम व मध्यम-ग्राम पूरी तरह संवाद पर आधारित थे। जो अन्तर वर्तमान बिलावल के 400 व 405 आन्दोलन संख्या के धैवतों में है। वही सूक्ष्म अन्तर दोनों ग्रामों के पञ्चमों में है जिससे प्राचीन ग्रन्थकार भली-भाँति परिचित थे, इसीलिए उन्होंने 18 जातियों में 7 को षड्ज-ग्राम की और 11 को मध्यम-ग्राम की कहा है[1]। इन दोनों ग्रामों के अस्तित्व का आधार संवाद ही है। षड्ज-पञ्चम संवाद से षड्ज-ग्राम और ऋषभ-पञ्चम संवाद से मध्यम-ग्राम कहा गया है। संवाद तो सार्वभौमिक और सार्वकालिक है ही जिसका सार्थक प्रयोग वर्तमान संगीत में भी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरत के समय भी स्वर चार, तीन और दो श्रुति के क्रमशः 9/8, 10/9 और 16/15 के ही रहे होंगे क्योंकि इसका सम्बन्ध गले व कान से प्राकृतिक रूप से है षड्ज-ग्राम का पञ्चम चार श्रुति का स्वर है और मध्यम-ग्रामिक पञ्चम तीन श्रुति का है। इन दोनों स्वरों का अन्तर वही आना चाहिए जो आज 9/8 में से 10/9 को घटाने पर आता है। (9/8 ÷ 10/9 = 9/8 x 9/10 =) 81/80 या 51 सेवर्ट जो चार श्रुति का है, इसमें 46 सेवर्ट जो तीन श्रुति का स्वर है, घटाने पर (51 - 46 = 5) पाँच सेवर्ट हुआ अतः प्रथम सारणा में चल-वीणा (जिस पर प्रयोग किया जा रहा है) अचल या ध्रुव-वीणा से केवल पाँच सेवर्ट ही नीची हुई।

दूसरी सारणा में गान्धार को ऋषभ में मिलाना है अतः गान्धार जो ऋषभ से कुल अट्ठाईस सेवर्ट के अन्तर पर था, प्रथम सारणा में घटकर तेईस सेवर्ट का रह गया है। दूसरी सारणा में तेइस सेवर्ट उतारना होगा। यही स्थिति निषाद की भी है, इस प्रकार दूसरी सारणा के परिणामस्वरूप गान्धार की दो और निषाद की दो कुल चार श्रुतियाँ प्राप्त हुईं।

तीसरी सारणा में तीन श्रुति के स्वर अपने से पूर्व के स्वरों में मिलेंगे जो कि पहले ही घट कर (46 - 5 - 23 =) 18 सेवर्ट के अन्तराल पर रह गए हैं, अतः इस सारणा में चल वीणा को केवल 18 सेवर्ट उतारना होगा। इस सारणा के परिणामस्वरूप ऋषभ व धैवत की कुल छह श्रुतियाँ प्राप्त हुईं। इसी प्रकार चौथी सारणा में चार श्रुति के पञ्चम, मध्यम और षड्ज जो कि 51 सेवर्ट के थे घटकर मध्यम, गान्धार और निषाद से (51-5-23-18=) 5 पाँच् सेवर्ट के अन्तराल पर रह गए हैं। अतः इस सारणा में स्वरों को केवल पाँच सेवर्ट ही उतारना होगा।

श्रुतियों को असमान मानने वाले के अनुसार प्रथम सारणा में पाँच सेवर्ट उतारना है जिसे यूनानी में 'कोमा' कहा जाता है और भरत ने इस अन्तराल को प्रमाण श्रुति कहा है जिसका भिन्नांक 81/80 है। दूसरी सारणा मे तेईस सेवर्ट की श्रुति प्राप्त होती है, जिसे आचार्य बृहस्पति ने 'महती' (सं.चि.,पृ.-140) यानी 'बड़ी' नाम दिया है। यूनान मे इस अन्तराल को 'लीमा' कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीसरी सारणा में अट्ठारह सेवर्ट की श्रुति प्राप्त होती है, जिसे आचार्य बृहस्पति ने 'उपमहती' कहा है। प्रो. ललित किशोर सिंह ने इस अन्तराल को, 'लघु-अर्ध-स्वर' (ध्व.सं., पृ.-183) का नाम दिया है। चौथी सारणा में पुनः प्रथम सारणा वाला ही अन्तराल प्राप्त होता है, अतः कुल तीन प्रकार की श्रुतियों के माप प्राप्त हुए। आगे सारिणी में चारों सारणाओं के स्वर 'सेवर्ट-विधि' में एक साथ दिखाए जा रहे हैं।

सारिणी

क्रम संख्या	श्रुतिके नाम	षड्ज ग्राम स्वर	सेवर्ट मे अन्तराल	प्रथम सारणा	सेवर्ट के अन्तराल	द्वितीय सारणा	सेवर्ट के अन्तराल	तृतीय सारणा	सेवर्ट के अन्तराल	चतुर्थ सारणा	सेवर्ट के अन्तराल
1	तीव्रा							सा	-46		
2	कुमुद्वती					सा	-28				
3	मन्दा			सा	-5					रे	-5
4	छन्दोवती	सा	0					रे	0		
5	दयावती					रे	18			ग	23
6	रञ्जनी			रे	41			ग	28		
7	रक्तिका	रे	46			ग	46				
8	रौद्री			ग	69						
9	क्रोधा	ग	74							म	74
10	वज्रिका							म	79		
11	प्रसारिणी					म	97				
12	प्रीति			म	120						
13	मार्जनी	म	125							प	125
14	क्षिति							प	130		
15	रक्ता					प	148				
16	सन्दीपिनी			प	171					ध	171
17	आलापिनी	प	176					ध	176		
18	मदन्ती					ध	194			नि	199
19	रोहिणी			ध	217			नि	204		
20	रम्या	ध	222			नि	222				
21	उग्रा			नि	245						
22	क्षोभिणी	नि	250							सां	250
1	तीव्रा							सां	255		
2	कुमुद्वती					सां	273				
3	मन्दा			सां	296						
4	छन्दोवती	सां	301								

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुतियों को समान मानने वालों का मत है कि यह तो पाश्चात्यों की देन के फलस्वरूप वर्तमान में गणित के आधार पर श्रुतियों के माप प्राप्त किए गए हैं अतएव ये अमान्य हैं। इसके विपरीत असमान श्रुतियों को मानने वालों का कथन है कि यदि समान श्रुतियाँ मान ली जाएँ तो पूरे सप्तक का अन्तराल जो कि $^2/_1$ है और सेवर्ट विधि में जिसके 301 घटक होते हैं, के 22 समान भाग करने पर $^{301}/_{22}=13^{15}/_{22}$ या 13.7 आता है। दोनों ग्रामों के पञ्चमों में इतना अन्तर नहीं हो सकता। यदि है तो वह संवाद पर आधारित नहीं होगा क्योंकि चार श्रुति के स्वर (13.7 x 4 =) 54.8, तीन श्रुति के स्वर (13.7 x 3 =) 41.1 और दो श्रुति के स्वर (13.7 x 2 =) 27.4 के होंगे, जो संवाद पर आधारित नहीं हो सकते; क्योंकि षड्ज-मध्यम संवाद के लिए 125 सेवर्ट का होना आवश्यक है। सम श्रुतियाँ मानने पर (13.7 x 9 =) 123.3 हुआ जो कि षड्ज-मध्यम संवाद से कुछ कम है। इसी प्रकार षड्ज-पञ्चम संवाद के लिए 176 सेवर्ट होना चाहिए। सम श्रुतियाँ मानने पर (13.7 x 13 =) 178.1 हुआ जो कि षड्ज-पञ्चम संवाद से कुछ अधिक अन्तराल है अतः प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ समान मानने पर संवाद-सम्मत षड्ज-ग्राम व मध्यम-ग्राम स्थापित नहीं हो सकेंगे। श्रुतियों को समान और असमान मानने वाले दोनों मतावलम्बी अपनी-अपनी जगह स्थिर हैं, दोनों के पास अपने-अपने तर्क हैं।

श्रुतियों को समान मानने वालों की दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो तीन विधियों से इस पर प्रकाश डाला जा सकता है। मध्य-षड्ज से तार-षड्ज के अन्तराल के 22 बराबर भागों में बाटा जाए इसकी तीन विधियाँ हो सकती हैः–

(1) मध्य-षड्ज की आन्दोलन संख्या 240 और तार-षड्ज की 480 है। तार-षड्ज व मध्य-षड्ज का अन्तर (480-240=)240 आन्दोलन है। इसके 22 बराबर भाग किए जाएँ,

(2) वीणा के तार पर मध्य-षड्ज 36 इंच पर है और तार-षड्ज 18 इंच पर है। इन दोनों स्वरों के अन्तर वाले भाग की लम्बाई 18 इंच है इसके 22 बराबर भाग किए जाएँ।

(3) सेवर्ट विधि में एक और दो का अन्तराल 301 घटक माना जाता हैं। 301 घटकों के 22 बराबर भाग किए जाएँ तो श्रुतियाँ समान सिद्ध होंगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब इन तीनों विधियों पर विस्तृत विचार किया जा रहा है।

1- आंदोलन संख्या को लेकरः- मध्य-षड्ज की आंदोलन-संख्या से तार-षड्ज की आंदोलन-संख्या दुगुनी होती है। यदि मध्य-षड्ज की आंदोलन-संख्या 240 माने तो तार-षड्ज की 480 हुई। दोनों का अन्तर भी (480-240=)240 ही हुआ। इसके 22 समान भाग करने पर एक श्रुति (240/22=)10 $^{10}/_{11}$ (लगभग 11) आंदोलन की हुई। अब यदि षड्ज-ग्राम के स्वरों को स्थापित करें तो 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 से 11 को गुणा करके स्थापित किया जा सकेगा जो कि नीचे सारिणी में दर्शाया जा रहा है-

सारिणी-क

षड्ज ग्राम के स्वर	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
श्रुतियाँ	4	3	2	4	4	3	2	4
अन्तराल		33	22	44	44	33	22	44
स्वरों की आंदोलन संख्या	240	273	295	339	383	416	438	482

सारिणी-ख

बिलावल के स्वर	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
श्रुतियाँ	4	3	2	4	4	3	2	4
अन्तराल		44	33	22	44	44	33	22
स्वरों की आंदोलन संख्या	240	284	317	339	383	427	460	482
असमान होने पर	240	270	300	320	360	405 (400)	450	480

एक श्रुति चूँकि ग्यारह आंदोलन (लगभग) की मानी गई है इसलिए तार-षड्ज का मान 482 आता है, यद्यपि उसका आदर्श-मान 480 ही है।

इसमें बाधा यही है कि षड्ज की आंदोलन संख्या 240 के स्थान पर कम व अधिक दोनों प्रकार की हो सकती है और जैसे-जैसे स्वर ऊँचा होता जाता है आंदोलनों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती जाती है। जैसे षड्ज, ऋषभ क्रमशः 240 व 270 है जिनका अन्तर (270-240=)30 है और मध्यम, पञ्चम क्रमशः 320

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व 360 है जिनका अन्तराल (360-320=)40 आंदोलनों का है जबकि श्रुतियाँ चार-चार ही हैं। यही तार-सप्तक में दुगुना हो जाएगा इसलिए समान श्रुतियों को मापने की यह विधि उपयुक्त नहीं है।

2- वीणा के तार की लम्बाई के आधार परः- वीणा के तार की लम्बाई यदि 36 इंच मान ली जाए तो मध्य-षड्ज 36 इंच पर ही होगा और तार-षड्ज 18 इंच पर होगा अर्थात् दोनों स्वरों के मध्य (36-18=)18 इंच का अन्तराल होगा। यदि इस लम्बाई को बराबर 22 भागों में विभक्त करें तो उत्तर दशमलव में आएगा अतः तार की लम्बाई 36 के स्थान पर 44 इंच मानने से कुछ सुविधा होगी। अब मध्य-षड्ज 44 इंच पर और तार-षड्ज 22 इंच पर हुआ। दोनों षड्जों का अन्तराल भी 22 इंच होगा जिससे 22 श्रुतियों में प्रत्येक को एक-एक इंच मिला जो आगे सारिणी में दिया जा रहा है। पहले षड्ज-ग्राम और बाद में बिलावल के स्वरों को दिखलाया गया है।

वीणा के तार के लम्बाई की दृष्टि से भी 22 श्रुतियों को समान नहीं कहा जा सकेगा। क्योंकि 36 इंच मानने पर षड्ज व ऋषभ क्रमशः 36 व 32 इंच पर हैं जिनका अन्तराल 4 इंच का है। मध्यम व पञ्चम क्रमशः 27 व 24 इंच पर हैं जिनका अन्तराल 3 इंच का है जबकि श्रुतियाँ इन अन्तरालों की चार-चार ही हैं अतः इस रीति से भी श्रुतियों को समान नहीं कहा जा सकता।

सारिणी-ग

षड्ज ग्राम के स्वर	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
श्रुतियाँ	4	3	2	4	4	3	2	4
इंच	0	3	2	4	4	3	2	4
वीणा पर स्वरों की दूरी	44	41	39	35	31	28	26	22

सारिणी-घ

बिलावल के स्वर	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
श्रुतियाँ	4	3	2	4	4	3	2	4
इंच	0	4	3	2	4	4	3	2
वीणा पर स्वरों की इंच में स्थिति (लम्बाई)	44	40	37	35	31	27	24	22

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

3- सेवर्ट विधि सेः– इस विधि में मध्य षड्ज (शून्य) है तो तार षड्ज 301 पर होता है। 301 को यदि 22 से विभक्त करें तो प्रत्येक श्रुति का माप $13^{15}/_{22}$ होगा जो लगभग 13.7 होता है। इस रीति से षड्ज-ग्राम व बिलावल के स्वर इस प्रकार स्थापित होंगे जो कि आगे सारिणी में दिए जा रहे हैं:–

सारिणी-ङ

षड्ज ग्राम के स्वर	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
श्रुतियाँ	4	3	2	4	4	3	2	4
स्वरों का पारस्परिक अन्तराल (सेवर्ट में)	41.1	27.4	54.8	54.8	41.1	27.4	54.8	
षड्ज से स्वरों की दूरी	0	41.1	68.5	123.3	178.1	219.2	246.6	301.4

सारिणी-च

बिलावल के स्वर	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
श्रुतियाँ	4	3	2	4	4	3	2	4
स्वरों का पारस्परिक अन्तराल (सेवर्ट में)	54.8	41.1	27.4	54.8	54.8	41.1	27.4	
षड्ज से स्वरों की दूरी	0	54.8	95.9	123.3	178.1	232.9	274.0	301.4

इसमें और अधिक सूक्ष्मता से मापने पर तार-षड्ज 301 ही आयेगा।

इन तीनों विधियों पर विचार करने पर यह पता चलता है कि श्रुतियों को यदि समान माना जाए तो हारमोनियम जैसे टेम्पर्ड-स्केल की स्थिति हो जाएगी। शास्त्रीय-संगीत के लिए जिस प्रकार टेम्पर्ड-स्केल वाले वाद्य अयोग्य माने जाते हैं उसी प्रकार समान श्रुतियों को भी स्वीकार करना उचित न होगा।

समान श्रुति मानने वालों का आधार केवल 'तद्वदेवापकर्षेत्' शब्द ही है। वास्तव में यह क्रिया विशेषण है जिसका अर्थ है "उसी प्रकार", जैसे किन्हीं चार कामों के लिए यदि घर से निकलना हो तो कहा जाएगा कि पहले घर से निकलें और पहला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्य करके आएँ, पुनः घर से निकलकर दूसरा कार्य करके आएँ फिर घर से निकलें और तीसरे कार्य को करें और इसी प्रकार पुनः घर से निकलें और चौथे कार्य को करें। इस उदाहरण से घर से तो चार बार मात्र निकलना ही है पर काम अलग-अलग है। ठीक इसी प्रकार तद्द्वैवापकर्षेत् का स्थान है। परिणाम अलग-अलग हैं इसलिए परिणाम को महत्व दिया जाना चाहिए। यदि परिणाम पर बल दिया जाए तो श्रुतियाँ समान नहीं हो सकतीं। यदि किसी रीति से समान स्थापित कर भी ली जाएँ तो संवाद जो कि संगीत का प्राण है उसके बिना ही प्राचीन विद्वानों के संगीत को मानना होगा क्योंकि षड्ज-ग्राम व मध्यम-ग्राम जिसमें हमारे विचार से पञ्चम और धैवत में चार श्रुति का अन्तर रखने पर षड्ज-ग्राम होगा और यदि तीन श्रुति का अन्तराल रखें तो मध्यम-ग्राम होगा। इस सूक्ष्म अन्तर को अनुभव करने वाले प्राचीन विद्वान भरत व शार्गदेव के स्वरों को हारमोनियम जैसे टेम्पर्ड स्केल वाला मानना होगा। इससे हमारा प्राचीन संगीत जो कि हमारे देश की विशेष धरोहर है उसी पर हमें सन्देह करना होगा। वर्णन करने के ढंग को देखते हुए यदि निष्कर्ष निकालना हो तो जिसे जैसा समझ में आता है वह वैसा अर्थ निकालता है। शायद इसीलिए प्रो. ललित किशोर सिंह को भी ध्वनि-संगीत (पृष्ठ-180) में कहना पड़ा कि भरत असमानवादी हैं पर शार्ङ्गदेव समानवादी हो सकते हैं किन्तु आचार्य बृहस्पति शार्ङ्गदेव को भी असमानवादी स्वीकार करते हैं। हमारे विचार से सप्तक के 22 तो क्या, दो भाग भी बराबर करना अत्यन्त कठिन है। किसी बड़े अन्तराल के दो बराबर भाग गणित के विशेष सिद्धान्तों से ही किए जा सकते हैं।

भरत के श्रुति संक्षिप्त अंश पर हज़ारों पृष्ठों का साहित्य लिखा जा चुका है पर इस समस्या का समाधान अभी तक नहीं निकल सका।

पं. शार्ङ्गदेव ने संगीत-रत्नाकर के प्रथम अध्याय के तीसरे प्रकरण में श्लोक 9 से 22 तक श्रुति विवेचन किया है। श्रुतियों को स्पष्ट करने के लिए वीणा पर बाईस तारों को लगाने का विधान है। प्रथम तार को मन्द्रतम ध्वनि में मिलाने के लिए कहा गया है। दूसरे तार को प्रथम से कुछ ऊँची और इसी प्रकार सभी बाईस तारों को निरन्तरता युक्त एक दूसरे तार से ऊँचा मिलाना-है, इसके बाद इन बाईस श्रुतियों पर 4, 7, 9, 13, 17, 20, 22 क्रम की तारों पर सा रे ग म प ध नि को स्थापित करना है। श्रुतियों की संख्या व उनकी माप को समझाने के लिए सारणा-चतुष्टयी का प्रयोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शार्गदेव ने भी भरत की भाँति ही समान नाद वाली दो वीणाओं पर किया है। चारों सारणाओं के लिए भरत ने दोनों वीणाओं में सात-सात तार लगाकर सारणा विधि सम्पन्न की थी पर शार्ङ्गदेव ने दोनों वीणाओं में सात के स्थान पर बाईस-बाईस तार लगाने का निर्देश दिया है। प्रथम सारणा के लिए कहा गया है कि प्रत्येक स्वर की उसकी अन्तिम से पहले वाली श्रुति पर स्वरों को स्थापित करने से प्रथम सारणा मिल जाने पर ध्रुव-वीणा से चल-वीणा एक श्रुति उतर जाएगी, दूसरी सारणा के लिए कहा गया है **'एवमन्याऽपि सारणा। श्रुतिद्वयलयादस्यां चलवीणागतौ गनी। ध्रुववीणोपगतयो रिधयोर्विशतः क्रमात्।'** (सं.र.1 पृ.76,श्लो-19) यानी पहले की ही तरह दूसरी सारणा भी करने से दो श्रुति के गान्धार और निषाद ध्रुव-वीणा के ऋषभ और धैवत में क्रमशः प्रवेश करेंगे। तीसरी सारणा में ऋषभ और धैवत क्रम से षड्ज और पञ्चम में तथा चौथी सारणा में चल-वीणा के षड्ज, मध्यम और पञ्चम ध्रुव-वीणा के निषाद, गान्धार और मध्यम में क्रमशः मिल जाएँगे।

शार्ङ्गदेव को भी समान श्रुति वाला और दूसरे मतानुसार असमान श्रुतिवाला मानने वाले दो मत हैं। शार्ङ्गदेव के विधान को देखकर समान श्रुतिवाले पक्ष की अधिक पुष्टि होती है क्योंकि यहाँ समान श्रुति होने की अधिक सम्भावना है। प्रथम तो बाईस तारों को क्रम से, जो एक-दूसरे से कुछ ऊँचे हैं, ऐसी निरन्तरता युक्त उत्पन्न ध्वनियों को श्रुति कहा गया है, दूसरे जब सारणा विधि का प्रयोग किया गया है, तो वहाँ सर्व प्रथम मध्यम-ग्राम वाले पञ्चम का सहारा नहीं लिया गया। सातों स्वरों को 'सोपान्त्य' यानि अन्तिम से पहली श्रुतियों पर स्थापित करने के लिए कह दिया गया है। इस प्रकार आगे की तीनों सारणाओं के लिए भी संगीत रत्नाकर में इसी रीति से शार्ङ्गदेव ने चल-वीणा की अगली-अगली श्रुतियों पर स्वरों को स्थापित करने को कहा है।

सामान्य दृष्टि से देखा जाए तो शार्ङ्गदेव समान श्रुति वाले दृष्टिगोचर होते हैं पर गम्भीरता से यदि विचार किया जाए तो शार्ङ्गदेव भी असमान वादियों के आधार समझ में आते हैं। आचार्य बृहस्पति ने 'स्वराःस्थाप्याः' 'लीनायाम्' इन दो शब्दों के सहारे शार्ङ्गदेव को असमान श्रुतिवादी मानने पर बल दिया हैं। प्रथम तो यह कि स्वराःस्थाप्याः (सं.र.-1, पृ-7) यानी ''स्वरों को स्थापित करें'' अर्थात् अभी तक तार जो पहले ढीले पड़े थे उन्हें सामान्य तौर पर कसा गया है, मिलाया नहीं गया; स्वरों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को स्थापित करने का अर्थ है कि संवाद के आधार पर स्वरों को मिलाएँ। सभी संगीत के प्रयोक्ता तानपूरे, सितार आदि को ढीला होने पर पहले सामान्य तौर पर कसते हैं किन्तु स्वरों को मिलाने की क्रिया शेष है, अभी तो केवल अधिक अन्तर को कम करने के लिए तारों को स्वरों के निकट किया गया है। 'स्वराःस्थाप्याः' का अर्थ है, स्वरों को वीणा पर मिला लें और मिलाना तो संवाद के आधार पर ही होता है। दूसरा शब्द है 'लीनायाम्' अर्थात दूसरी सारणी में चल वीणा के ग और नि ध्रुव वीणा के रे-ध में मिल जायें। तीसरी सरणा मे चल वीणा के रे-ध ध्रुव वीणा के सा-प में और चौथी सारणी में चल वीणा के सा, म, प, क्रमशः ध्रुव वीणा के नि ग म में लीन होते हैं। लीन तभी होंगे जब पूरी तरह से मिल जाएँगे। शार्ङ्गदेव को असमानवादी बनाने पर आधारित तर्कों से समान श्रुति मानने वाले सन्तुष्ट नहीं होते इसलिए भरत को तो वे किसी हद तक असमानवादी मानते हैं पर शार्ङ्गदेव को समान श्रुति वादी ही मानते हैं। प्रो. ललित किशोर सिंह का कथन है कि भरत असमान और शार्ङ्गदेव समानवादियों के आधार हैं (ध्वं.सं.पृ.180)।

मध्यकाल के सभी ग्रन्थकारों को एक मत से असमान श्रुतियों वाला माना जाता है। यहाँ भी दोनों वर्ग (समानवादी-असमानवादी) अपने-अपने तर्क देते हैं। उत्तर भारत के मध्यकालीन मुख्य सात ग्रन्थकार हैं जिन्हें भातखण्डे जी ने उपयोगी माना है, इनमें से लोचन, अहोबल, हृदयनारायण देव और श्रीनिवास इन चारों का शुद्ध सप्तक वर्तमान काफ़ी-थाट के समान था और शेष पुण्डरीक विट्ठल, श्री कण्ठ और भावभट्ट इन तीनों का शुद्ध-सप्तक दक्षिण के मुखारी (कनकांगी) था, जिस के स्वर उत्तर के अनुसार "सा रे़ रे म प ध़ ध सां" हैं।

उत्तर में वीणा पर लम्बाई के आधार पर स्वर स्थापित किए गए हैं। वीणा में 36 इंच के तार पर मध्यम और पञ्चम क्रमशः 27 तथा 24 इंच पर हैं जिनका अन्तराल $^9/_8$ है। यही अन्तराल गान्धार-मध्यम तथा निषाद-तार षड्ज के मध्य भी होना चाहिए पर षड्ज 36 पर और ऋषभ 32 इंच पर मानने से षड्ज-ऋषभ का अन्तराल $^9/_8$ होता है जबकि षड्ज-ऋषभ के मध्य कुल तीन ही श्रुतियाँ होती हैं, जिसका भिन्नांक में मान $^{10}/_9$ होना चाहिए, पर $^9/_8$ है, इसका अर्थ यह हुआ कि मध्यकालीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ समान नहीं हुईं। दक्षिणी-ग्रन्थकारों के मध यम-पञ्चम, गांधार-मध्यम और निषाद-षड्ज का अन्तराल भी बराबर नहीं है। उत्तर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की दृष्टि से ऋषभ-मध्यम ही दक्षिण का गान्धार-मध्यम है, उत्तर का धैवत-तार षड्ज ही दक्षिण का निषाद-तार षड्ज है।

ऋषभ-मध्यम और या धैवत-तार षड्ज का अन्तराल $^{32}/_{27}$ है और मध्यम -पञ्चम $^{27}/_{24}$ का अन्तराल $^{9}/_{8}$ है जबकि श्रुतियाँ तो तीनों अन्तरालों की चार-चार ही हैं अतः मध्यकालीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ असमान थीं।

असमानवादी तो कभी भी श्रुतियों को समान मानते ही नहीं हैं। असमानवादियों का एक ही तर्क है कि जहाँ भी $^{9}/_{8}$ का अन्तराल है वहाँ चार श्रुतियाँ होनी चाहिए। $^{10}/_{9}$ के लिए तीन और $^{16}/_{15}$ के लिए दो श्रुतियों का अन्तराल होना चाहिए। यदि ये अन्तराल नहीं हैं तो वे चार, तीन व दो श्रुति के अन्तराल नहीं माने जाने चाहिए। जैसे कि दक्षिण के सभी ग्रन्थकार और उत्तर के ग्रन्थकारों में पुण्डरीक विट्ठल, श्रीकण्ठ और भावभट्ट गान्धार-मध्यम में चार श्रुति भी मानते हैं या अहोबल के अनुसार वीणा के तार की लम्बाई 36 इंच मानने पर षड्ज और ऋषभ क्रमशः 36 एवं 32 इंच पर है जो $^{9}/_{8}$ बनता है परन्तु 'षड्ज' और 'ऋषभ' के मध्य श्रुतियाँ तीन ही कही गई हैं।

मध्यकाल के पं. सोमनाथ एक मात्र ऐसे ग्रन्थकार हुए हैं जिन्होंने अपने ग्रन्थ राग-विबोध (रा.वि.पृ.-3) में श्रुतियों को स्पष्ट करने के लिए वीणा पर एक सप्तक की श्रुतियों के लिए 22 पर्दे लगाने को कहा है। यह प्रेरणा उन्होंने शार्ङ्गदेव से ही ली होगी क्योंकि शार्ङ्गदेव ने 22 श्रुतियों को दिखाने के लिए 22 तार लगाए थे और सोमनाथ ने 22 पर्दे बाँधे हैं।

समान-असमान सम्बन्धी सम्पूर्ण प्रकरण पर ध्यान देने योग्य यह है कि आधुनिक ग्रन्थकारों के अतिरिक्त मध्य व प्राचीन किसी भी विद्वान ने श्रुतियों के मान सम्बन्धी कोई चर्चा नहीं की है। समान या असमान वाली धारणा तो अँग्रेज़ों की देन है, उनके आगमन के पश्चात् ही इस दिशा में विचार किया जाना प्रारम्भ हुआ है।

प्राचीन ग्रन्थकारों को समान श्रुतिवादी मानने वालों में पं. भातखण्डे, डॉ. शरत्चन्द्र पराञ्जपे, चैतन्य देसाई, वी. एस. निगम आदि हैं और असमानवादी मानने वालों में प्रमुख हैं:- आचार्य बृहस्पति, प्रो. ललित किशोर सिंह, पं. ओमकारनाथ ठाकुर, डॉ. प्रेमलता शर्मा आदि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

4–श्रुतियों पर स्वरों की स्थापनाः– ग्राम–मूर्च्छना व्यवस्था में स्वरों की स्थापना उनकी अन्तिम श्रुति पर होती थी। भरत, मतंग, शार्ङ्गदेव और राणाकुम्भा ग्राम–मूर्च्छना व्यवस्था मानते हैं। उत्तर व दक्षिण के मेल–वर्गीकरण को मानने वाले मध्ययुगीन ग्रन्थकार भी स्वरों की स्थापना उनकी अन्तिम श्रुति पर ही करते हैं जिससे दक्षिण वालों को मुखारी और उत्तर वालों को षड्ज–ग्राम के स्वर लगभग काफ़ी के समान प्राप्त होते हैं। भातखण्डे जी ने स्वरों को उनकी प्रथम श्रुति पर स्थापित किया जिससे काफ़ी थाट के स्थान पर षड्ज–ग्राम के स्वर बिलावल थाट के हो गए। यद्यपि इस व्यवस्था में धैवत के विषय में कुछ मतभेद है। भातखण्डे और उनके अनुयायी तो स्वरों को उनकी प्रथम श्रुति पर ही मानते हैं लेकिन पं. विष्णु दिगम्बर की परम्परा के विद्वान् अब भी स्वरों को उनकी अन्तिम श्रुति पर ही स्थापित करते हैं। दोनों परम्परा के मतावलम्बियों की स्वरों पर स्थापना सारिणी में दी जा रही हैः–

श्रुति पर स्वरों की स्थिति

स्वर / मत	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
प्राचीन विद्वानों के अनुसार	4	7	9	13	17	20	22
आधुनिक विद्वानों के अनुसार	1	5	8	10	14	18	21

प्राचीन मत में स्वरों की श्रुतियाँ अवरोह क्रम में थीं जिससे षड्ज–ग्राम के स्वर काफ़ी थाट के रूप में प्राप्त होते थे। अवरोह क्रम से तात्पर्य यह है कि 'षड्ज' की चार श्रुतियाँ हैं तो अवरोह क्रम से 4, 3, 2, 1 षड्ज की श्रुतियाँ हुईं और यदि ऋषभ सातवीं श्रुति पर है तो 7, 6, 5 क्रम की तीन श्रुतियाँ ऋषभ की हुईं। इसी प्रकार अन्य स्वरों को भी देखा जा सकता है। इस अवरोही क्रम में सा रे ग म प ध नि क्रमशः 4, 7, 9, 13, 17, 20, 22 क्रम की श्रुतियों पर हैं। इसके विपरीत वर्तमान में आरोह क्रम में स्वर अपनी प्रथम श्रुति पर स्थापित किए जाते हैं जैसे षड्ज की चार श्रुतियाँ हैं तो षड्ज प्रथम श्रुति पर है और आरोह की ओर दूसरी, तीसरी, चौथी श्रुति तक षड्ज का क्षेत्र है। पाँचवीं पर ऋषभ स्थापित है और उसका क्षेत्र छठी और सातवीं श्रुति तक है। इसी प्रकार गान्धार आदि सभी स्वरों को भी देखा जा सकता है। कहने का भाव यह है कि प्राचीन मत के स्वरों की श्रुतियाँ अवरोह में अपने से पूर्व के स्वर तक थीं जैसे षड्ज की श्रुतियाँ षड्ज और कोमल–निषाद के मध्य होती थीं। वर्तमान में स्वरों की श्रुतियाँ अपने से अगले स्वर तक होती हैं जैसे षड्ज से ऋषभ तक षड्ज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की श्रुतियाँ होती हैं। गान्धार की दो श्रुतियाँ हैं जो कि अर्ध-स्वर (Semi tone) का अन्तराल होता है। प्राचीन मत में गान्धार नौवीं श्रुति पर है और सातवीं पर ऋषभ है। आरोह क्रम में रखने पर गान्धार आठवीं पर और दसवीं पर मध्यम आता है। यही अर्ध-स्वर का अन्तराल अन्तिम श्रुति पर स्वर को रखने से ऋषभ-गान्धार के मध्य था। प्रथम पर रखने से वही अन्तराल गान्धार-मध्यम में हो गया यही स्थिति प्राचीन मत में <u>नि</u>-ध, वर्तमान में नि-सां की है।

इससे यह पता चलता है कि काफी के तत्कालीन शुद्ध-स्वर वर्तमान बिलावल के शुद्ध-स्वर कैसे बने। स्वरों को प्रथम श्रुति पर स्थापित करें या अन्तिम पर, श्रुतियों को समान माने या असमान ये सब सैद्धान्तिक बिन्दु हैं। व्यवहारिक रूप में इनका कोई अस्तित्त्व नहीं है। गायक-वादक समान रूप से ही गाते बजाते हैं। प्रथम या अन्तिम श्रुति पर स्वरों की सैद्धान्तिक स्थापना से क्रियान्वयन (Practical) में कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

5. श्रुति और स्वर में सम्बन्धः-

(1) श्रुतियाँ बाईस और स्वर सात होते हैं।

(2) श्रुति कारण है और स्वर कार्य है।

(3) श्रुतियाँ उपयोग में नहीं आती हैं, स्वरों का उपयोग होता है।

(4) राग विशेष में जब कोई श्रुति स्वर बन जाती है तब वह श्रुति नहीं रहती जैसे- राग भूपाली में सा, रे, ग, प और ध ये पाँच स्वर लगते हैं, अतः इन पाँच स्वरों की श्रुतियाँ भूपाली राग गाते समय श्रुतियाँ नहीं रहेंगी। 22 श्रुतियों में से शेष 17 ही श्रुतियाँ कहलाएँगी। यदि मालकौंस राग गाया जाए तो इसमें भी पाँच ही स्वर लगते हैं पर क्योंकि इसमें षड्ज के अतिरिक्त शेष स्वर भूपाली राग से अलग हैं अतः मालकौंस के स्वरों वाली श्रुतियाँ जो कि उस राग में स्वर बन चुकी हैं अब श्रुति नहीं रहेंगी और भूपाली राग के समय जो श्रुतियाँ स्वर बन गई थीं, अब वे मालकौंस राग की श्रुतियाँ कहलाएँगी। स्वरों को उनकी प्रथम श्रुति पर स्थापित करने से भूपाली राग के स्वर 1, 5, 8, 14 और 18 क्रम की श्रुतियाँ स्वर बनेंगी, इसके विपरीत मालकौंस में 1, 7, 10, 16, और 19 क्रम की श्रुतियाँ स्वर बनेंगी और वे श्रुतियाँ नहीं कहलाएँगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहने का भाव यह है कि जो श्रुतियाँ उपयोग में आ रही हैं वे उस समय श्रुति न रहकर स्वर बन जाती हैं।

इस बिन्दु को दो उदाहरणों से समझा जा सकता है। मान लें कि किसी कक्षा में 22 छात्र हैं। प्रधानाचार्य से कुछ समस्याओं के सम्बन्ध में मिलने जाना है, अतः उन छात्रों का चुनाव किया जाएगा जो अपनी बात स्पष्ट रूप से कहने में समर्थ हैं। ऐसे पाँच-छह छात्र जाएँगे। इस समय ये चुने छात्र स्वर हुए, शेष छात्र श्रुतियाँ। किसी अन्य कार्य के लिए जिसमें शक्ति का उपयोग होना है, जैसे सड़क पर पेड़ गिर गया है अतः शारीरिक रूप से स्वस्थ छात्र चुने जाएँगे, इस कार्य को करते समय ये छात्र स्वर हुए और कक्षा के शेष छात्र श्रुतियाँ माने जाएँगे।

अधिकतर ग्रन्थों में श्रुति और स्वर के अन्तर के लिए स्वर्ण और कुण्डल का उदाहरण दिया गया है। इसका अर्थ यह है कि सोने का ढेला श्रुति है और उससे बने आभूषण स्वर। सोने का ढेला सीधे उपयोग में नहीं आता इसके विपरीत उसी से बने आभूषण उपयोग में आते हैं। पुनः उन गहनों को पिघला कर सोने का ढेला बनाया जाएगा और यदि उससे अन्य आभूषण बनाए जाएँ तो वे स्वर कहला सकेंगे।

6. श्रुति-जातियाँ:- श्रुतियों की पाँच जातियाँ कही गई हैं :- मृदु, मध्या, आयता, करुणा और दीप्ता। इन श्रुति-जातियों का अर्थ अभी तक स्पष्ट नही है। अभिनवगुप्त और पं. अहोबल ने अलग-अलग विधि से इनका अर्थ समझाया है। अभिनवगुप्त का कथन है:- **'मार्दवं तन्त्र्याः शिथिलीकरणं विपरीतत्वमायतत्वं क्रियत इत्याह' (ना.शा.28,अभि.भा.,पृ-21)** अर्थात् तार को ढीला करना मार्दव और कसना आयतत्व है। आचार्य बृहस्पति ने इन श्रुति जातियों का स्पष्टीकरण करते हुए नाट्यशास्त्र का तत्सम्बन्धी उद्धरण **'श्रुतयोऽन्त्याद् (न्या) द्वितीयस्य मृदुमध्यायताः स्वराः (स्मृताः) आयतत्वं भवेन्नीचं मृदुत्वं तु विपर्यये। स्वे स्वरे मध्यमत्वं' (ना.शा.28,पृ.89)** देकर उसका अनुवाद इस प्रकार किया है- जब गान्धार के बाद उससे नीचे ऋषभ का प्रयोग हो तब गान्धार की श्रुति 'आयत' होती है, विपरीत अवस्था में अर्थात् जब गान्धार के पश्चात् उसकी अपेक्षा ऊँचे स्वर, मध्यम का प्रयोग हो तो गान्धार की श्रुति मृदु होती है तथा गान्धार के बाद गान्धार का ही प्रयोग करने पर उसकी श्रुति मध्या होती हैं। इन (मृदु, मध्या, आयता) तीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रुति जातियों का तो आचार्य बृहस्पति के प्रयास से अर्थ स्पष्ट हो गया है किन्तु इनके अनुसार करुणा और दीप्ता श्रुति जातियों के अर्थ अभी स्पष्ट नहीं हुए हैं–

पं. अहोबल ने इन श्रुति जातियों का सम्बन्ध रसों से जोड़ते हुए कहा है-

रसे वीरेऽद्भुते रौद्रे दीप्ता जातिरुदीरिता।
मृदुर्जातिश्च शृंगार आयता हास्यके रसे।। (सं.पा.श्लोक 493)

वीर, अद्भुत, रौद्र। इन तीनों रसों में 'दीप्ता' जाति बताई गई है।

दैन्ये च करुणाजातिर्बीभत्से च भयानके।
हास्य शृंगारयोर्मध्ये रसेष्वेतेषु जातयः।। (सं.पा.श्लोक 494)

'दैन्य' अर्थात् करुण रस में 'करुणा' नामक जाति होती है और बीभत्स भयानक, हास्य, शृंगार में 'मध्या' जाति होती है। यानी शृंगार में 'मृदु' और 'मध्या' दोनों जातियाँ होती हैं {पहली जाति मे 'संयोग-शृंगार' तथा दूसरी में 'वियोग-शृंगार (विप्रलम्भ)' होता है} इसी प्रकार आयता में 'योषा हास्यरस' तथा मध्या में 'व्यंग्य हास्य' जानना चाहिए। इस प्रकार इन नवरसों में यह (कथित) जातियाँ होती हैं।

तत्तज्जातिरसैरेव स्वरास्तत्तद्रसात्मकाः।
तादृश्यांशग्रहन्यासै रागैस्तत्तद्रसात्मता।। (सं.पा.श्लोक 495)

उन-उन जातियों के रसों द्वारा ही उन-उन रसों के आत्मक (रसवान) स्वर होते हैं अर्थात् जिस श्रुति की जो जाति होती है और उस जाति का (उपरोक्त) जो रस होता है वही रस उस श्रुति पर स्थापित स्वर का होता है और उसी प्रकार के या उसकी समता के अंश, ग्रह तथा न्यासों के और रागों के द्वारा वही-वही रसात्मकता पाई या समझी जाती है। यानी जिस श्रुति की जो जाति हुई और उस जाति का जो रस हुआ, वही रस उस श्रुतिस्थ-स्वर का होगा। इस प्रकार स्वर के द्वारा जिस राग के अंश, ग्रह और न्यास बनेंगे वही रस उस राग का भी रस होगा।

7. श्रुतियों के नामः- संस्कृत ग्रन्थों में श्रुतियों के नामों के विषय में चार मत पाए जाते हैं जो आगे सारणी में दिए गए हैं।

इन नामों का क्या आधार रहा होगा, इस बिन्दु पर बीसवीं शताब्दी में पं. ओमूकार नाथ ठाकुर ने इसके लिए प्रयास किया था किन्तु वे सन्तोषजनक परिणामों

—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तक नहीं पहुँच पाए। उन्होंने तीव्रा, कुमुद्वती आदि प्रचलित नामों में ही सार्थकता ढूँढने का प्रयास किया था। श्रुतियों के तीव्रा आदि नाम निश्चय ही सार्थक होंगे। इन श्रुतियों का सम्बन्ध ही आधार-स्वर से भी रहा ही होगा। मूर्च्छना-पद्धति में आधार-स्वर सप्तक का कोई भी स्वर हो सकता है। अब प्रश्न उठता है कि किस मूर्च्छना में ये अर्थ सार्थक हैं? यदि सात भिन्न-भिन्न प्रकार के (सात आधार-स्वर होने के कारण) श्रुतियों के नाम होते तो इनका अर्थ लगाना सम्भवतः कुछ आसान होता क्या इन 22 श्रुतियों के नाम भिन्न-भिन्न आधार स्वरों से सम्बद्ध हैं? अर्थात् 22 में से कुछ नाम उत्तर-मन्द्रा मूर्च्छना में सार्थक हैं, कुछ रञ्जनी मूर्च्छना में इत्यादि। मात्र भाव-भट्ट ने तीव्रा, कुमुद्वती आदि श्रुतियों को गात्रज (कण्ठ से) और निष्कला, गूढ़ा आदि को यन्त्रज (वाद्यों से उत्पन्न) कहा है।

श्रुति नामों पर विचार करते समय अभी तक केवल संगीत-पक्ष को ही सामने रखकर विचार किया गया है। उपासना, तन्त्र एवं संगीत तीनों ही विषयों में प्रवीण व्यक्ति इस दिशा में कुछ प्रयास करे तो सम्भव है कि किसी उचित परिणाम तक पहुँचा जा सके।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रम संख्या	वर्तमान में प्रचलित नाम (सं० र०, पृ०- ४६)	दत्तिल के नाम से संगीत पारिजात की टीका से उद्धरित (सं० पा०, पृ०- २०)	संगीत मकरन्द से उद्धरित नाम (सं० म०, पृ०- ४)	भाव भट्ट के अनूप संगीत विलास में दिए गए नाम (अ० सं० वि०, पृ०- ३१)
1	तीव्रा	नान्दी	सिद्धा	निष्कला
2	कुमुद्वती	चालनिका	प्रभावती	गूढ़ा
3	मन्दा	रसा	कांता	सकला
4	छन्दोवती	सुमुखी	सुप्रभा	मधुरा
5	दयावती	चित्र	शिखा	ललिता
6	रञ्जनी	विचित्र	दीप्तिमती	एकाक्षरा
7	रक्तिका	घना	उग्रा	श्रृंगजाति
8	रौद्री	मातंगी	ह्लादी	रसगीतिका
9	क्रोधा	सरसा	निर्विरी	रञ्जिका
10	वज्रिका	मृता	दिरा	पूर्णा
11	प्रसारिणी	मधुकरी	सर्पसहा	अलंकारिणी
12	प्रीति	मैत्री	क्षन्ति	वैणिका
13	मार्जनी	शिवा	विभूति	वलिता
14	क्षिति	माधवी	मालिनि	त्रिस्थाना
15	रक्ता	(वाला)	चपला	नादांता
16	सन्दीपनी	शांर्गेखी	वाला	सौम्या
17	आलापिनी	कला	सवेरला	भाषांगिका
18	मदन्ती	कलखा	शांता	वर्तिका
19	रोहिणी	माला	वकलिनी	व्यापका
20	रम्या	विशाला	हृदयोन्मालिनी	प्रसन्ना
21	उग्रा	जया	विसारिणी	सुभगा
22	क्षोभिणी	मात्र	प्रसुना	नन्दना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्राम-मूर्च्छना

ग्राम-मूर्च्छनाः- प्राचीन-संगीत को समझने के लिए सर्वप्रथम ग्राम और तत्पश्चात् मूर्च्छना पद्धति को समझना आवश्यक है। संगीत-रत्नाकर में ग्राम की परिभाषा इस प्रकार दी गई है:-

"ग्रामः स्वरसमूहः स्यान्मूर्छनाऽऽदेः समाश्रयः" (सं0र0भाग-1, पृ. 99)

अर्थात् स्वरों का वह समूह जो मूर्च्छनाओं का आश्रय हो, ग्राम कहलाता है।

थाट-प्रणाली में जिस तरह सर्वप्रथम शुद्ध-सप्तक को स्थापित करना होता है तभी कोमल, तीव्र स्वर निश्चित होते हैं, ठीक उसी प्रकार ग्राम-मूर्च्छना विधि में भी सर्वप्रथम शुद्ध स्वरों के लिए ग्राम-निश्चित किया गया।

ग्रामः- ग्राम का सामान्य और व्यावहारिक अर्थ है 'घरों का समूह'। एक व्यवस्थित ग्राम या गाँव वही माना जाता है जिसका एक मुखिया हो, ग्राम में रहने वाले आपस में प्रेम-भाव से रहते हों यानी उनमें विवाद न हो, सबमें मधुर सम्बन्ध हो अर्थात् उनमें संवाद हो। संगीत के ग्राम की भी यही विशेषता थी। इसका एक अग्रणी-स्वर होता था जो ग्राम में लगने वाले स्वरों के सबसे बड़े स्वरों में से एक होता था। यह अग्रणी स्वर या ग्रामणी-स्वर चार श्रुति का ही हो सकता था क्योंकि ग्राम मूर्च्छना पद्धति में चार श्रुति का स्वर ही सबसे बड़ा होता है। इसका संवाद 'षड्ज-मध्यम' या 'षड्ज-पञ्चम' भाव से ग्राम के दो स्वरों से होता था। शेष स्वरों का सम्बन्ध 'षड्ज-मध्यम' या 'षड्ज-पञ्चम' भाव से किसी-न-किसी स्वर से होना आवश्यक था। ग्राम में एक स्वर ऐसा होता था जो ठीक मध्य में हो अर्थात् उसकी दूरी प्रथम व अन्तिम स्वर से समान हो। वह मध्य स्वर तराजू के मध्य बिन्दु का कार्य करता था। षड्ज ग्राम में सा-प संवाद और मध्यम ग्राम में सा-म संवाद होता था।

षड्ज-ग्रामः-षड्ज-ग्राम के लिए चतुर्दण्डीप्रकाशिका का प्रसिद्धं श्लोक इस प्रकार है-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्ज मध्यम पञ्चमाः।

द्वे द्वे निषादगान्धारौ। त्रिस्त्री ऋषभधैवतौ'।। (चतु०प्र०,पृ-22)

अर्थात्- षड्ज, मध्यम, पञ्चम की चार-चार; ऋषभ, धैवत की तीन-तीन; और गान्धार, निषाद की दो-दो श्रुतियाँ होती हैं। प्रत्येक स्वर के अपनी अन्तिम श्रुति पर स्थित होने के कारण षड्ज-ग्राम के स्वर सा, रे, ग, म, प, ध, नि क्रमशः चौथी, सातवीं, नौवी, तेरहवी, सत्रहवीं, बीसवीं और बाइसवी श्रुतियों पर स्थित होने से लगभग वर्तमान काफी थाट के समान होगें। 'लगभग' शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है कि काफ़ी का ऋषभ चार श्रुति का होता है जबकि षड्ज-ग्रामिक ऋषभ तीन श्रुति का होता है।

पं. ओमूकार नाथ ठाकुर के अनुसार तानपूरे के प्रथम तार को मध्यम में मिलाकर मध्यम से संवाद करता हुआ त्रिश्रुतिक ऋषभ लगाकर काफी या पञ्चम युक्त बागेश्री के स्वरों को गाया जाए तो तानपुरे पर षड्ज-ग्राम के स्वर आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त षड्ज-ग्राम की चौथी मूर्च्छना का नाम शुद्ध-षड्जा है जोकि पञ्चम से आरम्भ होती है। इसलिए पं. फ़िरोज़ फ़्रामज़ी और पं. ओमूकार नाथ ठाकुर का मानना है कि सितार, इसराज, सरोद आदि वाद्यों में बाज का तार मन्द्र-मध्यम में मिलाया जाता है। मन्द्र-पञ्चम को यदि षड्ज मानकर प़ ध़ <u>नि़</u> सा रे ग म स्वर बजाए जाएँ तो भी षड्ज-ग्राम के श्रुत्यन्तर प्राप्त हो जाते हैं। जो आगे सारिणी से स्पष्ट है:-

प़	ध़	<u>नि</u>	सा	रे	ग	म
सा	रे	<u>ग</u>	म	प	ध	नि
4	3	2	4	4	3	2

षड्ज-ग्राम का ग्रामणी-स्वर षड्ज है जिसका मध्यम व पञ्चम से 'षड्ज- मध्यम' और 'षड्ज-पञ्चम' भाव से संवाद होता है। मध्यम-स्वर षड्ज व निषाद से नौ-नौ श्रुति की समान दूरी पर स्थित है। षड्ज, ऋषभ, गान्धार का क्रमशः पञ्चम, धैवत, निषाद से तेरह श्रुति के अन्तर पर स्थित होने के कारण 'षड्ज-पञ्चम' संवाद है। अतः ग्राम की सभी विशेषताओं को धारण करने वाला यह ग्राम शुद्ध-सप्तक बना पर भरत ने इसे शुद्ध नहीं माना। शार्ङ्गदेव ने षड्ज-ग्राम को शुद्ध-ग्राम माना है इसलिए उन्होंने मध्यम-ग्रामिक पञ्चम को विकृत स्वर कहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राचीन स्वर व्यवस्था में स्वरों का क्षेत्र 'अवरोहात्मक' था किन्तु पं. भातखण्डे ने स्वरों का क्षेत्र 'आरोहात्मक' बताया अर्थात् प्राचीन व्यवस्था में षड्ज से मन्द्र कोमल-निषाद तक षड्ज का क्षेत्र था जबकि वर्तमान में षड्ज से ऋषभ का अन्तराल षड्ज का क्षेत्र है। परिणामस्वरूप काफी के स्थान पर षड्ज ग्राम के स्वर बिलावल के प्राप्त होते हैं।

मध्यम-ग्रामः-मध्यम-ग्राम मध्य-सप्तक के मध्यम से आरम्भ होता था। षड्ज-ग्राम की श्रुतियों में केवल पञ्चम को एक श्रुति उतारने से मध्यम-ग्राम की प्राप्ति हो जाती है अर्थात् षड्ज-ग्राम का पञ्चम जो सत्रहवीं श्रुति पर है, उसे सोलहवीं श्रुति पर लाने से वह मध्यम-ग्राम बन जाता है। परिणाम यह होता है कि पञ्चम तीन श्रुति का रह जाता है। इसके विपरीत धैवत जो षड्ज-ग्राम में तीन श्रुति का था, चार श्रुति का हो जाता है। मध्यम-ग्राम में 'षड्ज-मध्यम' संवाद अधिक होता है। 'षड्ज-मध्यम', 'ऋषभ-पञ्चम', 'मध्यम-निषाद' और 'पञ्चम-तार षड्ज' में सा-म संवाद है केवल 'ऋषभ-धैवत' में 'सा-प' संवाद है।

षड्ज-ग्राम से मध्यम-ग्राम प्राप्त करने की दो विधियाँ थीं। प्रथम विधि पञ्चम को एक श्रुति नीचा कर दिया जाए और दूसरी विधि थी कि गान्धार को दो श्रुति चढ़ाकर धैवत का नाम दे दिया जाए। कहा गया है कि-"धैवतिकृते गान्धारे"। यानी षड्ज ग्राम के स्वरों में 'अन्तर-गान्धार' को धैवत मानने से मध्यम-ग्राम बनेगा। षड्ज-ग्राम की अपेक्षा मध्यम-ग्राम अधिक प्रचार में था क्योंकि कुल अट्ठारह जातियों में से सात षड्ज-ग्राम की थीं और शेष ग्यारह जातियाँ मध्यम-ग्राम की। इस ग्राम का ग्रामणी-स्वर मध्यम है जो सबसे बड़े स्वरों में से एक है। इसका संवाद निषाद और षड्ज से 'षड्ज-मध्यम' और 'षड्ज-पञ्चम' भाव से नौ व तेरह श्रुतियों का है। वर्तमान में खमाज-थाट के स्वर मध्यम-ग्रामिक कहे जा सकते हैं, अन्तर केवल ऋषभ में है। खमाज का ऋषभ चार श्रुति का है और मध्यम-ग्राम का ऋषभ जो वास्तव में पञ्चम है, तीन श्रुति का है।

आगे श्रुति-मण्डल में दोनों ग्राम दिखाए जा रहे हैं:-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षड्ज-ग्राम का श्रुति-मण्डल

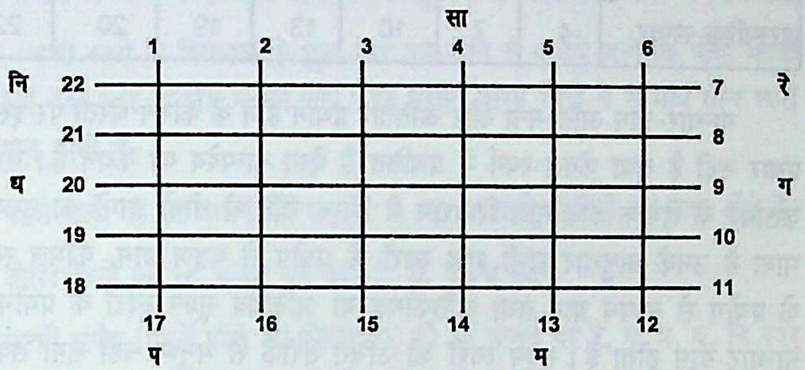

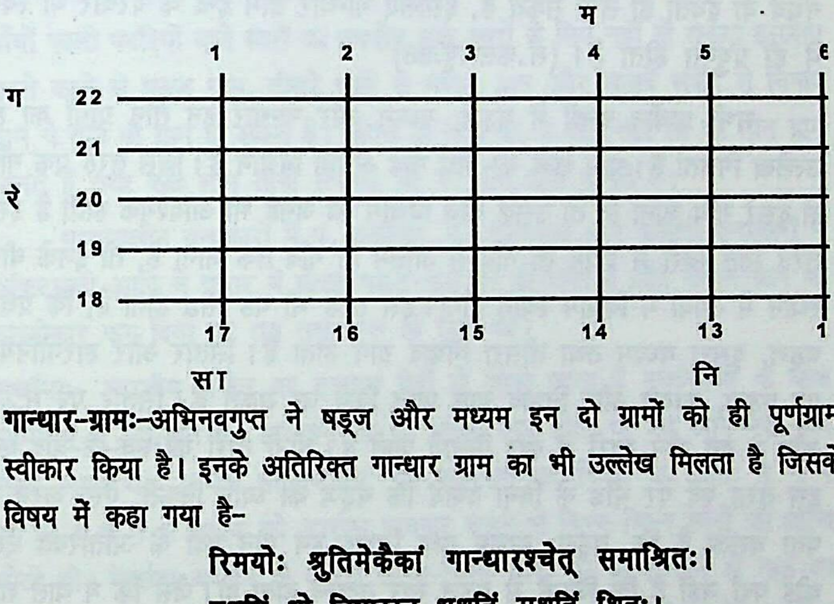

गान्धार-ग्रामः-अभिनवगुप्त ने षड्ज और मध्यम इन दो ग्रामों को ही पूर्णग्राम स्वीकार किया है। इनके अतिरिक्त गान्धार ग्राम का भी उल्लेख मिलता है जिसके विषय में कहा गया है-

> रिमयोः श्रुतिमेकैकां गान्धारश्चेत् समाश्रितः।
> पश्रुतिं धो निषादस्तु धश्रुतिं सश्रुतिं श्रितः।
>
> (सं.रं.1-4, श्लो.4)

अर्थात् गान्धार ग्राम में रे और म की एक-एक श्रुति लेकर ग तथा ध और सा की एक-एक श्रुति लेकर नि चार-चार श्रुति के हो जाते हैं। प की एक श्रुति ध ले लेता है। परिणामस्वरूप गान्धार ग्रम्रम में स म प ध की तीन-तीन रे की दो और ग नि की चार-चार श्रुतियाँ होती हैं। जो आगे सारणी में स्पष्ट हैं-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरों के नाम	ग	म	प	ध	नि	सा	रे
पारस्परिक अन्तर	4	3	3	3	4	3	2
पारस्परिक अन्तर	4	7	10	13	19	20	22

गान्धार-ग्राम अति-मन्द्र और अतितार प्रधान होने के कारण धरती पर इसका प्रचार नहीं है तथा केवल स्वर्ग में प्रचलित है ऐसा नान्यदेव का कथन है। संगीत कलाधर के लेखक डाह्यालाल शिवराम ने भिन्न रीति से तीनों ग्रामों का उपयोग माना है उनके अनुसार सभी शुद्ध स्वरों के प्रयोग से षड्ज ग्राम, कोमल स्वरों के प्रयोग से मध्यम ग्राम तथा अतिकोमल या अतितीव्र सूक्ष्म स्वरों के प्रयोग से गान्धार ग्राम होता है। सूक्ष्म स्वरों को उचित तरीके से मनुष्य नहीं लगा सकते, गंधर्व या देवता ही लगा सकते हैं, इसलिए गान्धार ग्राम इन्द्र के दरबार या स्वर्ग में ही प्रयुक्त होता है। (सं.कला.पृ.38)

सभी प्राचीन ग्रन्थों में षड्ज, मध्यम और गान्धार इन तीन ग्रामों का ही उल्लेख मिलता है। ग्राम शब्द का अर्थ गाँव अथवा विश्राम है। जिस तरह एक गाँव से दूसरे गाँव जाना हो तो उसके बीच विश्राम की जगह भी आवश्यक होती है इसी तरह सात स्वरों में प्रथम सा गाँव से अंतिम नि गाँव तक जाना है, तो इनके बीच स्थान में आया म विश्राम स्थान होगा। इस तरह भी यह सिद्ध होता है, कि प्रथम षड्ज, दूसरा मध्यम तथा तीसरा निषाद ग्राम होता है। सितार और हारमोनियम पर षड्ज, मध्यम और निषाद ग्राम प्राप्त किये जा सकते हैं। सितार पर म, स और प इन तीन स्वरों में तार मिलाये जाते हैं। तीनों तारों को एक-के-बाद एक इस तरह पर्दे पर मींड के बिना दबायें कि षड्ज की ध्वनि निकले, ऐसा करने से पता चलता है कि, षड्ज, मध्यम तथा निषाद इन तीन पर्दो के अतिरिक्त ऐसा कोई पर्दा नहीं है कि जिसमें से षड्ज स्वर उत्पन्न होता हो। जैसे कि म वाले तार पर सातवाँ पर्दा स का होता है इसलिए प्रथम षड्ज ग्राम हुआ। सा वाले तार से ग्यारहवें पर्दे पर सा की ध्वनि सुनाई पड़ती है, आधार स्वर से यह मध्यम है, इसलिए दूसरा मध्यम ग्राम है और प के तार से पाँचवें पर्दे पर सा होता है। आधार स्वर से यह कोमल नि है अतः षड्ज, मध्यम और निषाद ये तीन ग्राम ही हो सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हारमोनियम में ऊपर की पटरी पर काले और नीचे की पटरी पर सफेद स्वर होते हैं। एक सप्तक में पाँच काले और सात सफेद कुल बारह स्वर होते हैं।

सभी स्वरों से बिलावल के शुद्ध स्वर इस रीति से बजायें जायें कि पाँचों काली पटरियों वाले स्वर उपयोग में आ जायें। यह स्थिति बारह स्वरों में से मात्र तीन स्वरों में प्राप्त होती है-

1. पहले काले को सा मानने पर सा, रे, म, प, ध काली पटरियों पर प्राप्त होते हैं।

2. तीसरे काले को सा मानने पर सा, रे, ग, प, ध और

3. सातवें सफेद (पहले काले की कोमल नि) को सा मानने पर रे, ग, प, ध, नि स्वर काली पटरियों पर मिलेंगे। शेष बचे नौ स्वरों में से किसी एक स्वर से भी एक साथ पाँचों काली पटरियों वाले स्वरों का उपयोग शुद्ध स्वरों के लिए नहीं हो सकेगा इसलिए पहले काले से षड्ज ग्राम, तीसरे काले से मध्यम ग्राम और सातवें सफेद से निषाद ग्राम ये तीन ही ग्राम हो सकते हैं। कितने ही लोग सा, प और तार सां को तीन ग्राम मानते हैं तथा कुछ लोग तीनों सप्तकों को भी तीन ग्राम मानते हैं।

मध्यकालीन ग्रन्थकारों में पं. अहोबल, पं. श्रीनिवास और दक्षिणी ग्रन्थकारों में व्यंकटमखी आदि ने प्रचार में केवल षड्ज-ग्राम को ही माना है और मध्यम-ग्राम को अस्वीकार कर दिया जो तब तक लुप्त हो चुका था।

मूर्च्छना:- भारतीय संगीत का सम्बन्ध वेदों से जोड़ा जाता है मूर्च्छनाओं के बीज सामगान में विद्यमान है। सामगान का जो पहला स्वर होता था वह आरम्भक स्वर माना जाता था- **प्रत्येकं षड्जभावेन**[1] यह सामगान का नियम था, अतः म ग़ रे सा ऩि ध़ प़ में से प्रत्येक को आरम्भ मानकर चलने से भिन्न-भिन्न स्वरों की प्राप्ति होती थी। मूर्च्छना बदलने के कारण भिन्न-भिन्न स्वरों की प्राप्ति होने से गान का भिन्न रूप हो जाता था जो कि जाति और राग का आधार बना, निःसन्देह मूर्च्छना, जाति आदि अभी प्रयोग में नहीं आये थे। किन्तु उनका बीज सामगान में विद्यमान था। (भा.सं.का इति.,पृ.-68-69) मूर्च्छना शब्द 'मूर्च्छ' धातु से उत्पन्न होता है जिसका अर्थ है चमकना या उभरना। भरतकोष के अनुसार श्रुति की मृदु (उतरी हुई अवस्था) को लोगों ने मूर्च्छना कहा है। कुछ लोगों का कथन है कि राग रूपी अमृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के सरोवर में गायकों और श्रोताओं के हृदय का निमग्न होना ही मूर्च्छना है। संगीत-रत्नाकर में मूर्च्छना की परिभाषा इस प्रकार दी गई है:-

"क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्, मूर्च्छनेत्युच्यते"

(सं.रं.भाग-1,पृ.-103,104,श्लो.-9)

अर्थात् सातों स्वरों का क्रमानुसार आरोह व अवरोह मूर्च्छना कहलाता है। भातखण्डे जी ने अभिनव राग मंजरी में मूर्च्छनाओं को मेल (थाट) के समकक्ष माना है। उन्हीं के शब्दों में

मूर्छनाशब्दपर्यायो लक्ष्ये मेलः समाहतः।

(अभिनव राग मंजरी, पृ0-7)

मूर्च्छना-परिवर्तन का अर्थ है आधार स्वर या keynote को बदलना।

उदाहरण- 1. बिलावल के शुद्ध स्वरों में यदि ग को आधार स्वर मान लें तो ग म प ध नि सा रे ग क्रमशः भैरवी के सा रे ग म प ध नि सां हो जाएँगे।

जैसे- ग म मं प ध ध नि नि सां रें रें गं गं सा रे रे ग ग मं म प ध ध नि नि सां सा रे - ग - म - प ध - नि - सां

2. बिलावल के म को आधार स्वर मानने से यमन के स्वर प्राप्त होते है। जैसे-

म मं प ध ध नि नि सां रें रें गं गं मं मं

सा रे रे ग ग म मं प ध ध नि नि सां

सा - रे - ग - मं प - ध - नि सां

इसी प्रकार किसी भी राग के स्वरों में से अलग-अलग आधार स्वर या Keynote बदलने से भिन्न स्वरान्तर या थाटों की प्राप्ति होती है। यही मूर्च्छना पद्धति है।

मूर्च्छना का उददेश्यः- जो कार्य आज थाट करता है, वही कार्य प्राचीनकाल में मूर्च्छना करती थी अर्थात् राग या जाति में किन स्वरों का प्रयोग होना है इसे बताने के लिए मूर्च्छना का उल्लेख किया जाता था। आज वर्तमान में हम वही कार्य थाट बता कर करते हैं। थाट या मेल मे केवल आरोह होता है जबकि मूर्च्छना में आरोह और अवरोह दोनों का होना आवश्यक है, अतः ऐसा लगता है कि थाट के साथ-साथ किसी सीमा तक राग का भी स्वरूप प्रकट करना मूर्च्छना से होता होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों ग्रामों की सात-सात मूर्च्छनाएँ होती थीं। षड्ज-ग्राम की मूर्च्छनाओं के नाम इस प्रकार थेः- उत्तरमन्द्रा, रजनी, उत्तरायता, शुद्धषड्जा, मत्सरीकृता, अश्वक्रान्ता और अभिरुद्गता। ये सातों मूर्च्छनाएँ क्रमशः षड्ज, निषाद, धैवत, पञ्चम, मध्यम, गान्धार और ऋषभ से आरम्भ होती थीं। उत्तरमन्द्रा आधुनिक काफ़ी के, रजनी बिलावल के और उत्तरायता, बिना पञ्चम के दोनों मध्यम वाली भैरवी के समान थी शुद्ध-षड्जा आसावरी थाट के; मत्सरीकृता खमाज थाट के; अश्वक्रान्ता, कल्याण थाट के और अभिरुद्गता, भैरवी थाट के समान थीं।

मध्यम ग्राम की सात मूर्च्छनाएँ थीं- सौवीरी, हरिणाश्वा, कलोपनता, शुद्धमध्या, मार्गी, पौर्वी तथा हृष्यका। ये क्रमानुसार मध्यम, गान्धार, ऋषभ, षड्ज, निषाद, धैवत और पञ्चम से आरम्भ होती थीं। भरत मुनि ने मूर्च्छना का क्षेत्र विस्तृत करने के लिए ये चार प्रकार की मूर्च्छनाएँ कहीं है- पूर्णा, षाडवीकृता, औडुवीकृता और साधारणी। साधारणी के अन्तरसहिता, काकली सहिता और अन्तर काकली सहिता ये तीन भेद कहे हैं इनमें शुद्धा मूर्च्छनाओं को मिलाने से सम्पूर्ण मूर्च्छनाओं के कुल चार भेद हुए। षाडव और औडव भेदों को तानों का नाम दिया है। शार्ङ्गदेव ने शुद्ध और विकृत स्वरों के प्रयोग से सान्तरा, सकाकली और सकाकल्यन्तरा ये चार प्रकार की मूर्च्छनाएँ दी हैं।

आज के सन्दर्भ में यदि मूर्च्छना के चारों प्रकारों को समझना हो तो यह कहना होगा कि काफ़ी के स्वरों वाली मूर्च्छनाएँ शुद्धा हैं। काफ़ी में कोमल गांधार के स्थान पर शुद्ध गान्धार का प्रयोग करने से मूर्च्छनाएँ सान्तरा हो जाएँगी। काफ़ी में कोमल निषाद के स्थान पर शुद्ध निषाद का प्रयोग करने से सकाकली होंगी तथा काफ़ी के कोमल गांधार, कोमल निषाद के स्थान पर शुद्ध गान्धार, शुद्ध निषाद अर्थात् आज के बिलावल के स्वरों को प्रयोग करने से सकाकल्यन्तरा मूर्च्छना बनती थीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत-रत्नाकर में शार्ङ्गदेव ने दोनों ग्रामों की चौदह मूर्च्छनाओं को चार से गुणा करने पर कुल छप्पन प्रकार की मूर्च्छनाएँ कही हैं, जिन्हें आगे सारिणियों में दर्शाया गया है:-

षड्ज-ग्राम की मूर्च्छनाएँ

क्रम सं0	चतुर्विधि	मूर्च्छनाओं के नाम	स्वर व श्रुत्यन्तर	वर्तमान स्वर
1	शुद्धा	उत्तरमन्द्रा	सा रे ग म प ध नि 4 3 2 4 4 3 2	सा रे ग म प ध नि
2	-	रजनी	नि सा रे ग म प ध 2 4 3 2 4 4 3	सा रे ग म प ध नि
3	-	उत्तरायता	ध नि सा रे ग म प 3 2 4 3 2 4 4	सा रे ग म मं ध नि
4	-	शुद्ध षड्जा	प ध नि सा रे ग म 4 3 2 4 3 2 4	सा रे ग म प ध नि
5	-	मत्सरीकृता	म प ध नि सा रे ग 4 4 3 2 4 3 2	सा रे ग म प ध नि
6	-	अश्वक्रान्ता	ग म प ध नि सा रे 2 4 4 3 2 4 3	सा रे ग मं प ध नि
7	-	अभिरुद्गता	रे ग म प ध नि सा 3 2 4 4 3 2 4	सा रे ग म प ध नि
8	सान्तरा	उत्तरमन्दा	सा रे अंग म प ध नि 4 3 4 2 4 3 2	सा रे ग म प ध नि
9	-	रजनी	नि सा रे अंग म प ध 2 4 3 4 2 4 3	सा रे ग मं प ध नि
10	-	उत्तरायता	ध नि सा रे अंग म प 3 2 4 3 4 2 4	सा रे ग म प ध नि
11	-	शुद्ध षड्जा	प ध नि सा रे अंग म 4 3 2 4 3 4 2	सा रे ग म प ध नि
12	-	मत्सरीकृता	म प ध नि सा रे अंग 2 4 3 2 4 3 4	सा रे ग म प ध नि
13	-	अश्वक्रान्ता	अंग म प ध नि सा रे 4 2 4 3 2 4 3	सा रे ग म मं ध नि
14	-	अभिरुद्गता	रे अंग म प ध नि सा 3 4 2 4 3 2 4	सा रे ग म प ध नि
15	सकाकली	उत्तरमन्दा	सा रे ग म प ध कानि 2 3 2 4 4 3 4	सा रे ग म प ध नि
16	-	रजनी	कानि सा रे ग म प ध 4 2 3 2 4 4 3	सा रे ग ग मं ध नि
17	-	उत्तरायता	ध कानि सा रे ग म प 3 4 2 3 2 4 4	सा रे ग म मं ध नि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

18	–	शुद्ध षड्जा	प ध कानि सा रे ग म 4 3 4 2 3 2 4	सा रे ग म प ध नि
19	–	मत्सरीकृता	म प ध कानि सा रे ग 4 4 3 4 2 3 2	सा रे ग म॑ प ध नि
20	–	अश्वक्रान्ता	ग म प ध कानि सा रे 2 4 4 3 4 2 3	सा रे ग म॑ ध ध नि
21	–	अभिरुद्गता	रे ग म प ध कानि सा 3 2 4 4 3 4 2	सा रे ग म प ध नि
22	सकाकल्यन्तरा	उत्तरमन्द्रा	सा रे अंग म प ध कानि 2 3 4 2 4 3 4	सा रे ग म प ध नि
23	–	रजनी	कानि सा रे अंग म प ध 4 2 3 4 2 4 3	सा रे ग म म॑ ध नि
24	–	उत्तरायता	ध कानि सा रे अंग म प 3 4 2 3 4 2 4	सा रे ग म प ध नि
25	–	शुद्ध षड्जा	प ध कानि सा रे अंग म 4 3 4 2 3 4 2	सा रे ग म प ध नि
26	–	मत्सरीकृता	म प ध कानि सा रे अंग 2 4 3 4 2 3 4	सा रे ग म॑ प ध नि
27	–	अश्वक्रान्ता	अंग म प ध कानि सा रे 4 2 4 3 4 2 3	सा रे ग म प ध नि
28	–	अभिरुद्गता	रे अंग म प ध कानि सा 3 4 2 4 3 4 2	सा रे ग म प ध नि

मध्यम-ग्राम की मूर्च्छनाएँ

क्रम सं0	चतुर्विधि	मूर्च्छनाओं के नाम	स्वर व श्रुत्यन्तर	वर्तमान स्वर
1	शुद्धा	सौवीरी	म प ध नि सा रे ग 4 3 4 2 4 3 2	सा रे ग म प ध नि
2	–	हरिणाश्वा	ग म प ध नि सा रे 2 4 3 4 2 4 3	सा रे ग म॑ प ध नि
3	–	कलोपनता	रे ग म प ध नि सा 3 2 4 3 4 2 4	सा रे ग म प ध नि
4	–	शुद्ध मध्या	सा रे ग म प ध नि 4 3 2 4 3 4 2	सा रे ग म प ध नि
5	–	मार्गी	नि सा रे ग म प ध 2 4 3 2 4 3 4	सा रे ग म प ध नि
6	–	पौरवी	ध नि सा रे ग म प 4 2 4 3 2 4 3	सा रे ग म म॑ ध नि
7	–	हृष्यका	प ध नि सा रे ग म 3 4 2 4 3 2 4	सा रे ग म प ध नि
8	सान्तरा	सौवीरी	म प ध नि सा रे अंग 2 3 4 2 4 3 4	सा रे ग म प ध नि
9	–	हरिणाश्वा	अंग म प ध नि सा रे 4 2 3 4 2 4 3	सा रे ग म म॑ ध नि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

10	-	कलोपनता	रे अंग म प ध नि सा 3 4 2 3 4 2 4	सा रे ग म प ध नि
11	-	शुद्ध मध्या	सा रे अंग म प ध नि 4 3 4 2 3 4 2	सा रे ग म प ध नि
12	-	मार्गी	नि सा रे अंग म प ध 2 4 3 4 2 3 4	सा रे ग मं प ध नि
13	-	पौरवी	ध नि सा रे अंग म प 4 2 4 3 4 2 3	सा रे ग म प ध नि
14	-	हृष्यका	प ध नि सा रे अंग म 3 4 2 4 3 4 2	सा रे ग म प ध नि
15	सकाकली	सौवीरी	म प ध कानि सा रे ग 4 3 4 4 2 3 2	सा रे ग मं प ध नि
16	-	हरिणाश्वा	ग म प ध कानि सा रे 2 4 3 4 4 2 2	सा रे ग मं ध ध नि
17	-	कलोपनता	रे ग म प ध कानि सा 3 2 4 3 4 4 2	सा रे ग म प ध नि
18	-	शुद्ध मध्या	सा रे ग म प ध कानि 2 3 2 4 3 4 4	सा रे ग म प ध नि
19	-	मार्गी	कानि सा रे ग म प ध 4 2 3 2 4 3 4	सा रे ग ग मं ध नि
20	-	पौरवी	ध कानि सा रे ग म प 4 4 2 3 2 4 3	सा रे ग म मं ध नि
21	-	हरिष्यका	प ध कानि सा रे ग म 3 4 4 2 3 2 4	सा रे ग म प ध नि
22	सकाकल्यन्तरा	सौवीरी	म प ध कानि सा रे अंग 2 3 4 4 2 3 4	सा रे ग मं प ध नि
23	-	हरिणाश्वा	अंग म प ध कानि सा रे 4 2 3 4 4 2 3	सा रे ग म प ध नि
24	-	कलोपनता	रे अंग म प ध कानि सा 3 4 2 3 4 4 2	सा रे ग म प ध नि
25	-	शुद्ध मध्या	सा रे अंग म प ध कानि 3 3 4 2 3 4 4	सा रे ग म प ध नि
26	-	मार्गी	कानि सा रे अंग म प ध 4 2 3 4 2 3 4	सा रे ग म मं ध नि
27	-	पौरवी	ध कानि सा रे अंग म प 4 4 2 3 4 2 3	सा रे ग म प ध नि
28	-	हृष्यका	प ध कानि सा रे अंग म 3 4 4 2 3 4 2	सा रे ग म प ध नि

(विशेष :- अंग = अन्तर-गान्धार, कानि = काकली निषाद)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन दोनों सारिणियों को देखने से यह विदित होता है कि सगान स्वरों वाली तीन मूर्च्छनाएँ षड्ज-ग्राम में और तीन ही मध्यम-ग्राम में प्राप्त होती हैं किन्तु यदि उनके श्रुत्यन्तर पर ध्यान दें तो ज्ञात होगा कि बारह स्वरों (शुद्ध-विकृत) की दृष्टि से तो स्वर समान हैं पर उनकी श्रुतियों में भिन्नता है। जैस षड्ज-ग्राम की मूर्च्छना में आधुनिक शुद्ध-स्वर (बिलावल) दो, बारह और बाईस क्रम संख्या पर हैं पर उनकी श्रुत्यन्तर देखने से ज्ञात होता है कि कोई भी समान नहीं है और तीनों बिलावल रूपों में कुछ न कुछ अन्तर है। यही ग्राम-मूर्च्छना और थाट-प्रणाली में सूक्ष्म भेद है। इसी प्रकार अन्य समान स्वरों वाली मूर्च्छनाओं का भी परीक्षण किया जा सकता है। स्पष्ट है कि थाट-प्रणाली की अपेक्षा ग्राम-मूर्च्छना-प्रणाली अधिक सूक्ष्म थी।

बृहद्देशी की द्वादश-स्वर-मूर्च्छनाः- मतङ्गमुनि ने मूर्च्छना का विस्तार सात से बारह स्वर तक कर दिया। उन्होंने दो स्वर मन्द्र-सप्तक के और तीन स्वर तार-सप्तक के मिलाकर कुल बारह स्वरों वाली मूर्च्छना कही हैं जैसे यदि आज केवल मध्य-सप्तक में बिना मन्द्र-निषाद के यमन और पूरिया तथा तार सप्तक के बिना वसन्त, अड़ाना आदि को गाया जाए तो अपेक्षाकृत कठिन होगा। इन्हीं आवश्यकताओं को देखते हुए मतंगमुनि ने द्वादश-स्वर-मूर्च्छना-प्रणाली का प्रचार किया। जिन रागों या जातियों में मूर्च्छना षड्जादि, धैवतादि या किसी अन्य स्वर से कही गई हैं वहाँ बारह स्वरों वाली मूर्च्छना ही होती हैं। यदि उत्तरमन्द्रा आदि नाम दिए हैं तो सात स्वरों वाली मूर्च्छना समझना चाहिए।

सबसे बड़ी कठिनाई द्वादश-स्वर-मूर्च्छना प्रणाली में यह है कि इसके स्वर ही ज्ञात करना दुष्कर हैं क्योंकि षड्ज ग्राम की उत्तरमन्द्रा, रजनी आदि मूर्च्छनाएँ जो सां नि ध प म ग रे से आरम्भ होती थीं वे द्वादश-स्वर-मूर्च्छना-पद्धति में ध नि सा रे ग म प से क्रमशः आरम्भ होती हैं। मध्यम ग्राम की सौवीरी आदि मूर्च्छनाएँ म ग रे सा नि ध प से आरम्भ होती हैं, द्वादश-स्वर-मूर्च्छना-विधान में नि सा रे ग म प ध से क्रमशः आरम्भ होती हैं। चूँकि इस विधान से तो मूर्च्छनाओं के स्वरों को ज्ञात करना अत्यधिक कठिन है, सम्भवतः इसीलिए मतङ्ग के परवर्ती ग्रन्थकारों ने द्वादश-स्वर-मूर्च्छना विधान को अस्वीकार कर सप्तस्वर मूर्च्छना को ही मान्यता दी। राणा कुम्भा ने 'संगीत-राज' में, आचार्य बृहस्पति ने भरत का संगीत-सिद्धान्त (पृ.- 52) में द्वादश-स्वर-मूर्च्छना प्रणाली को अनुपयोगी सिद्ध किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारे प्राचीन महार्षियों की रागवर्गीकरण की मूर्छना-पद्धति ही सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि इस मूर्च्छना-पद्धति से भिन्न थाटों के स्वरों का श्रुत्यन्तर, कम्पन-संख्या परस्पर संवाद ठीक-ठीक निश्चित होकर रागों का गाना बजाना बिल्कुल सच्चे सुरों का शास्त्रीयशुद्ध होता है। जिस राग के जो स्वर होते थे उन्हीं स्वरान्तरों वाली मूर्च्छना में उस राग या जाति को रखा जाता था। आज के राग यमन को किस मूर्च्छना के अन्तर्गत रखा जाएगा? इसके लिए आज हम कहते हैं कि यमन राग कल्याण-थाट से उत्पन्न होता है। मूर्च्छना पद्धति में कहा जाएगा कि यमन राग अश्वक्रांता मूर्च्छना से उत्पन्न होता है जो कि षड्ज ग्राम के गान्धार से आरम्भ होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'जाति'-गान

जो स्थान आज भारतीय-संगीत में राग का है, राग के विकास के पूर्व, प्राचीनकाल में वही स्थान जाति-गान का था। जाति का शाब्दिक अर्थ है– 'समूह'। सामान्य भाषा में किसी वर्ग विशेष को, जो आकार, प्रकार, व्यवहार आदि में समानता रखता हो उसे एक जाति में रखा जाता है। संगीत के क्षेत्र में जाति शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त होता हैः-

1- रागों की जातियाँ- सम्पूर्ण, षाड़व, औड़व।

2- तालों की जातियाँ-त्र्यश्र (तिस्र), चतुरश्र (चतस्र), खण्ड, मिश्र और संकीर्ण।

3- प्राचीन जाति-गान।

यहाँ हम प्राचीन जाति-गान पर विचार करेंगे। जाति-गान भरत के समय प्रचार में था। लिखित रूप में संगीत का इतिहास भरतमुनि-कृत 'नाट्य-शास्त्र' से ही मिलता है इसलिए उससे पूर्व कब से जाति-गान आरम्भ हुआ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। नाट्य-शास्त्र में सात ग्राम-रागों का उल्लेख हैं [1] किन्तु देशी रागों का विस्तृत वर्णन मतंगमुनि ने 'बृहद्देशी' में ही किया है जिनका काल पाँचवीं, छठी शताब्दी माना जाता है।

जाति-गान के दस लक्षणः- ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, औड़व, षाड़व, मन्द्र और तार हैं। आचार्य-शार्ङ्गदेव ने तीन और लक्षणः- सन्यास, विन्यास और अन्तरमार्ग माने हैं अतः वह जातियों के (10+3=13) तेरह लक्षण मानते हैं। यही जाति-लक्षण आगे चलकर राग-लक्षण माने जाने लगे। अतः रागों की जननी जातियाँ रही होंगी इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जातियों का विस्तार-क्षेत्र रागों से अधिक रहा होगा यह भरत के इस वाक्य से ज्ञात होता है किः- 'यत्किञ्चिद् गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्।" [2]

अर्थात् संसार में जो भी गाया जाता है वह सब जातियों में विद्यमान है। आज हम रागों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कह सकते इसलिए रागों का क्षेत्र जातियों की तुलना में सीमित हुआ।

---

(1) - भ. सं. सि., पृष्ठ-199

(2)- बृहद्देशी में पृष्ठ-87 में नाट्यशास्त्र के नाम से उद्धृत, किन्तु ना.शा. के किसी भी संस्करण में उपलब्ध नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जातियाँ कुल अट्ठारह थीं, जिनमें से सात शुद्ध और ग्यारह संसर्गजा (मिश्रित) थीं।

शुद्ध-जातियाँः- शुद्ध जातियों के नाम इस प्रकार हैं:- षाड्जी, आर्षभी, गान्धारी, मध्यमा, पञ्चमी, धैवती और नैषादी। ये सातों शुद्ध-जातियाँ षड्ज, ऋषभ आदि स्वरों के नामों वाली थीं। इसके पीछे रहस्य यह है कि इसका 'नाम-स्वर' ही उस जाति का ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास होता था साथ ही उसे सम्पूर्ण होना भी आवश्यक था। इनमें से आर्षभी, धैवती और नैषादी ये चार षड्ज-ग्राम की और गान्धारी,मध्यमा तथा पञ्चमी ये तीन मध्यम-ग्राम की जातियाँ थीं।

न्यास को छोड़कर, शेष चार लक्षण अंश, ग्रह, अपन्यास, और सम्पूर्णत्व में से यदि किसी एक या एक से अधिक नियमों का उल्लंघन हो जाए तो जाति विकृत हो जाती थी। चारों में से एक-एक नियम के उल्लंघन से चार, दो-दो नियमों के उल्लंघन से छह, तीन-तीन के उल्लंघन से चार भेद तथा चारों नियमों के उल्लंघन से एक विकृत प्रकार बनता था। अतः षाड्जी-जाति जो शुद्ध-अवस्था में सम्पूर्ण तथा विकृत-अवस्था में षाडूव भी हो सकती थी, उसके कुल (4+6+4+1=15) पन्द्रह भेद होते थे। शेष छह जातियाँ सम्पूर्ण, षाड्व और औडुव भी होती थीं जिनके कारण कुल आठ भेद और अधिक हो जाते थे जो (15+8=23) तेईस हुए। ये आठ भेद निम्न प्रक्रिया के अनुसार होंगे:-

1	2	3	4
अंश	ग्रह	अपन्यास	सम्पूर्णत्त्व

एक लक्षण बदलने से जैसेः- 1-2-3-<u>4</u> चार प्रकार होंगे जिनमें सम्पूर्णत्व एक बार आया। दो-दो के बदलने से जैसे:- 1-2, 1-3, 1-<u>4</u>, 2-3, 2-<u>4</u>, 3-<u>4</u> में सम्पूर्णत्त्व तीन बार आया। तीन-तीन के बदलने से 1-2-3, 1-2-<u>4</u>, 1-3-<u>4</u>, 2-3-<u>4</u> में सम्पूर्णत्व पुनः तीन बार आया तथा चारों के बदलने से, जैसे:- 1-2-3-<u>4</u> में सम्पूर्णत्व एक ही बार आया। इस प्रकार लक्षणों के बदलने से विकृत जातियाँ बनते समय सम्पूर्णत्व जिसे हमने चार (<u>4</u>) संख्या से दर्शाया है, कुल आठ बार प्रयुक्त हुआ है जिससे सम्पूर्ण से षाडव बना। षाड्जी के बिना शेष 6 जातियाँ औडव भी होती थी इसलिए (23x6=138) एक सौ अड़तीस विकृत भेद हुए। अब षाड्जी के पन्द्रह और भेद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिलाने पर (138+15=153) कुल एक सौ तिरपन विकृत जातियाँ हो सकती थीं। इन विकृत जातियों के मिश्रण से संसर्गजा जातियाँ बनती थीं।

संसर्गजाः- संसर्गजा-जातियों के नाम इस प्रकार हैं:- षड्जकैशिकी, षड्जोदीच्यवा, षड्ज-मध्यमा, गान्धारोदीच्यवा, रक्तगान्धारी, कैशिकी, मध्यमोदीच्यवा, कार्मारवी, गांधार-पञ्चमी, आंध्री और नन्दयन्ती। इनमें से आरम्भ की तीन जातियाँ षड्ज-ग्राम की थीं और शेष आठ मध्यम-ग्राम की थीं अतः कुल जातियाँ सात षड्ज-ग्राम की (षाड्जी, आर्षभी, धैवती, नैषादी, षड्ज-कैशिकी, षड्ज-मध्यमा और षड्जोदीच्यवा) और शेष ग्यारह मध्यम-ग्राम की हैं।

आजकल मिश्रित रागों में हम देखते हैं कि किसी राग में दो रागों का मिश्रण होता है किसी में तीन या चार का, इसी प्रकार जातियों में भी था। दो संयुक्त नामों वाली जातियाँ दो जातियों के मिश्रण से बनती थीं, जैसे:- षाड्जी और कैशिकी जाति के संयोग से षड्ज-कैशिकी, षाड्जी और मध्यमा से षड्ज-मध्यमा तथा गान्धारी और पञ्चमी के संयोग या मिश्रण से गान्धार-पञ्चमी। तीन जातियों के मिश्रण से जैसे षाड्जी, गान्धारी और धैवती के मिलने से षड्जोदीच्यवा, चार जातियों जैसे षाड्जी, गान्धारी, मध्यमा और धैवती के संयोग से गान्धारोदीच्यवा तथा षाड्जी, गान्धारी, मध्यमा, पञ्चमी और नैषादी, इन पाँच जातियों के मिश्रण से कैशिकी जाति बनी थी।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि जाति-गान भी आज के राग के समान ही था। उस समय सात शुद्ध जातियाँ थीं; आज भी कल्याण, भैरव आदि दस थाट शुद्ध-राग हैं। मिश्रित रागों में जैसे- पूरिया और कल्याण के मिश्रण से पूरिया-कल्याण और भूपाली और कल्याण के संयोग से भूप-कल्याण बने हैं। ये राग दो-दो रागों से मिलकर बने हैं इसी प्रकार तीन या चार रागों के मिश्रण से भी अनेक राग बने हुए आज प्रचार में हैं। संसर्गजा जातियाँ भी इसी रीती से बनती थीं।

रागों की तुलना में जातियों का क्षेत्र विस्तृत था। इसे समझने के लिए दो बिन्दुओं पर विचार किया जा रहा है- (1) सम्पूर्ण, षाडव और औडव जाति भेद से तथा (2) अंश भेद से।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाति-भेद सेः- एक ही जाति सम्पूर्ण, षाड़व व औड़व भी हो सकती थी, जैसे- कार्मारवी, गान्धार-पञ्चमी, षड्ज-कैशिकी, मध्यमोदीच्यवा।

ये चार जातियाँ सदा-सम्पूर्ण थीं। षाड्जी, नन्दयन्ती, आर्षभी, गान्धारी ये चार सम्पूर्ण और षाड़व हो सकती थीं। शेष दस जातियाँ सम्पूर्ण, षाड़व और औड़व होती थीं। वर्तमान कल्याण सम्पूर्ण है। शुद्ध कल्याण के आरोहावरोह में निषाद लगाया जाए और आरोह-अवरोह में मध्यम बिल्कुल न हो तो षाड़व होगा। भूपाली 'मध्यम-निषाद' के बिना है जो कि औड़व है। जाति-गान में सम्भवतः ऐसे ही कुछ भेद से इन तीन रागों को एक-जाति माना जाता होगा जो कि जातियों के विस्तृत होने का संगीत है।

अंश भेद सेः- 'वादी भेदे राग-भेदः' (भ.सं.शां.,पृष्ठ-116) अर्थात् वादी के भेद से राग अलग हो जाता है। समान स्वर वाले रागों में वादी के बदलने से राग भिन्न माना जाता है, जैसे- "सा, रे, ग, प, ध, सां," शुद्ध स्वरों में 'गान्धार' वादी होने पर भूपाली और धैवत वादी होने पर देशकार हो जाता है। जब वादी स्वर में अन्तर होगा तो चलन में तो अन्तर करना ही होगा। जिस स्वर को अधिक दर्शाना हो उसके आस-पास के स्वरों को दुर्बल करना होता है। चित्रकला में भी जिस बिन्दु को अधिक दर्शाना हो उसे गहरे रंग से और दुर्बल बिन्दुओं को हल्के रंग से दर्शाया जाता है ताकि इच्छित बिन्दु अधिक दृश्यमान हो। जाति-गान में एक अंश वाली तीन जातियाँ नन्दयन्ती, मध्यमोदीच्यवा, गान्धार-पञ्चमी; दो अंशों वाली धैवती गान्धारोदीच्यवा, पञ्चमी; तीन अशों वाली नैषादी, आर्षभी, षड्जकैशिकी; चार अंशों वाली आंध्री, कार्मारवी, षड्जोदीच्यवा; पाँच अंशो वाली रक्त-गान्धारी, गान्धारी, मध्यमा, षाड्जी; छह अंशों वाली कैशिकी तथा सातों अंशो वाली षड्ज-मध्यमा जाति थी। अर्थात् अंश (वादी) बदलने से वर्तमान समय की तरह जाति नहीं बदलती थी। एक ही जाति के अनेक अंश हो सकते थे। इससे सिद्ध होता है कि जातियों का क्षेत्र वर्तमान रागों से कहीं अधिक विस्तृत था।

सभी ग्रन्थकारों ने अट्ठारह जातियाँ ही कही हैं। इसका अर्थ यह हो सकता है कि मुख्य जातियाँ अट्ठारह ही थीं। वर्तमान की भाँति रागों के अलग-अलग नाम न देकर उन्हीं मूल अट्ठारह जातियों में विकृत भेद मान लिए जाते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गान्धर्व-गान

गान्धर्व-गान, मार्ग-देशीः- भारतीय-परम्परा में सभी विद्याओं का सम्बन्ध वेदों से माना जाता है। वेद के छह अङ्ग हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं- छन्द, कल्प, व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त और ज्योतिष। इनमें से शिक्षा के अन्तर्गत स्वरशास्त्र का वर्णन मिलता है। नारदीय-शिक्षा में सामवेद की ऋक्, यजु और साम स्वरों का विवरण है। वैदिक स्वरों की तुलना लौकिक संगीत से करने पर क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र और अतिस्वर क्रमशः म ग रे सा नि़ ध़ प़ है। नारदीय शिक्षा में इन्ही को प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, पष्ठ एवं सप्त कहा है। नारदीय शिक्षा के अनुसार अन्तिम तीन स्वरों में क्रम परिवर्तन है। जो कि आगे सारणी में स्पष्ट है :-

वैदिक स्वर संज्ञाएँ	ना0शि0की स्वरगणना	लौकिक स्वर	नारदीय शिक्षा के स्वर
क्रुष्ट	प्रथम	म	म
प्रथम	द्वितीय	ग	ग
द्वितीय	तृतीय	रे	रे
तृतीय	चतुर्थ	स	स
चतुर्थ	पञ्चम	नि़	ध़
मन्द्र	पष्ठ	ध़	नि़
अतिस्वार्य	सप्त	प़	प़

सामगान के अतिरिक्त जो संगीत था उसे लौकिक कहा गया है (ना.शि.-1,पृ. -1)। उसमें से भी जो संगीत अनादि काल से चला आ रहा था, जिसका उद्देश्य आत्म-उत्थान था, जो अदृष्ट फलदायक था और जिसकी रचना ब्रह्मा ने की थी वह गान्धर्व कहलाया (सं.र.-2, पृ-203)।

गान्धर्वः- भरत ने नाट्य-शास्त्र के अटठाइसवें अध्याय में गान्धर्व को 'स्वर-ताल -पदात्मकम्' कहा है। यानी इन तीनों तत्वों में स्वर, ताल व पद में से क्रमानुसार गान्धर्व में स्वर की प्रधानता थी। क्रमशः इसके बाद ताल व पद का स्थान था और स्वरों का कर्षण अधिक होता था। केवल 14 मूर्च्छना, 84 तान, मन्द्र, तार, प्रसन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदि अलंकारों का प्रयोग जिस संगीत में होता था वह गान्धर्व था (ना.शा.-4, अभि. भा.,पृ-6)। 18 जातियाँ और 14 गीतक इसके अन्तर्गत आते थे। इसके अतिरिक्त जो संगीत था वह गान्धर्व नहीं माना जाता था। अर्थात् जो संगीत गान्धर्व की अपेक्षा लौकिक था वह 'गान' था।

गान्धर्व के लिए नारदीय शिक्षा में कहा गया है कि 'गा' से 'गान', 'ध' से वादन और 'व' से वाद्य का अभिप्राय है (ना.शि.-1,पृ-12)। अभिनव गुप्त का कहना है कि 'गां वाचं धारयतीति गान्धर्वं' (ना. शा.-1 अभि.भा.-4, पृ-6) अर्थात् गाना और वाणी को धारण करने वाला गान्धर्व है। जाति गान और गीतकों के अतिरिक्त 30 ग्राम राग, 8 उपराग, 20 राग, 96 भाषा, 20 विभाषा और 4 अन्तर्भाषाएँ सभी गान के क्षेत्र में आते थे पर अभिनव गुप्त स्वीकार करते हैं कि उनके समय तक गान्धर्व समाप्त प्राय हो गया है। पर वे गान्धर्व के समकक्ष मार्ग को नहीं गिनाते। गान के लिए 'देशी' शब्द का उल्लेख करते हैं।

अभिनव गुप्त से पूर्व मतङ्ग गान्धर्व गान के समकक्ष (बृ-1,पृ-4) मार्ग-देशी को मानते हैं। आगे चलकर शार्ङ्गदेव ने भी गान्धर्व गान को मार्ग-देशी के समान माना।

संगीत-रत्नाकर के प्रबन्धाध्याय के आरम्भ में पं. शार्ङ्गदेव लिखते हैं:-

रञ्जकः स्वरसन्दर्भो गीतमित्यभिधीयते।
गान्धर्वं गानमित्यस्य भेदद्वयमुदीरितम्।।
अनादिसम्प्रदायं यद्गन्धर्वैः सम्प्रयुज्यते।
नियतं श्रेयसो हेतुस्तद्गान्धर्वं जगुर्बुधाः।।
यत्तु वाग्गेयकारेण रचितं लक्षणान्वितम्।
देशीरागादिषु प्रोक्तं तद्गानं जनरञ्जनम्।।

(सं. र. भाग-2, पृ.-203)

अर्थात् रञ्जक स्वर-सन्दर्भ गीत है। इसके दो भेद हैं-गान्धर्व और गान।

अनादि काल से जो गन्धर्वों द्वारा प्रयोग किया जाता रहा है, जो नियत है यानी परिवर्तित नहीं किया जा सकता और जिसका उद्देश्य कल्याणकारी है वह गांधर्व है। इसके विपरीत जो वाग्गेयकार द्वारा रचा गया है, जो लक्षणों से युक्त देशी रागों में कहा गया है, वह गान है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रत्नाकर के प्रकीर्णक अध्याय में वाग्गेयकार के लक्षण बताने के बाद कहा गया है:–

मार्गंदेर्शी च यो वेत्ति स गांधर्वोऽभिधीयते।
यो वेत्ति केवलं मार्गं स्वरादिः स निगद्यते।। (सं.र.-2, पृ.-153)

अर्थात् जो व्यक्ति मार्ग और देशी संगीत दोनों का ज्ञाता है, वह गान्धर्व है और जो केवल मार्ग-संगीत का ही ज्ञाता है उसे 'स्वरादि' कहते हैं। इस प्रकार गान्धर्व एक संगीत का प्रकार तो था ही, साथ ही वह व्यक्ति भी गान्धर्व कहलाता था जो मार्ग-देशी दोनों संगीत प्रकारों का जानकार होता था।

इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर गान्धर्व-गान के समकक्ष मार्ग व देशी को कहा गया है अतः यह सिद्ध हो जाता है कि शार्ङ्गदेव के समय तक गान्धर्व व गान के लिए मार्ग-देशी शब्द प्रचार में पूर्णरूपेण स्वीकार कर लिए गए थे। शार्ङ्गदेव के साथ सभी परवर्ती ग्रन्थकारों ने भी गान्धर्वगान को मार्ग-देशी के समकक्ष मान लिया है।

मार्ग देशीः– मार्ग का अर्थ है रास्ता अर्थात् जो संगीत अध्यात्म के मार्ग की ओर ले जाने में सहायक हो, जिसकी खोज ब्रह्मा आदि देवताओं ने की हो (सं.र.-1, पृ.-14), जो अदृष्ट-फलदायक हो, जिसके नियम कठोर हों, जो बारबार बदला न जा सके और जिसका उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति हो वह मार्ग-संगीत है। इसके विपरीत वो संगीत जो वाग्येयकार द्वारा रचा गया हो, जिस संगीत का उद्देश्य जनमनरञ्जन हो, जो परिवर्तन शील हो, जिसके नियम कठोर न हों और जो अलग-अलग देशों या प्रांतों में अलग-अलग प्रकार का हो वह देशी-संगीत है।

मतङ्गमुनि के ग्रन्थ का नाम ही बृहद्देशी है। यानी देशी-संगीत का वर्णन करने वाला विस्तृत ग्रन्थ। मतङ्ग के अनुसार बाल-गोपाल और स्त्रियों द्वारा तथा राजाज्ञा से जो संगीत गाया जाता है, वह देशी संगीत है (बृ-1, पृ.-4)। उन्हीं के शब्दों में :-**अबला-बाल-गोपालैः क्षितिपालैर निजेच्छया; गीयते सानुरागेण स्वदेरो देशिरुच्यते।।** (बृ.-पृ. 2)

इस नियम से तो लगता है कि बाल, गोपाल और स्त्रियाँ तो लोकसंगीत ही गाएँगे। अतः इस बात से संकेत मिलता है कि देशी-संगीत का अर्थ लोक-संगीत भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो सकता है। अलग-अलग देशों या प्रांतों में तो लोक-संगीत अलग-अलग प्रकार का होता ही है।

पर वास्तव में ध्यान देने पर यही अनुभव होता है कि देशी-संगीत का अर्थ आज का लोक-संगीत नहीं बल्कि शास्त्रीय-संगीत ही है। उस ज़माने में सञ्चार व परिवहन के साधन वर्तमान के समान विकसित नहीं थे। अतः अलग-अलग प्रान्तों के रागों में कुछ न कुछ अन्तर हो जाता था या भिन्न-भिन्न घरानों के रागों में जो सूक्ष्म अन्तर पाया जाता है वह भी अलग-अलग स्थानों में होने वाला अन्तर कहा जा सकता है। अतः देशी संगीत का तात्पर्य शास्त्रीय-संगीत से ही है न कि लोक-संगीत से, क्योंकि मतंग मुनि ने जिस संगीत का वर्णन किया है वह रागदारी-संगीत ही है न कि लोक-संगीत।

दशविध राग वर्गीकरण में प्रथम छह-ग्रामराग, उपराग, राग, भाषा, विभाषा और अन्तर्भाषा तो मार्ग-संगीत के अन्तर्गत कहे गए हैं और शेष चार रागांग, भाषाङ्ग, क्रियाङ्ग, उपाङ्ग ये देशी रागों के अन्तर्गत कहे गए हैं। संगीत-रत्नाकर के द्वितीय अध्याय में प्रथम छह का वर्णन करने के बाद कहा गया है कि अब देशी रागों को कहते हैं (सं.र.-2, पृ.-15)।

संगीत में ताल को पद से अधिक और स्वर से कम महत्त्व दिया गया है जातिगान हो या गीतक इनमें पाँच मार्गी ताल कहे गए हैं, उनके नियम भी अत्यन्त कठोर थे। पाँच मार्गी तालों के नाम इस प्रकार हैं (सं.र.-3, पृ0-9-12)- (1) चच्चत्पुट (2) चाचपुट, (3) षट्पितापुत्रक (इसके दो नाम और भी थे :- उत्तर व पञ्चपाणि), (4) उद्घट्ट और (5) सम्पक्वेष्टाक।

इन तालों के चतुरश्र और त्र्यश्र दो भेद हैं, यानी जिन तालों की कुल मात्राओं का आधा-आधा करने पर जिसका अन्त एक पर होता है वह चतुरश्र होगा और जिसका तीन पर अन्त होता हो वह त्र्यश्र होगा आगे पाँच मार्गी तालों के प्रस्तार दिए जा रहे हैं:-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(1)	च	च्च	त्पु	टः
	ऽ	ऽ	।	ऽ'
	गुरु	गुरु	लघु	प्लुत

(2)	चा	च	पु	टः
	ऽ	।	।	ऽ
	गुरु	लघु	लघु	गुरु

(3)	षट्	पि	ता	पु	त्र	कः
	ऽ'	।	ऽ	ऽ	।	ऽ'
	प्लुत	लघु	गुरु	गुरु	लघु	प्लुत

(4)	उद्	घट्	टः
	ऽ	ऽ	ऽ
	गुरु	गुरु	गुरु

(5)	स	म्प	क्वे	ष्टा	कः
	ऽ'	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ'
	प्लुत	गुरु	गुरु	गुरु	प्लुत

इन पाँच तालों का विस्तार मार्ग-भेद से पुनः तीन-तीन प्रकार का हो जाता था। जैसे चच्चत्पुट ताल यथाक्षर में चार गुरुकाल की, जिसे 'एक-कल' और 'चित्र-मार्ग' कहा जाता था। द्विकल जो आठ गुरुकाल की थी उसे 'वृत्ति-मार्ग' और सोलह गुरुकाल वाली चच्चत्पुट ताल को 'चतुष्कल' या 'दक्षिग-मार्ग' माना जाता था। इन तालों के प्रथम विभाग को कनिष्ठा उँगुली से, दूसरे विभाग को कनिष्ठा और अनामिका से, तीसरे विभाग को तर्जनी के बिना शेष तीन उँगलियों से और चौथे विभाग को चारों उँगलियों से प्रदर्शित करना होता था। ताल की 'शब्द' और 'निःशब्द' क्रिया दो प्रकार की होती थी। आज भी हम सशब्द को ताली से और निःशब्द दो तालियों के मध्य की मात्राओं को उँगलियों के संकेत से प्रदर्शित करते हैं पर मार्गी-तालों में यदि चार मात्राएँ दो तालियों के मध्य दिखलानी होती थीं तो चारों को अलग-अलग संकेतों से प्रदर्शित करना होता था जिनके नाम इस प्रकार हैं- आवाप, निष्क्राम, विक्षेप और प्रवेश। हथेली ऊपर करके मुट्ठी का बन्द करना आवाप, हथेली नीचे करके मुट्ठी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खोलना निष्क्राम, दाहिनी ओर हाथ का फेकना विक्षेप और उल्टा हाथ करके मुट्ठी बन्द करना प्रवेश था। जिस प्रकार षड्ज, ऋषभ आदि के नाम क्रमशः 'सा' और 'रे' हैं उसी प्रकार आवाप का आ, निष्क्राम का नि, विक्षेप का वि, प्रवेश का प्र संक्षिप्त निःशब्द संज्ञाएँ थीं। सशब्द क्रिया भी चार प्रकार की थीः– (1) ध्रुव, (2) शम्या, (3) ताल और (4) सन्निपात।

चुटकी बजाते हुए हाथ नीचे लाना 'ध्रुव', दाहिने हाथ से बाएँ हाथ पर ताली मारना 'शम्या', बाएँ हाथ से दाएँ हाथ पर ताली मारना 'ताल', और दोनों हाथों को हाथ जोड़ने की मुद्रा में ताली मारना 'सन्निपात' होता था। सन्निपात सदैव ताल की अन्तिम मात्रा पर होता था इसका शेष क्रियाओं से अधिक महत्व था। वह सन्निपात ही आज सम्भवतः 'सम' हो गया है। आज सम, ताल की प्रथम मात्रा पर होता है किन्तु मार्गी तालों में अन्तिम मात्रा पर होता था। इतना ही नहीं प्रत्येक विभाग की सः शब्द क्रिया विभाग की अन्तिम मात्रा पर होती थी, जबकि वर्तमान में प्रथम मात्रा पर होती है। स्वरों की स्थापना प्राचीन मत से अन्तिम श्रुति पर थी आधुनिक युग में भातखण्डे जी ने प्रथम श्रुति पर की है। ताल में भी यही अन्तर देखा जा सकता है। देशी तालों में रास, निःशङ्कलील, सिंहविक्रम आदि 120 तालों का वर्णन शार्ङ्गदेव ने तालाध्याय में किया है।

'स्वर-ताल-पदात्मक' में पद का स्थान अन्तिम है। पदों में ईश-स्तुति होती थी। शब्दों का महत्त्व ताल और स्वर से कम होता था। स्वरों में इतना अधिक कर्षण होता था कि शब्द का अर्थ समझना ही कठिन हो जाता था। जैसे आज भी कुछ गायक जब अति-विलम्बित लय का प्रयोग करते हैं तो शब्दों का अर्थ ध्यान देने पर भी बड़ी कठिनाई से समझ में आता है।

गान या देशी में पद या शब्दा का सम्बन्ध रस से है। अतः देशी संगीत में स्वर के साथ-साथ पद की भी महत्ता है।

निष्कर्ष :-

(1) सामगान के अतिरिक्त जो संगीत था वह गान्धर्व कहलाता था। सामवेद से उत्पन्न सामगान के अतिरिक्त जो संगीत था वह लौकिक-संगीत कहलाता था। उसके दो भाग थे। गान्धर्व और गान। पूजा आदि में प्रयोग होना वाला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत गान्धर्व था। इसके नियम कठोर होते थे। इसके अन्तर्गत जातिगान और गीतक आते थे। शेष संगीत 'गान' के अन्तर्गत आता था। जिसमें ग्रामराग आदि छहों वर्ग आते थे।

(2) मतङ्ग-काल तक आते-आते गान्धर्व का स्थान मार्ग-संगीत ने ले लिया और गान का देशी संगीत ने।

(3) गान्धर्व की अपेक्षा मार्ग का क्षेत्र अधिक विस्तृत था क्योंकि जातियों और गीतकों के साथ-साथ ग्राम-राग आदि के छहों वर्ग भी मार्ग-संगीत में मिल गए जो गान्धर्व में नहीं थे।

(4) परिणामस्वरूप गान का क्षेत्र घट गया पर चूँकि मानव नवीन कल्पनाओं का सदा से ही पुजारी रहा है अतः इससे गान का क्षेत्र चाहे घट गया हो पर देशी रागों का क्षेत्र तो विकसित ही होता गया।

(5) वर्तमान में पूजा आदि में प्रयुक्त होने वाला संगीत किसी हद तक मार्ग-संगीत कहा जा सकता है पर देशी-संगीत तो रागदारी-संगीत को ही कहना होगा।

(6) गान्धर्व या मार्ग की अपेक्षा गान या देशी-संगीत में अपेक्षाकृत पद का महत्व अधिक है क्योंकि देशी-संगीत का सम्बन्ध रस से है, अतः गाये जाने वाले गीत का अर्थ श्रोताओं को समझ में आना आवश्यक है।

(7) नवीन वैज्ञानिक अविष्कारों के कारण देश ही नहीं पूरा संसार सिमट गया है। अतः अलग-अलग देशों के प्रत्येक क्षेत्र में पारस्परिक भेद कम हो गया है। इससे केवल घरानों में जो अन्तर है उसी पर आधारित अलग-अलग देशों में, गाया-बजाया जाने वाला ही देशी-संगीत माना जा सकता है।

(8) मार्ग-ताल व देशी-ताल भी अलग-अलग प्रकार के होते थे। शार्ङ्गदेव ने 5 मार्ग-ताल तथा 120 देशी तालें कही हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रबन्ध

आजकल रागों में जो स्थान बन्दिश का है वही स्थान प्राचीनकाल में प्रबन्ध का था। संगीत की प्रत्येक बन्दिश में स्वर, ताल व शब्द या पद होते हैं। प्रबन्ध शब्द में 'प्र' उपसर्ग है जिसका अर्थ है "अच्छी तरह से" और 'बन्ध' का अर्थ है "बंधा हुआ" यानि स्वर, ताल और पद से अच्छी तरह से बंधी हुई रचना प्रबन्ध कहलाती है। निबद्ध गान के अन्तर्गत प्रबन्ध, वस्तु और रूपक ये तीन शब्द शार्ङ्गदेव ने कहे हैं (सं.र.-2,पृ0-205)। उन्हीं के शब्दों में –

संज्ञात्रयं निबद्धस्य प्रबन्धो वस्तु रूपकम्।।

(सं0र02,पृ-205)

प्रबन्ध का अपभ्रंश रूप बन्दिश और वस्तु का भाषान्तर 'चीज़' हो गया है। यद्यपि रूपक शब्द वर्तमान समय में संगीत से हटकर नाटक में प्रयुक्त होने लगा तथापि जिस नाटक में संगीत की प्रधानता होती है उसे संगीत-रूपक कहते हैं।

देशी-संगीत में ध्रुवाएँ थीं। उन्हीं ध्रुवाओं का स्थान आगे चलकर प्रबन्ध ने ले लिया। मतंग के समय तक संगीत ने नाट्य से स्वतन्त्र स्थान प्राप्त कर लिया था अतः मतंग ने 'बृहद्देशी' में, शार्ङ्गदेव ने 'संगीत-रत्नाकर' में, राणाकुम्भा ने 'संगीतराज' में और पण्डित मण्डली ने 'संगीत शिरोमणि' में प्रबन्ध पर विस्तृत वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त पार्श्वदेव, सुधाकलश वचानाचार्य, श्रीकण्ठ, अहोबल आदि ने प्रबन्ध ा का वर्णन संक्षिप्त रूप से किया है।

प्रबन्ध की तुलना पुरुष से :– आयुर्वेद के अनुसार जिस प्रकार प्रत्येक पुरुष का शरीर वात, पित्त, कफ़ नामक धातुओं से बना होता है उसी प्रकार प्रबन्ध भी उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग नामक धातुओं से बना है। मनुष्य के शरीर में आँख, हाथ पैर आदि अंग होते हैं और प्रबन्धरूपी पुरुष के तेन, पद, बिरुद, पाट, स्वर व ताल ये छह अंग कहे गए हैं जिनमें से तेन और पद आँखों, बिरुद और पाट हाथों, स्वर और ताल पैरों के समान माने गये हैं। इन छह अंगों में तेन, पद व बिरुद ये तीन बन्दिश या प्रबन्ध में प्रयुक्त पद्य रचना से सम्बन्धित हैं। ताल और पाट, ताल से तथा स्वर, स्वर से सम्बन्धित हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1. **तेनः-** तेन का अर्थ है मङ्गलार्थक शब्द, जैसेः- हरि ॐ तत्सत्। तेन शब्द तत् शब्द की तृतीय विभक्ति का एकवचन है। तत् का अर्थ है- वह, अर्थात् ब्रह्म।

2. **बिरुदः-** इस शब्द के अन्तर्गत पद्य रचना का वह भाग माना जाता था जिसमें किसी बलवान नायक की वीरता का वर्णन हो, जैसे- भुजबल भीम।

3. **पदः-** प्रबन्ध में तेन व बिरुद के अतिरिक्त शेष सभी शब्द पद के अन्तर्गत आते थे।

4. **पाटः-** किसी वाद्य पर बजाए जाने वाले पाटाक्षरों को पाट कहा जाता था, जैसे आज भी किसी- किसी बन्दिश में तबले या पखावज के शब्द होते हैं। प्रबन्ध में इस भाग को पाट कहा जाता था।

5. **स्वरः-** किसी-किसी बन्दिश में आज भी सरगम के रूप में स्वर मिलते हैं, जैसे- आसावरी के लक्षण गीत में आता है- सा रे म रे, म प ध॒ प, ध॒ ग॒ रें सां, रें नि॒ ध॒ प। प्रबन्ध का इस प्रकार का अंश, स्वर कहलाता था।

6. **तालः-** कोई भी तालबद्ध रचना किसी न किसी ताल में निश्चित ही बँधी हुई होगी। अतः ताल भी प्रबन्ध का एक अंग हुआ। यह भी कहा जा सकता है कि प्रबन्ध या बन्दिश में ताल के विभागों या वज़न से छन्द की जो अनुभूति होती है उसे भी ताल कहा जा सकता है।

प्रबन्ध की जातियाँः- किसी प्रबन्ध में अधिक से अधिक छह और कम से कम दो अंगों का होना आवश्यक था। छह अंगों वाली जाति को 'मेदिनी' या 'श्रुति' कहा जाता था। श्रुति वेद को कहते हैं। वेद के छन्द, शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त एवं ज्योतिष ये छह अङ्ग हैं,।

पाँच अङ्गों वाले प्रबन्ध का नाम आनन्दनी जाति या नीति था। चार अङ्गों वाले प्रबन्ध का नाम दीपनी जाति या सेना था। तीन अङ्गों वाले प्रबन्ध का नाम भावनी या कविता था।

कविता के तीन अङ्ग शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास हैं। दो अङ्गों वाले प्रबन्ध को तारावली या चम्पू कहा जाता था। चम्पू के गद्य व पद्य ये दो अङ्ग होते हैं। कम से कम दो अङ्ग कहने का अर्थ यही लगाया जा सकता है कि किसी भी बन्दिश में स्वर व ताल तो होंगे ही, जैसे आज स्वरमालिका में स्वर और ताल ये दो अङ्ग कहे जा सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'धातु' गेयांश को कहते हैं। दो, तीन और चार धातु वाले प्रबन्ध– ये तीन प्रकार के प्रबन्ध होते थे। आज अधिकतर बन्दिशों में स्थायी व अन्तरा ये दो भाग होते हैं। कुछ ध्रुपदों में स्थायी, अन्तरा, सञ्चारी व आभोग ये चार भाग भी पाये जाते हैं। ऐसे ध्रुपदों को चार धातुओं वाला प्रबन्ध कहा जाएगा। प्रबन्ध का प्रथम धातु 'उद्ग्राह' कहलाता था। जिसे आज राग की 'उठान' कह सकते हैं। उद्ग्राह के बाद गाया जाने वाला धातु मेलापक था। 'मेलापक' का अर्थ है मिलाने वाला। तीसरा भाग 'ध्रुव' था। ध्रुव का अर्थ है स्थिर, वही सम्भवतः आज का 'स्थायी' हो गया है। ध्रुव व उद्ग्राह को मिलाने वाला मेलापक हुआ। प्रबन्ध का अन्तिम भाग 'आभोग' कहलाता था। आज भी जिन ध्रुपदों में चार भाग होते हैं उनके अन्तिम भाग को आभोग कहते हैं। ध्रुव और आभोग के मध्य 'सालग-सूड' प्रबन्धों में 'अन्तरा' नाम का भी एक ध ातु होता था। अन्तरा का अर्थ है मध्य में आने वाला परन्तु वर्तमान में तो अधिकतर बन्दिशों के दो भाग होते हैं और अन्तिम या दूसरे भाग को अन्तरा कहते हैं।

अङ्ग के समान ही प्रबन्ध के लिए भी कम से कम दो धातुओं का होना आवश्यक है। दो धातुओं वाले प्रबन्ध में उद्ग्राह व ध्रुव का होना आवश्यक था अर्थात् मेलापक व आभोग हों चाहे न हों। इसका अर्थ यह हुआ कि वर्तमान में स्थायी व अन्तरा वाली दो धातुओं की बन्दिशों को भी शास्त्र-सम्मत कहा जा सकता है।

प्रबन्धों के भेद-उपभेदः– प्रबन्ध दो प्रकार के कहे गए हैं– अनिर्युक्त और निर्युक्त। जो प्रबन्ध छन्द व ताल से नहीं बँधे होते थे, वे अनिर्युक्त प्रबन्ध कहलाते थे। इसके विपरीत जिन प्रबन्धों में छन्द व ताल के नियम अपनाए जाते थे, वे प्रबन्ध निर्युक्त कहलाते थे। पुनः प्रबन्ध के तीन भेद थे, जो इस प्रकार हैंः– 'सूड', 'आलिक्रम' और 'विप्रकीर्ण'।

1. सूड प्रबन्धः– इनके तीन भेद थेः– शुद्ध, सालग (छायालग) व मिश्र। शुद्ध के आठ, सालग (छायालग) के सात और मिश्र के अट्ठाइस उपभेद थे।

सूड प्रबन्धों के भेद शुद्ध के 8 उपभेदों के नाम इस प्रकार हैं– एला, करण, ढेंकी, वर्तनी, झोंबड, लम्भक, रासक एवं एकताली। इनके भी अनेक उपभेद माने जाते थे जैसे एला प्रबन्ध के पुनः मुख्य चार उपभेद थे– गणैला, वर्णैला, मात्रैला, देशैला (छन्दस्त्वैला, वस्त्वैला)। इनके भी अनेक भेद हो जाते थे, जैसे गणैला के यगण, मगण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदि के आधार पर; वर्णैला के अक्षरों अर्थात् वर्ण के आधार पर; मात्रैला मात्राओं के आधार पर और देशैला देश या प्रांत की भाषाओं के आधार पर, जैसे आंध्रैला, द्रविड़ैला, लाटैला, गौडेला, कर्णाटैला थे।

इसी प्रकार शुद्ध-सूड के दूसरे क्रम 'करण' के 27, तीसरे ढेंकी के 30, चौथे वर्तनी का कोई उपभेद नहीं था, पाँचवें झोंबड के 24, छठे लम्भक के 8, सातवें रासक के 24 और आठवें एक ताली का कोई उपभेद नहीं था।

2. **आलिक्रमः**- इसके वर्ण, वर्णस्वर, गद्य, कैवाड, अंकचारिणी, कन्द तुरगलीला, गजलीला, आदि 24 उपभेद थे। इन 24 प्रबन्धों में सूड के 8 प्रबन्ध मिलाकर शार्ङ्गदेव ने संगीत-रत्नाकर (सं.-2, पृ.-213) में आलिक्रम के 32 प्रकार कहे हैं।

3. **विप्रकीर्णः**- इसके 36 भेद कहे गए हैं, जिनके नाम श्रीरंग, श्रीविलास, पञ्चभंगी, पञ्चानन, उमातिलक, त्रिपदी, चतुष्पदी, षट्पदी, आदि हैं। (सं.र.-2, पृ0-214)

इन सब प्रबन्धों का वर्णन करने के बाद संगीत-रत्नाकर में सात सालग-सूड प्रबन्धों का वर्णन किया गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैंः-

(1) ध्रुव, (2) मण्ठ, (3) प्रतिमण्ठ, (4) निःसारुक, (5) अवताल, (6) रास और (7) एकताली।

इन सात नामों में कर्नाटक-संगीत की सात तालों में से चार नाम (ध्रुव, मण्ठ, अड्डताल, एकताली) मिलते हैं। सालग-सूड प्रबन्ध और दक्षिणी तालों की संख्या भी समान है। क्या इनमें कोई साम्य है? यह विचारणीय है।

आगे सभी भेद, उपभेद एक वृक्ष में एक साथ दिए जा रहे हैं जिससे कि इन भेदों व उपभेदों को समझने में सुविधा हो सकेः-

(1) धातु (2) अङ्ग (3) राग (4) ताल (5)लय (6) छन्द, (7)ग्रह, (8)न्यास (9) वर्णनीय विषयवस्तु, (10) वर्णो (अक्षरों) के गाढ़ अथवा शिथिल बन्ध आदि के कारण प्रबन्धों के सैकड़ो प्रकार बनते हैं। एला के 356 और झोंबड के 3510 भेदों का उल्लेख संगीत रत्नाकर में किया गया है। (सं0 रं0 4 श्लोक 131, 167) अन्य फुटकर निर्देश जैसे कि वाग्गेयकार का नाम कहाँ रहेगा, वर्णनीय अथवा वन्दनीय पात्र का नाम कहाँ रहेगा इत्यादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

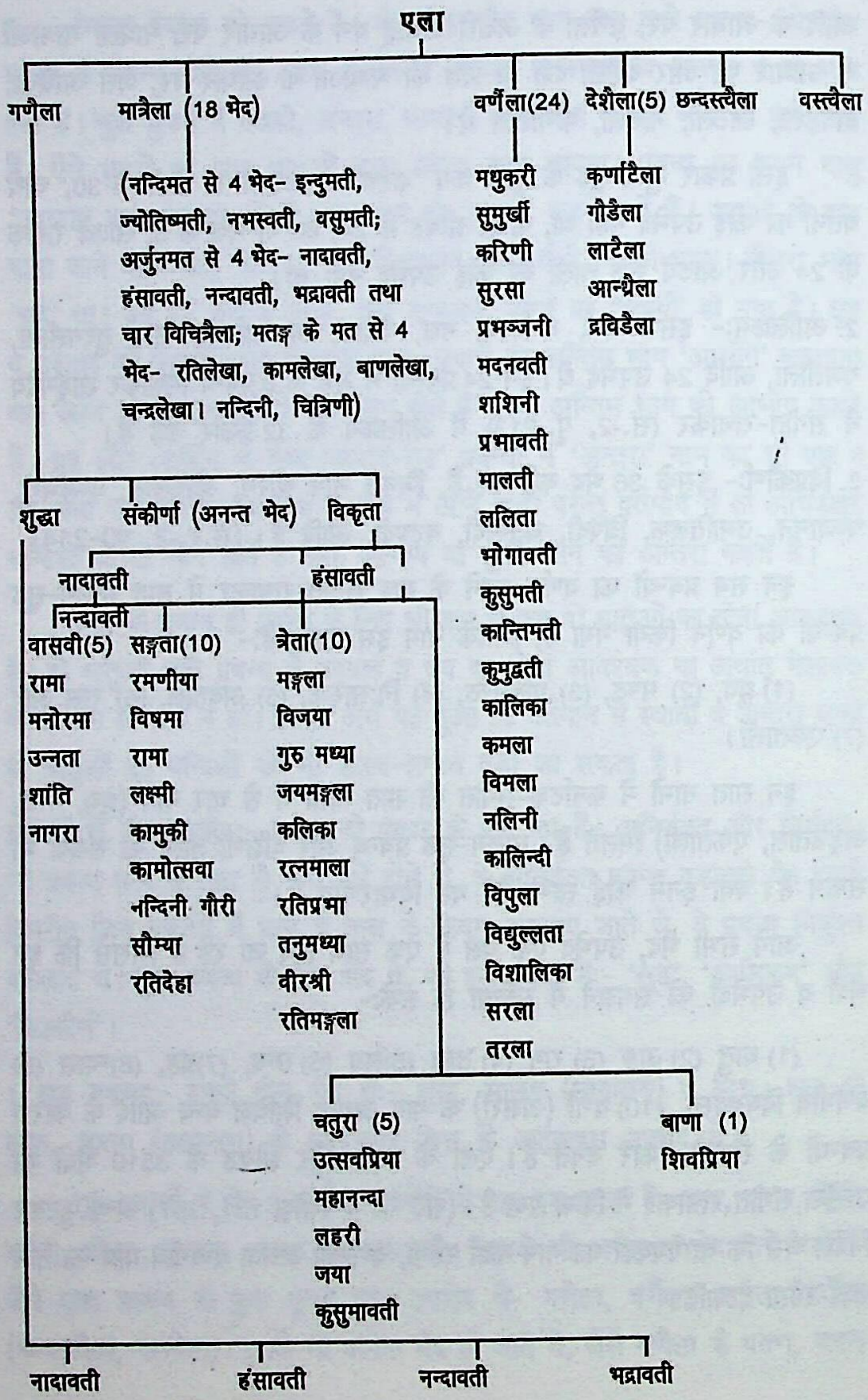

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रबन्ध के मुख्य तीन भेदों में सूड, आलिक्रम और विप्रकीर्ण में मुख्य अन्तर यह था कि पहले और बाद में गाये जाने वाले गीतों के सूड प्रबन्धों में सम्बन्ध होता था और इसके उपभेदों की संख्या अधिक थी। जयदेव का 'गीत-गोविन्द' सूड प्रबन्ध का उदाहरण है (भा.रं.ल.-1,पृ0-21)। गीत-गोविन्द के कुल 24 पद हैं जिनमें अर्थ की दृष्टि से पारस्परिक सम्बन्ध है। जहाँ नहीं है, वहाँ श्लोक देकर कथा वस्तु में सम्बन्ध जोड़ा गया है। आलिक्रम के प्रबन्धों में अंगों की संख्या यानी उपभेदों की संख्या सूड की अपेक्षा कम थी। विप्रकीर्ण ऐसे प्रबन्ध थे जिनमें परस्पर कोई सम्बन्ध न था। वे मुक्तक- काव्य की तरह स्वतन्त्र थे। वर्तमान में भी प्रत्येक बन्दिश स्वतन्त्र होती है। सामान्यतः किसी कलाकार द्वारा प्रस्तुत विलम्बित व द्रुत ख़याल में भी सम्बन्ध अधिकतर नहीं होता; जैसे यमन के विलम्बित ख़याल, 'भज हरि नाम तू मोरे मनवा' और द्रुत ख़याल 'पिया की नजरिया जादू भरी' इन दोनों बन्दिशों में अर्थ की दृष्टि से कोई सम्बन्ध नहीं है।

वर्तमान में जो बन्दिशें बहुत दुर्लभ मानी जाती हैं, वे भी प्रायः प्रबन्ध भेदों के ही अवशेष हैं।

1. स्वरार्थ प्रबन्धः- आज कुछ ऐसी दुर्लभ मानी जाने वाली बन्दिशें हैं, जिनमें स्वरों के सांकेतिक वर्ण सा, रे, ग, म, प, ध, नि के साथ ऐसी रचनाएँ की जाती हैं कि उन-उन वर्णों के साथ जुड़ी हुई स्वर की तारता को गाने में बनाए रखते हुए उन-उन वर्णों की सार्थक रचना भी बन जाती है, उदाहरण के लिए-

(1) धनी राम से माँगी राम ने पैसा माँगा
ध़ नि़ रे म सा म ग रे म नि प सां म ग

(2) पुनि पुनि सीस धुनि
प नि प नि सां सां ध नि

ये तो वाक्यांश हैं। अनेक घरानेदार गायक पूरा स्थायी-अन्तरा भी गाते देखे जाते हैं। ये स्वर गाए जाएँगे तो स्वरों के सांकेतिक वर्णों से एक साथ दो कार्य सिद्ध होंगे, एक सार्थक शब्द-रचना का और दूसरा स्वर-योजना का। जिन रागों में सातों स्वर लगते हैं ऐसे रागों में स्वरार्थ प्रबन्ध बनाना अप्रेक्षाकृत सरल है। छः और पाँच स्वरों के षाडव और औडव जाति के रागों में भी स्वरार्थ प्रबन्ध गाये जाते हैं जो बनाने वाले कलाकार की बुद्धि का कौशल ही कहा जा सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

2. चतुरङ्ग प्रबन्धः- चतुरङ्ग का अर्थ है चार अंगों वाला, इसे देशी भाषा में चतरंग भी कहते है, प्रत्येक चतुरंग प्रबन्ध में गीत के चार अलग-अलग भाग दिखलाई देते हैः- (1) किसी भी भाषा में शब्द रचना, (2) तराने के बोल, (3) सरगम और (4) तबले या मृदंग के बोल अथवा किसी अन्य भाषा की शब्द रचना जो सामान्यतः फ़ारसी अथवा संस्कृत की कोई छोटी सी रचना होती है। उदाहरणार्थ (रा.नि.-3,पृ0-61)- "चतरंग गावो गुनि सब मिलकर आज तान आलाप करन सो। नादिर् धितिलान तर्दीं दीं तननन सां नि ध प म ग रे सा रे म प ध सां सप्तस्वरात्रयोग्रामा मूर्च्छनाएकविंशती ताना एकोनपञ्चाशत् इत्येतत् स्वर-मण्डलम्।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुरंग (राग-सिन्धूरा)

सां **स्थायी** म

प नि सां रें	नि - ध प	रे म नि प	ग ग रे सा
च त र X	गा ऽ वो ऽ	गु नि स ब	मि ल क र
0	3	X	2
स - - रे	म - प ध	सां - सां रें	नि सां निध पम
आ ऽ ऽ ज	ता ऽ न अ	ला ऽ प क	र न सोऽ ऽऽ
0	3	X	2

अन्तरा

म ममप ध	सां - सां सां	रें गं रें सां	रें नि सां सां
ना दिरधि ति	ला ऽ न त	दीं ऽ दीं ऽ	त न न न
0	3	x	2
सां नि ध प	म ग रे सा	रे म प ध	सां - - -
0	3	x	2
रें रें गंरें -गं	रें गं रें रें	मंगं रेंसां -रें सांनि	सां - सां रें
स प्त स्वरा ऽत्र	यो ग्रा मा मू	र्छना एऽ कूविं ऽश	ती ऽ ता ना
0	3	x	2
म प - धध	सां सां रें पंमं	गं रेंरें रें ऽमं	गंरें सांनि धप मप
ए को ऽ नपं	चा शत् इ त्येऽ	तत् स्वर म ऽण्ड	लम् ऽऽ ऽऽ ऽऽ
0	3	x	2

3. तिरविट प्रबन्धः- अनेक विद्वान केवल तबले या पखावज के बोलों वाली किसी राग में बंधी हुई रचना को तिरविट कहते हैं। वैसे तीन अंगों वाले प्रबन्ध को तिरविट कहा जाता था। धिरकिटतक् धीधीनाधीना तीतीनाधीना धीधीनाधीधीना थुंथुं नाथुं थुंथुं थुंथुं किडनग गुरुको गावे तब वेद पावे गुनी धिरिकिटतक् धिरिकिटतक् धाक्ड़ान् धाधाधा नगड्झगड् तक् थूंना। द्रुतमध्यविलम्बित और तालकाल समविषम को कण्ठवरन कर दिखावे सुध मत तब बड़ोगायक कहावे धिरिकिटतक् धिरिकिटतक् धाक्ड़ान् धाधाधा नगड्झगड् तक् थूंना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिरविट (राग-भूपाली)

स्थायी

, सासासासा रेरे	ग ग – ग	– सा – सा	रे रे – सा
धिर किट तक्	धी धी ऽ ना	ऽ धी ऽ ना	ती ती ऽ ना
3	x	2	0
– सा – सा	सा ग ग ग	प प प प	ग ध प प
ऽ धी ऽ ना	धी धी ना धी	धी ना थुं थुं	ना थुं थुं थुं
3	x	2	0
ग रे सासा सासा	ग ग ग प	– ध सां सां	प ध प रे
थुं थुं किऽ नग	गु रु को गा	ऽ वे त ब	वे ऽ द पा
3	x	2	0
– रे सा सा	सांसांसांसां रेंरें रेंरें	सा-सा --- ध-ध -प-	गग गध धध पप
ऽ वे गु नी	धिरकिटतक्धिरकिटतक्	धाऽकड़ांऽऽऽधाऽधाऽधाऽ	नग डझ गड तक्
3	x	2	0
ग रे रेसासासारेरे			
थूं ना धिरकि टतक्	धी धी ना		
3	x		

अन्तरा

ग – ग प	– प सां ध	सां – – सां	– रें सां सां
द्रु ऽ त म	ऽ ध्य वि ऽ	ल ऽ ऽ म्बी	ऽ त औ र
x	2	0	3
सां		सां	
ध – ध सां	– रें सां सां	ध – – प	– ध प –
ता ऽ ल का	ऽ ल स म	वी ऽ ऽ ष	ऽ म को ऽ
x	2	0	3
गं – रें गं	गं रें सां सां	ध ध – प	ग ग प ध
क ऽ ण्ठ ब	र न क र	दि खा ऽ वे	सु ध म त
x	2	0	3
सां सां ध प	ग – रे ग	– – सा रे	– स – –
त ब ब ड़ो	गा ऽ य क	ऽ ऽ क हा	ऽ वे ऽ ऽ
x	2	0	3
सांसांसांसां रेंरें रेंरें	सां-सां— ध-ध -प-	गग गध धध पप	ग रे रेसासा सारेरे
धिरकिटतक्धिरकिटतक्	धाऽकड़ांऽऽऽधाऽधाऽधाऽ	नग डझ गड तक्	थूं ना तिरकि टतक्
x	2	0	3
धी धी ना			
x			

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

4. कैवाड प्रबन्धः- इसमें पाटाक्षरों अर्थात् तबला या मृदंग के बोलों से सार्थक अथवा निरर्थक गेय रचना बनाई जाती है।

उदाहरण-1-'तकत-तकत तन घटत दिन दिना, धीक धीक मन रटन करत ना।' (साभार-पं. शीतल प्रसाद मिश्र)

1 2 3 4	5 6 7 8	9 10 11 12	13 14 15 16
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा
x	2	0	3
तक तत कत तन	घट तदि नदि नाऽ	धीऽ कधी ऽक मन	रट नक रत नाऽ
x	2	0	3
ऽत कत तक तत	नघ टत दिन दिना	ऽधी ऽक धीऽ कम	नर टन कर तना
x	2	0	3
ऽऽ तक तत कत	तन घट तदि नदि	नाऽ धीऽ कधी ऽक	मन रट नक रत
x	2	0	3
ना धिं धिं धा			
x			

अथवा

1 2 3 4	5 6 7 8	9 10 11 12	13 14 15 16
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा
x	2	0	3
तक तत कत तन	घट तदि नदि नाऽ	धीऽ कधी ऽक मन	रट नक रत नाऽ
x	2	0	3
ऽधी ऽक धीऽ कम	नर टन कर तना	ऽऽ धीऽ कधी ऽक	मन रट नक रत
x	2	0	3
ना धिं धिं धा			
x			

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उदाहरण-2 -"ना धन ना धी (बुद्धि) दीनन को तक धाता (विधाता) नी के ना कटे कटत दिन दे धीर दीनन को धाता धाता धाता, नित-नित दे धीर दीनन को धाता धाता धाता, नित-नित दे धीर दीनन को धाता धाता धाता"।

1 2 3 4	5 6 7 8	9 10 11 12	13 14 15 16
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा
x	2	0	3
नाऽ धन ना थी	ऽ दी नन को	तक धा ता ऽ	नी के ना कटे
x	2	0	3
ऽक टत दिन देऽ	ऽधी ऽर दी नन	को धा ता ऽ	धा ता ऽ धा
x	2	0	3
ता नित नित देऽ	ऽधी ऽर दी नन	को धा ता ऽ	धा ता ऽ धा
x	2	0	3
ता नित नित देऽ	ऽधी ऽर दी नन	को धा ता ऽ	धा ता ऽ धा
x	2	0	3
ता धिं धिं धा		x	

विचारणीय बिन्दुः-

1. प्रबन्ध के विस्तृत वर्णन को देखने से ज्ञात होता है कि इन भेदों में बन्दिशों की पद्य रचना पर अधिक बल दिया जाता था। इससे प्रश्न यह पैदा होता है कि बन्दिश में शब्द रचना की अपेक्षा स्वर-पक्ष या गेयांश क्या गौण रखा जाता था? यदि ऐसा था तो स्पष्ट है कि वर्तमान की अपेक्षा प्राचीनकाल में स्वर की तुलना में पद को प्रमुखता प्राप्त थी। 17 वीं शताब्दी तक आते आते प्रबन्धों में शब्दों का महत्त्व कम होने लगा और स्वर को अधिक महत्ता दी जाने लगी सम्भवतः इसीलिए अहोबल की संगीत पारिजात में कहना पड़ा-

   वर्णैरेतेषु स्वल्पत्वमू स्वर..........

2. देशी-प्रबन्धों के भेदोपभेद के निर्माण के क्या-क्या आधार थे? उन आधारों में कौन-कौन से आज भी जीवित हैं अथवा कौन-कौन से पुनर्जीवित किए जा सकते हैं।

3. जब देशी भाषाओं में प्रबन्ध रचना होने लगी तब किस प्रकार और किन कारणों से क्रमशः प्रबन्ध के शास्त्रीय शब्दों का व्यवहार से लोप होने लगा?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय अध्याय

भारतीय-संगीत में वैज्ञानिकता

सामान्यतः यह कहा जाता है कि दक्षिणी-संगीत तो शुद्ध भारतीय है, पर उत्तरी-संगीत विदेशी प्रभाव के कारण शुद्ध भारतीय नहीं है। हम यहाँ इस भ्रामक धारणा का निराकरण करने का प्रयास करेंगे। उत्तरी या हिन्दुस्तानी संगीत वैदिक काल से लेकर भरत और शार्गंदेव सम्मत संगीत ही है। इसकी आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ ऊपरी दिखावे में मुस्लिम प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। संगीत की आत्मा का अर्थ है रागों में संवाद-विवाद का नियम और तालों में छन्द और बाहरी दिखावे का अर्थ है रागों और तालों के नामों में परिवर्तन तथा तबला, सितार, ख़याल शैली आदि का अविष्कार। हमारे विचार से कर्नाटकी-संगीत, गणित पर आधारित होने के कारण व्यवस्थित कहा जा सकता है। हिन्दुस्तानी-संगीत उतना व्यवस्थित नहीं है लेकिन यदि ध्वनि-विज्ञान के नियमों की दृष्टि से देखा जाए तो उत्तरी-संगीत ही अधिक वैज्ञानिक है (ध्व.सं.,पृ.-278)। दक्षिणी-संगीत ध्वनि-विज्ञान के आधार पर विवादित है। वहाँ का शुद्ध-सप्तक ही अर्ध-स्वर प्रधान है, उनके मुखारी या कनंकागी शुद्ध मेल में चार अर्ध-स्वरों के प्रयोग के कारण वह वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता है। जबकि उत्तर का शुद्ध-सप्तक पूर्णरूपेण ध्वनि-विज्ञान के नियमों पर आधारित है यथा, बिलावल थाट के तानपूरे से प्राप्त स्वयम्भू स्वरों पर आधारित होने से इसकी वैज्ञानिकता स्वतः सिद्ध होती है।

इसके अतिरिक्त उत्तर का संगीत भरत परम्परा पर आधारित है, विदेशी प्रभाव यहाँ के संगीत पर बिल्कुल नहीं है। शुद्ध रूप से भरत द्वारा बताए गए संवाद-विवाद के नियमों पर खरा उतरता है। मुस्लिम लेखकों द्वारा लिखी गई सभी भारतीय संगीत सम्बन्धी पुस्तकों में यहीं के प्राचीन-संगीत का वर्णन किया गया है, ईरानी अथवा फ़ारसी संगीत का नहीं। इसके अतिरिक्त यदि ऐतिहासिक पहलू के अनुसार देखा जाए तो भी प्रायः सारे मुस्लिम गायक-वादकों का सम्बन्ध भारतीय गायक-वादकों से ही रहा है। अतः यह स्पष्ट होता है कि यहाँ का संगीत शुद्ध भारतीय है। अब ऊपर दिए गए तथ्यों को निम्न पाँच बिन्दुओं में वर्गीकृत करके विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया जा रहा है :–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(1) शुद्ध सप्तक,
(2) हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति के दस थाट,
(3) संवाद-विवाद,
(4) मुस्लिम गायक-वादकों का उद्‌भव और
(5) उर्दू या फ़ारसी के संगीत-ग्रन्थ।

1. शुद्ध-सप्तकः- हिन्दुस्तानी-संगीत का शुद्ध-सप्तक बिलावल है जिसके स्वर तानपूरे के स्वतः उत्पन्न होने वाले स्वयम्भू स्वरों पर आधारित हैं। ध्वनि-विज्ञान के नियमों पर यह शुद्ध-सप्तक किसी भी प्रकार से विवादी नहीं है। इसमें अर्ध-स्वर यथास्थान है। बिलावल के स्वर तानसेन के समय से प्रचार में चले आ रहे हैं। तानसेन के एक ध्रुपद में कहा गया है कि षड्ज-ग्राम की निषाद् (सं.चि., पृ.-324) से उत्पन्न होने वाली मूर्च्छना ही शुद्ध-सप्तक है, वही वर्तमान में बिलावल है क्योंकि बिलावल में 4, 3, 2, 4, 4, 3,2 श्रुत्यन्तर हैं जिसे आगे सारिणी में स्पष्ट किया गया है–

उत्तरमन्द्रा	सा रे ग म प ध नि सां
श्रुत्यन्तर	3 2 4 4 3 2 4
रजनी	नि़ सा रे ग म प ध नि
श्रुत्यन्तर	4 3 2 4 4 3 2
बिलावल	सा रे ग म प ध नि सां
श्रुत्यन्तर	4 3 2 4 4 3 2

उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है कि वर्तमान शुद्ध-सप्तक बिलावल के श्रुत्यन्तर व प्राचीन रजनी-मूर्च्छना के श्रुत्यन्तर एक समान हैं जो स्वतः यह सिद्ध करते हैं कि वर्तमान संगीत प्राचीन काल से चली आ रही परम्परा पर ही आधारित है।

मध्यकालीन विद्वान अहोबल, लोचन, श्रीनिवास आदि ने भले ही अपना शुद्ध-सप्तक आज का काफ़ी माना है परन्तु प्रचार में बिलावल ही रहा था। दक्षिण में कनंकागी या मुखारी शुद्ध-सप्तक होते हुए भी शंकराभरण राग अधिक प्रचार में है, जो कि यहाँ का बिलावल है। यह इस तथ्य की पुष्टि करता है कि बिलावल सभी स्थानों पर सदा से प्राकृतिक-ग्राम होने के कारण सहज साध्य है, इसीलिए उसे प्रचार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का लाभ मिला है। पाश्चात्यों का ग्राम भी हमारे बिलावल के समान ही है, केवल धैवत की समस्या है। बिलावल के धैवत के विषय में दो मत हैं। प्रथम मत वाले प्राकृतिक या संवाद के आधार पर धैवत को 400 आन्दोलन का मानते हैं दूसरे मत के अनुसार पूर्वांग का यमक (ध्व.वि., पृ.-280), उत्तरांग में होना चाहिए। इस मत वाले ऋषभ से संवाद करता हुआ धैवत 405 आंदोलन का मानते हैं। अतः चाहे बिलावल का धैवत 400 आन्दोलन का माने या 405 आन्दोलन का, दोनों ही दशाओं में बिलावल की महिमा उजागर होती है।

2. हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति के दस-थाटः- कर्नाटकी संगीत में 72 मेल होते हैं जिनमें से ध्वनि-विज्ञान पर आधारित केवल दस ही थाट खरे उतरते हैं। वही दस-थाट हमारे यहाँ मान्य हैं। 72 के सामने 10 की संख्या बहुत ही सीमित दिखती है, इस कारण कहने वालों को बल मिलता है कि दक्षिणी-संगीत की अपेक्षा हमारा संगीत सीमित है, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। उत्तर--भारतीय-संगीत, ध्वनि-विज्ञान के कड़े नियमों के साथ-साथ कलात्मकता की भी आवश्यकता का अनुभव करता है। यहाँ केवल गणित को ही आधार नहीं माना गया है बल्कि भरत से लेकर वर्तमान तक की परम्परा का भी निर्वाह किया गया है। प्रत्येक थाट के हर स्वर का संवादी स्वर उस थाट में होना (ध्व.सं., पृ. -280), अर्धस्वर में भी $^{16}/_{15}$ से छोटा अन्तराल ग्रहण न करना (ध्व.सं., पृ.-281) आदि अनेक कसौटियाँ ऐसी हैं, जिनके कारण उत्तर-भारतीय-संगीत में दस-थाटों से अधिक खरे नहीं उतरते। इसलिए कल्याण, बिलावल खमाज, भैरव, मारवा, पूर्वी, काफी, आसावरी, भैरवीं और तोड़ी ये दस-थाट ही शुद्ध थाट हो सकते हैं।

सबसे पहले 'सादिक़ अली ख़ाँ की 1858 ई. में रचित सरमाय-ए-इशरत्' नामक ग्रन्थ में इन्हीं दस थाटों का वर्णन मिलता है, (सं.चि., पृ.-360)। आगे चलकर पं. भातखण्डे जी ने इन्हीं दस थाटों का भरपूर प्रचार किया।

3. संवाद-विवादः- दो ध्वनियाँ एक साथ या एक के बाद एक बजाई जाएँ और यदि कानों को मधुर लगे तो वह संवाद है। इसके विपरीत यदि कर्णकटु लगे तो विवाद होता है। आम भाषा में भी मधुर वार्तालाप को संवाद और झगड़े को विवाद कहा जाता है। संवाद तो संगीत का प्राण सदा से ही रहा है। भरत मुनि ने भी दो स्वरों के मध्य नौ व तेरह श्रुतियों के अन्तराल को संवादी स्वर कहा है। प्राचीन काल में स्वरान्तर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मापने का माध्यम श्रुतियाँ ही थीं। आज गणित के माध्यम से 'षड्ज-मध्यम' संवाद को $^4/_3$ और 'षड्ज-पंचम' संवाद को $^3/_2$ कहा जाता है। ये माप आन्दोलन संख्या या तार की लम्बाई के आधार पर निकाले जाते हैं। इससे भी आसान विधि सेवर्ट और सेण्ट प्रणाली आज उपलब्ध है। सेवर्ट प्रणाली में सा-म 125 और सा-प 176 अन्तराल का संवादी माना जाता है। इसी प्रकार सेण्ट पद्धति में सा-म 498 और सा-प 702 अन्तराल का संवादी होता है।

भारतीय-रागों में प्रत्येक स्वर का संवादी स्वर उस राग में विद्यमान होता है। कुछ ही राग इस नियम के अपवाद हैं, जैसे-अहीर-भैरव, पटदीप, चन्द्रकौंस आदि। अहीर भैरव के कोमल-रे, पटदीप के कोमल ग और चन्द्रकौंस के शुद्ध-नि का संवादी स्वर इन रागों में प्राप्त नहीं है।

दो श्रुति वाले अन्तराल को भरत, मतङ्ग और शार्ङ्गदेव ने विवादी अन्तराल कहा है। ऋषभ-धैवत, गान्धार-निषाद के और गान्धार-निषाद, ऋषभ-धैवत के क्रमशः विवादी स्वर कहे गए हैं। आज इसी अन्तराल को $^{16}/_{15}$ कहा जाता है। हेल्महोल्ट्ज़ ने यह माना है कि प्रति-सेकेण्ड 33 आन्दोलन का स्वर सबसे अधिक डोल पैदा करता है, इसलिए कर्णकटु होता है। यह अन्तराल अर्ध-स्वर के बराबर होने के कारण संगीत की भाषा में विवादी स्वर कहलाता है।

रागदारी-संगीत में विवादी स्वर वह स्वर कहलाता है जो थाट में तो न हो लेकिन राग में हो, अर्थात् ऐसा स्वर जो उस राग के थाट में तो नहीं होता है परन्तु उस थाट से उत्पन्न राग में किसी तरीके से लगाया जाता है। जैसे- कल्याण थाट के दोनों मध्यम वाले सभी रागों में कोमल निषाद विवादी स्वर होता है, यह स्वर कल्याण थाट में नहीं है और उससे उत्पन्न केदार, हमीर छायानट, कामोद आदि सभी रागों में विशिष्ट रीति से लगा लिया जाता है। विवादी स्वर के साथ एक बड़ी शर्त यह भी जुड़ी हुई है कि उस विवादी स्वर से संवाद करने वाला प्रबल स्वर उस राग में अवश्य होना चाहिए (ध्व.सं.,पृ.-280)। जैसे- राग-देश में कोमल-गान्धार विवादी स्वर के रूप में आता है और कोमल-गान्धार से संवाद करता हुआ कोमल-निषाद राग-देश मे विद्यमान है। इसी तरह राग-बिहाग में तीव्र-मध्यम विवादी स्वर है तो इससे संवाद करता हुआ शुद्ध-निषाद प्रबल स्वर राग-बिहाग में उपलब्ध है। ऐसा कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी राग नहीं हो सकता जिसमें विवादी स्वर से संवाद करने वाला स्वर उस राग में न हो। शत्रु से भी मित्रवत् व्यवहार हमारी सनातन परम्परा है, विवादी-स्वर से संवाद भी इसी का एक उदाहरण माना जा सकता है।

4. मुस्लिम गायक-वादकों का उद्गमः- संगीत-घरानों पर जब चर्चा होती है तो मुस्लिम गायकों और वादकों का बहुतायत में उल्लेख मिलता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतीय-संगीत को मुस्लिम कलाकारों ने सींचा है, उसे आगे बढ़ाया है लेकिन यदि उनके इतिहास की खोज की जाए तो ज्ञात होगा कि इनका उद्गम कहीं न कहीं भारतीय पृष्ठ-भूमि से अवश्य जुड़ा हुआ है। तानसेन, तन्नामिश्र थे जो एक मत के अनुसार बाद में मुसलमान हो गए। उनके पुत्र विलास ख़ाँ से रबाबियों का घराना निकला (ध्व.सं.,पृ.-284), दूसरे पुत्र सूरतसेन से सितार वादकों का सेनिया-घराना जुड़ा है। अकबर के दरबार में प्रसिद्ध बीनकार मिश्री सिंह थे जिनका लोहा स्वयं तानसेन मानते थे। तानसेन की बेटी से विवाह के बाद मिश्री सिंह मुसलमान हो गए। इन्हीं के वंशज नियामत ख़ाँ (ध्व.सं.,पृ.-283) हुए जिनकी बन्दिशें 'सदारंग' के नाम से आज भी गाई जाती हैं। उनकी अनेक बन्दिशों में राधा-कृष्ण की लीलाएँ वर्णित हैं। एक बन्दिश में कहा गया है "आदि महादेद बीन बजाए, पाए नियामत ख़ाँ" (ध्व.सं.,पृ.-283)। सदारंग स्वयं प्रसिद्ध बीनकार थे। रामपुर के वज़ीर ख़ाँ इस परम्परा के अन्तिम वंशज हुए। रामपुर के ही सादिक़ अली ख़ाँ अपने आपको हरिदास का वंशज बताते थे।

ध्रुपद की चार बानियाँ मानी जाती हैं- (1) गोरहार, (2) नोहार, (3) खण्डार और (4) डागुर बानी। गोरहार-बानी तानसेन की कही जाती है। खण्डार- बानी बहुत प्राचीन है जो पुरातन काल से प्रचलित है। डागुर-बानी स्वामी हरिदास की है। डागुर-बानी से ही ख़याल गायकी का उद्भव हुआ (ध्व.सं.,पृ.-284)। आरम्भिक काल में तो ख़याल गायकी को लंगड़ा-ध्रुपद कहा जाता था (ध्व.सं.,पृ.-284)। कोई भी मुसलमान गायक हो या वादक अपने आपको ईरानी या फ़ारसी-संगीत से नहीं जोड़ता, सभी मुस्लिम-संगीतज्ञ अपने आपको भरत, शार्ंगदेव आदि भारतीय-परम्परा का ही मानते हैं।

5- उर्दू-फ़ारसी के संगीत-ग्रन्थः- मुहम्मद रज़ा ख़ाँ की 'नग़माते-आसफ़ी', सादिक अली ख़ाँ की 'सरमाय-ए-इशरत्', राजा नवाबअली ख़ाँ की 'मआरिफुन्नग़मात', हकीम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मो0 करम इमाम की 'मादिनुल-मूसीक़ी' तोहफ़तुल-हिन्द (1709), रिसालए-ज़िक्रे-मुग़ानियने-हिन्दुस्तान (1934-35), नादिराते-शाही और वाजिद अली शाह की नाज़ो और बनी आदि किसी भी उर्दू या फ़ारसी के ग्रन्थ में ईरानी या फ़ारसी जैसे विदेशी-संगीत से भारतीय-संगीत के प्रभावित होने की पुष्टि नहीं की गई बल्कि यहीं के श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना आदि का ही वर्णन इन ग्रन्थों में किया गया है। (ध्व. सं.,पृ.-285)

उपयुक्त पाँच बिन्दुओं पर विचार करने के बाद कहीं लेश मात्र भी ऐसा आभास नहीं होता जिससे यह सिद्ध हो सके कि उत्तर भारतीय-संगीत विदेशी, विशेषकर ईरानी या फ़ारसी-संगीत से प्रभावित हुआ हो। अतः इस बात की पुष्टि होती है कि यहाँ का संगीत शुद्ध रूप से भरत की परम्परा से जुड़ा हुआ है और ध्वनि-विज्ञान के नियमों से भी बँधा हुआ है। भारतीयता इसके रग-रग में समायी हुई है, शायद इसीलिए पूरी दुनिया मे हमारा संगीत उच्चकोटि का माना जाता है। पं. रवि शंकर, अली अकबर ख़ाँ, ज़ाकिर हुसैन ख़ाँ आदि के अथक प्रयास से आज हमारा संगीत विदेशों में भी अत्यधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। यदि भारतीय-संगीत पर विदेशी-संगीत की छाप न पड़ी तो सदैव हमारा शाश्वत् संगीत पूजा जाता रहेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाद

नाद शब्द 'न' और 'द' दो अक्षरों से मिलकर बना है, न का अर्थ है प्राण वायु, द का अर्थ है अग्नि या शक्ति, इन दोनों के संयोग से नाद की उत्पत्ति होती है।

सभी भारतीय-शास्त्रों में नाद की महिमा गाई गई है। चाहे उपासना का विषय हो या शक्ति का, संगीत का हो या भाषा का सभी में नाद ही नाद व्याप्त है। मतंग मुनि नाद की महिमा का इस प्रकार वर्णन करते हैं:-

"न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वराः।
न नादेन विना नृत्तं तस्मान्नादात्मकं जगत।। (बृह.भाग-1, पृ. 6)

अर्थात् :- नाद के बिना न गीत, न स्वर और ना ही नृत्त है इसलिए पूरा संसार नादात्मक है। संगीतरत्नाकर (भाग-1,पृ.22) में शार्ङ्गदेव कहते हैं:-

"गीतं नादात्मकं वाद्यं नादव्यक्त्या प्रशस्यते।
तद्द्वयानुगतं नृत्तं नादाधीनमतस्त्रयम्।।
नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात्पदाद्वचः।
वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत्।।"

भाव यह है कि गीत, वाद्य, नृत्त (नोटः- नृत्य में अभिनय का समावेश होता है जबकि नृत्त केवल मुद्राओं का संचालन है।) तीनों नाद के आधीन हैं। सम्पूर्ण संसार का व्यवहार नाद से चलता है क्योंकि संसार की सभी भाषाओं का उद्भव नाद से ही होता है। नाद से अक्षर, अक्षर से शब्द, शब्द से वाक्य और वाक्यों से पूरा भाव व्यक्त होता है। नाद के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे-स्वर, शब्द, ध्वनि, आवाज़ आदि। नाद के अनाहत और आहत ये दो भेद है।

अनाहत-नादः- जो नाद बिना आघात के स्वतः उत्पन्न हो वह अनाहत-नाद कहलाता है। दोनों कान बंद करने पर सन्-सन् की ध्वनि सुनाई पड़ती है। फिर इसे ध्यान से सुनने पर इसमें से ॐ की ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है, क्योंकि सभी ध्वनियों का आदि ॐ है और शरीर के साथ-साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भी ॐ व्याप्त है। योगीजन इस नाद को सुगमता से साध सकते हैं। इसे लगातार सुनने के अभ्यास से इस 'सन्-सन्' में से भारी नाद सुनाई देने लगता है। और अधिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभ्यास से वाद्यों, घुँघरुओं और अन्त में संगीत के स्वरों को भी योगीजन सुनने लगते हैं। यही नादब्रह्म की अवस्था होती है।

आहत-नादः- आहत का अर्थ है 'आघात', यानी जो नाद आघात द्वारा उत्पन्न हो वह आहत-नाद है। संगीत हो या भाषा सभी प्रकार का नाद आहत-नाद ही है।

आहत नाद पुनः दो प्रकार का होता है- पहला संगीतोपयोगी और दूसरा शोर-गुल। संगीतोपयोगी नाद जिसे संगीत में स्वर कहा जाता है, आवश्यक है कि उसके आन्दोलनों में निरन्तरता रहे। तभी वह सुरीला होगा और कान को अनायास ही सुहाने वाला होगा। किसी भी कला में प्रयुक्त होने वाला माध्यम अच्छे गणों (Quality) वाला ही होना चाहिए, जैसे- मूर्ति के लिए अच्छे पत्थर या मिट्टी की तथा लकड़ी की कलाकृति के लिए अच्छी लकड़ी की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार संगीत का माध्यम नाद होने के कारण उसे भी सुरीला या मधुर होना आवश्यक है।

इसके विपरीत शोर-गुल नाद में निरन्तरता नहीं होती यानी एक सेकेण्ड में जो नाद आन्दोलनों से उत्पन्न हो रहा है वह लगातार न हो कर रुक-रुक कर बिना क्रम के होता है। उसकी तीव्रता में कभी भी कितनी भी वृद्धि या कमी हो सकती है। इसलिए वह कानों को सुहाना न लग कर कष्टप्रद लगता है जैसे पटाख़ों की ध्वनि या लड़ाई-झगड़े का कोलाहल आदि। हमारा विषय संगीत है अतः हम संगीतोपयोगी नाद पर ही विचार करेंगे।

आहत नाद तीन प्रकार से उत्पन्न किया जा सकता है:-

(1) प्रहार द्वारा, (2) घर्षण द्वारा और (3) वायु को भरकर या निकाल कर

1. **प्रहार द्वारा**- तबला, सितार, सरोद, तानपूरा आदि वाद्यों पर हाथ से या किसी वस्तु के माध्यम से प्रहार करने पर जो नाद उत्पन्न होता है वह इस वर्ग का नाद है।
2. **घर्षण द्वारा**- वायलिन, सारंगी, इसराज आदि वाद्य जो गज की सहायता से बजाए जाते हैं, वे इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।
3. **वायु को भरकर या निकाल कर**- शहनाई, बाँसुरी, माउथ-ऑर्गन, हारमोनियम क्लारेंनेट आदि वाद्य इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। शरीर के अन्दर से वायु जब कण्ठ की स्वर तन्त्रियों से घर्षण करती हुई मुख से बाहर निकलती है तो जो नाद उत्पन्न होता है, विद्वान् उसे भी इसी वर्ग में रखते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाद के तीन लक्षण या विशेषताएँः- प्रत्येक नाद या ध्वनि में तीन गुण या विशेषताएँ होती है उसकी कुछ आन्दोलन संख्या होगी जिससे उसकी ऊँचाई या तारता निश्चित होती है कम्पित होने वाले माध्यम का कुछ आयाम या विस्तार होगा, जिससे उसका छोटा-बड़ापन निश्चित होगा तथा जिस वस्तु से नाद उत्पन्न हो रहा है उसके गुण उसमें विद्यमान होने के कारण वह अन्य प्रकार की आवाजों से अलग पहचाना जा सके, जिसे नाद की जाति कहते हैं। यहाँ इन तीनों विशेषताओं पर कुछ विस्तार पूर्वक चर्चा की जा रही हैः-

तारता या नाद का ऊँचा-नीचापन (PITCH) :- तारता या ऊँचा-नीचापन नाद में सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि पूरे विश्व का संगीत स्वरों के ऊपर नीचे करने से ही बनता है। स्त्रियों का स्वर पुरुषों से महीन होता है। पक्षियों की अपेक्षा पशुओं का स्वर भारी होता है। संगीत की भाषा में महीन या पतली आवाज़ को नाद का ऊँचापन और मोटी या भारी आवाज़ को नाद का नीचापन कहते हैं।

नाद का यह गुण आवृत्ति या आन्दोलन संख्या पर निर्भर होता है। प्रति-सेकेण्ड आवृत्ति या आन्दोलन संख्या जितनी अधिक होगी नाद उतना ही ऊँचा होगा। इसके विपरीत जितनी आन्दोलन संख्या कम होगी नाद उतना ही नीचा होगा। इसका परीक्षण आम दिनचर्या में भी किया जा सकता है। जैसे किसी बेंत को हवा में धीरे-धीरे घुमाने से एक गम्भीर नाद उत्पन्न होगा और यदि बेंत को घुमाने की गति बढ़ा दी जाए तो नाद कुछ ऊँचा होने लगेगा। बिजली के पंखे में से एक आवाज़ आती है। हवा कम लगने पर जब हम उसकी गति बढ़ा देते हैं तो हवा बढ़ने के साथ ही उसकी आवाज़ भी कुछ ऊँची हो जाती है।

संगीत के 'सा रे ग म' आदि एक दूसरे से ऊँचे हैं इसलिए इनकी आन्दोलन संख्या भी क्रमशः अधिक होती जाती है। जैसे- षड्ज की आन्दोलन संख्या 240, ऋषभ की 270, गान्धार की 300, मध्यम की 320, पंचम की 360, धैवत की 400 या 405 और निषाद की 450 होती है। तार-सप्तक में मध्य-सप्तक की अपेक्षा आन्दोलन संख्या दुगुनी होगी, क्योंकि नाद दुगुना ऊँचा हो जाएगा। अतितार में आंदोलन संख्या मध्य-सप्तक की चौगुनी होगी और इसके विपरीत मध्य-सप्तक की अपेक्षा मन्द्र-सप्तक में आधी होगी। अतिमन्द्र में आन्दोलन संख्या आधी की आधी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होगी अर्थात् चौथाई होगी। इसी क्रम से आन्दोलन संख्या आधी-आधी करते जाने पर स्वर एक-एक सप्तक नीचे होते जाएँगे।

अब प्रश्न यह है कि नाद कितना नीचा हो सकता है या कितना ऊँचा नाद सम्भव है? इसका सीधा उत्तर है कि नाद अनन्त गुना नीचा और ऊँचा हो सकता है। मनुष्य के सुनने की सीमा के विषय में दो मत है, एक मत के अनुसार मानव कान के लिए कम से कम सोलह आन्दोलन प्रति-सेकेण्ड की संख्या निर्धारित की गई है। अधिकतम सीमा में मानव का कान 38000 प्रति सेकेण्ड आवृत्ति का नाद सुन सकता है (ध्व. सं.-पृ.-48)। दूसरे मत के अनुसार मनुष्य का कान कम से कम 20 और अधिक से अधिक 20,000 प्रति सेकेण्ड आन्दोलन संख्या के नाद को सुन सकता है। कुत्ते की सुनने की सीमा और अधिक होती है। डॉग-व्हिसिल या कुत्ते की सीटी इसी आधार पर बनी होती है। यानी वह सीटी ऐसी बनाई गई है जिसकी आवृत्ति 38000 से अधिक होती हैं उसे मनुष्य तो नहीं सुन सकता पर कुत्ता सुन लेता है। चोर के आ जाने पर घर के मालिक को भी नहीं सुनाई पड़ी और न ही उसे चोर सुन सका लेकिन कुत्ते ने सुन लिया और संकेत समझ कर वह तत्काल अपने कर्त्तव्य में लग गया।

कम से कम 16 और अधिक से अधिक 38000 आवृत्ति के लगभग ग्यारह सप्तक बनते हैं, जैसे-16 का दो गुना 32, उसका दुगुना 64 फिर उसका दुगुना 128 तथा 128 तथा इस तरह क्रमशः 256, 512, 1024, 2048, 4096, 8192, 16384, 32768 होते जाएँगे।

संगीतोपयोगी नाद की सीमा और भी सीमित है, जो 40 से 4000 आन्दोलन प्रति-सेकेण्ड के बीच होती है। इसके सात-सप्तक बन सकते हैं। जैसे- 40x2= 80, 80x2=160 और 160x2=320 इसी तरह क्रमशः 640, 1280, 2560, 5120 होंगे।

बड़े पियानों में इसीलिए सात ही सप्तक होते हैं। मानव-काण्ठ की सीमा औसतन तीन सप्तक तक मानी जाती है जिसे मन्द, मध्य व तार-सप्तक कहा जाता है। साधारणतया मानव की आवाज़ दो सप्तक से अधिक नहीं होते है। मन्द्र-पंचम से लेकर तार-पंचम तक दो सप्तक बनते है। अधिकांश लोगों की आवाज़ या तो नीचे के पंचम तक नहीं जाती है या फिर ऊपर के पंचम तक जाने पर गला फटने लगता है। कुछ लोगों की आवाज़ ढाई-सप्तक तक हो सकती है। परवीन सुल्ताना की आवाज़

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साढ़े-तीन सप्तक तक तो कई रिकार्डो में सुनी गई है। एक रिकार्ड में परवीन सुल्ताना राग-रागेश्वरी में मन्द्र-ऋषभ से लेकर अतितार-मध्यम तक जाती है। कहा जाता है कि पं. विष्णुदिगम्बर पलुस्कर पौने पाँच सप्तक तक गाते थे।

तानपूरे में चार तार होते है जिनकी लम्बाई समान होती है पर वे अलग-अलग स्वरों में मिले होते हैं। सितार के पाँच तारों की लम्बाई समान होने पर भी मन्द्र-मध्यम, मन्द्र-षड्ज, अतिमन्द्र-पंचम, अतिमन्द्र-षड्ज पर मिले तारों को यदि ध्यान से देखा जाए तो जैसे-जैसे स्वर मन्द्र होते जाते है, तारों की मोटाई भी क्रमशः मोटी होती जाती है। उन तारों की धातुओं में भी अन्तर होता है। समान तार को खींच कर भी स्वर ऊँचा किया जा सकता है यानी खिंचाव बढ़ाने पर भी तारता में अन्तर आता है। सितार वादन पर यदि ध्यान दिया जाए तो ज्ञात होगा कि षड्ज से ऋषभ, गान्धार, मध्यम आदि बजाते समय कम्पित होने वाले तार की लम्बाई घटती जाती है अर्थात् लम्बाई जितनी अधिक होगी नाद उतना ही ऊँचा होगा। इसके विपरीत लम्बाई जितनी अधिक होगी नाद उतना ही नीचा होगा।

बाँसुरी आदि सुषिर वाद्यों पर भी ऊपर दिए गए कारणों का प्रभाव कमोबेश समान रूप से पड़ता है। बाँसुरी जितनी मोटी होगी उतनी ही नीची तारता के स्वर निकलेंगे। लम्बाई भी स्वर के नीचे होने का कारण होती है। जहाँ से फूँक मारी जाती है वहाँ से लेकर बन्द नली की लम्बाई जितनी अधिक होगी तारता उतनी ही नीची होगी। सारे छिद्र बन्द करने पर लम्बाई अधिकतम होती है। अतः स्वर भी सबसे नीचा वही होता है।

तबले आदि सभी चर्म-निर्मित ताल-वाद्य, तार वाले वाद्यों के अनुसार ही तारता को प्रभावित करते हैं। जितना तबले का मुँह बड़ा होगा स्वर नीचा करेगा। खाल किस जानवर की प्रयुक्त की गई है इसका भी प्रभाव पड़ता है। हारमोनियम को खोलकर अन्दर से देखने पर ज्ञात होता है कि बाईं ओर से दाईं ओर हाथ ले जाएँ तो एक ध्वनि सुनाई देती है जो लगातार ऊँची होती जाती है। यह वही ध्वनि है जो कि हारमोनियम के स्वरों से निकलती है।

तापमान का प्रभावः- धूप में रखने पर वाद्यों का स्वर चढ़ जाता है। नक़्क़ारे के स्वरों को ऊँचा करने के लिए तो बाक़ायदा उसे अग्नि से तपाया जाता है। सभागारों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(वातानुकूलित) में आमतौर पर देखा जाता है कि कलाकार ग्रीन-रूम से वाद्य को मिलाकर लाया पर वातानुकूलित वातावरण के कारण मिला हुआ वाद्य बेसुरा हो जाता है। यहाँ वाद्य पर ठण्डक का प्रभाव पड़ता है। कहने का अर्थ है कि तारता पर तापमान का प्रभाव भी पड़ता है। तापमान अधिक होने पर तारता अधिक होती है यानी स्वर चढ़ जाता है। इसके विपरीत तापमान कम होने पर स्वर नीचा हो जाता है। निष्कर्षतः तारता पर मुख्य रूप से कुल पाँच कारणों का प्रभाव पड़ता है:- (1) तार की लम्बाई (2) तार का खिंचाव या तनाव (3) तार का मोटा-पतलापन (4) तार में प्रयुक्त धातु का धनत्व और (5) तापमान **तीव्रता या छोटा-बड़ापन (INTENSITY)**- यदि ध्वनि धीरे से सुनाई दे तो यह नाद का छोटापन कहलाता है इसके विपरीत जब ध्वनि ज़ोर से सुनाई दे तो यह नाद का बड़ापन होता है। इसमें समान स्वर होना आवश्यक है।

जैसे नाद का ऊँचा नीचापन आन्दोलन संख्या पर निर्भर करता है उसी तरह नाद की तीव्रता या छोटा बड़ापन ध्वनि उत्पादक वस्तु के कम्प-विस्तार या आयाम पर निर्भर होती है। तार अपने मूल स्थान से जितना इधर-उधर होता है वही उसका कम्प-विस्तार है। *एक सेकेण्ड में जितनी बार तार इधर-उधर आंदोलित होता है वह उसकी आंवृत्ति है। कम्प-विस्तार पर तीव्रता और कम्पन की प्रति-सेकेण्ड संख्या पर तारता निर्भर करती है यही दोनों में भेद है।* तारता में तो सधे कान पाँच-दस आन्दोलन अधिक या कम होने पर अनुभव कर लेते हैं पर तीव्रता में इसका सवा गुना होना आवश्यक होता है (ध्व. सं.-पृ.-51)। तभी कान इस अन्तर का अनुभव कर पाते हैं। कम्प-विस्तार जितना अधिक होगा नाद उतना ही बड़ा होगा। इसको वैज्ञानिक भाषा में इस प्रकार कहेंगे कि यदि कम्प-विस्तार दुगुना होगा तो शक्ति चौगुनी हो जाएगी यानी तीव्रता चौगुनी हो जाएगी।

यदि किसी ध्वनि उत्पादक वस्तु या व्यक्ति से हम दूर चले जाएँ तो बड़ा नाद छोटा सुनाई देने लगता है पर तारता में कोई अन्तर नहीं पड़ता अर्थात् स्वर तो वही रहता है केवल वह धीरे सुनाई देने लगता है। यदि और अधिक दूर चले जाएँ तो नाद और धीमे सुनाई देगा पर स्वर नीचा नहीं होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामान्य गति से यदि नाद की उत्पादक वस्तु से दूरी बढ़े तो तीव्रता में अन्तर आता है, तारता में कोई अन्तर नहीं आता यानी स्वर वही रहेगा वह केवल धीरे-धीरे सुनाई देगा पर यदि गति काफ़ी अधिक है तो तीव्रता के साथ-साथ तारता में भी अन्तर आता है। जैसे- रेलगाड़ी में यात्रा करते समय हम देखते हैं कि जब दूसरी ओर से आने वाली गाड़ी सीटी देती हुई बग़ल से गुज़रती है तो उसकी तारता में एकाएक अन्तर आता है। पहले जब रेलगाड़ियों की रफ़्तार इतनी अधिक नहीं होती थी तब षड्ज से कोमल-निषाद का अन्तर दिखाई देता था। आजकल षड्ज से मन्द्र-पंचम या उससे भी नीचे का अन्तर मालूम होता है, कारण कि आज रेलगाड़ी की गति में वृद्धि हो गई है।

अतः इससे प्रतीत होता है कि दूरी बढ़ने पर नाद की केवल तीव्रता पर ही नहीं, यदि गति अधिक है तो तारता पर भी अन्तर पड़ता है।

यदि गति धीमी हो तो तारता में इतना कम अन्तर होता है कि उस पर ध्यान नहीं दिया जा सकता है। दूरी के बढ़ने के साथ ही नाद भी छोटा (कम तीव्रता का) होता जाता है। उसका नियम यह है कि दूरी दुगुनी होने पर कम्प विस्तार से जो वातावरण में तरगें उत्पन्न हो रही थीं, उनकी शक्ति का दूरी के अनुपात में ह्रास हो रहा है। यदि दूरी दुगुनी हो जाएगी तो तरगों का विस्तार आधा रह जाएगा और शक्ति चौथाई रह जाएगी। दुगुनी दूरी का अर्थ है कि पहले हम जिस नाद को दस फुट की दूरी से सुन रहे थे अब उसे बीस फुट की दूरी से सुनना होगा। अब यदि चालीस फुट की दूरी से सुनेंगे तो कम्प-विस्तार से उत्पन्न होने वाली तरगों का विस्तार केवल चौथाई रह जाएगा और उसकी शक्ति (4x4=16) सोलह गुनी कम हो जाएगी। तरगों का ह्रास उस दशा में काफ़ी कम होता है जब ध्वनि किसी नली या पाइप में से गुज़रे। पाइप के एक सिरे पर बोलने या ध्वनि पैदा करने के कारण उसकी तरगें चारों ओर न फैल कर एक ही दिशा में आगे बढ़ेंगी अतः उनका ह्रास न के बराबर होगा। पानी में भी सतह के नीचे ध्वनि काफ़ी दूर तक सुनाई देती है, क्योंकि ध्वनि पानी से बाहर न आने के कारण कम नष्ट होती है।

जिस प्रकार तारता में कान की सुनने की सीमा निश्चित होती है उसी प्रकार तीव्रता में भी इसकी एक सीमा होती है। कम से कम वाली सीमा का 'श्रुति-देहली'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ध्व.सं.,पृ.-51) कहते हैं उससे कम तीव्रता की ध्वनि मनुष्य का कान नहीं सुन सकता। ऊपर वाली सीमा को 'पीड़ा-देहली' (ध्व.सं.,पृ.-51) कहते हैं। जैसे कि नाम से ही स्पष्ट है कि जिस तीव्रता से कान में कष्ट होने लगे वही पीड़ा-देहली है। उससे अधिक तीव्रता का नाद कान को ख़राब भी कर सकता है। दीवाली पर पटाख़ों की आवाज़ से कई बार इसका अनुभव हम सब करते हैं। यदि पीड़ा-देहली के आसपास की तीव्रता की ध्वनि सुनी जाए तो कुछ देर कान सन्-सन् का अनुभव करता है और कुछ समय के उपरान्त ही सामान्य हो पाता है। यदि तीव्रता अधिक हो तो कान की सुनने की शक्ति भी जा सकती है। बारूद के बड़े विस्फोट से एकाएक बड़ा धमाका होता है जिससे दीवारें तक हिल जाती हैं और खिड़कियों के शीशे चूर-चूर हो जाते हैं। ऐसे में ध्वनि उत्पादन वस्तु में कई गुना विस्तार बढ़ जाता है और शक्ति की तीव्रता में उतने ही गुना की वृद्धि होती है।

प्रकृति ने कान की संरचना ऐसी की है कि अत्यन्त सूक्ष्म ध्वनि को भी कान ग्रहण कर लेता है। इसका अनुमान अनेक प्रयोगों से सिद्ध किया जा चुका है। अब भी दिशा में कार्य किया जा रहा है। अभी तक यही अनुमान लगाया गया है कि "2734" आवृत्ति[1] का स्वर हो तो कान के परदे पर वायुमण्डलीय दबाव के कम से कम दस अरबवें हिस्से के बराबर सघनता का दबाव होने से कान इस स्वर को सुन लेता है। सात-देर या साढ़े छह किलो के बराबर प्रति-इंच का वायुमण्डलीय दबाव हर समय मनुष्य वहन करता है[2]। सामान्य संगीत सुनते समय हमारा कान दस छटाँक प्रति-इंच का दबाव हर समय अनुभव करता है। यह पैमाना पुराना है, कि.ग्रा.-पद्धति से समझना हो तो लगभग ½ कि.ग्रा. के बराबर का दबाव वाला स्वर संगीतोपयोगी होगा। तीव्रता पर तारता का भी काफ़ी हद तक प्रभाव पड़ता है। अर्थात् ऊँचा नाद अपेक्षाकृत अधिक दूरी तक सुनाई दे सकता है।

नाद की जाति या टिम्बर (Timber) :- नाद के तीन गुणों में से एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण गुण नाद की जाति है। इसी गुण के कारण हम ध्वनि को बिना देखे ही केवल सुनकर पहचान लेते हैं कि अमुक नाद किस वाद्य का है। वाद्य चाहे एक ही स्वर में मिले हों तो भी तबले का स्वर है,या सितार का स्वर है, किसी अन्य वाद्य का है या किसी व्यक्ति के कण्ठ का स्वर है यह नाद की जाति के आधार पर हम बिना देखे ही पहचान जाते हैं। मात्र यही नहीं बल्कि किस व्यक्ति की आवाज़ है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह भी आसानी से पहचाना जा सकता है। नाद के उत्पन्न होने में सहायक मूल-स्वर के साथ-साथ उप-स्वरों (overtone) के कारण नाद एक दूसरे से अलग हो जाता है, इसी पर नाद की जाति निर्भर करती है।

भौतिकशास्त्र के अनुसार कोई भी नाद अकेला उत्पन्न नहीं होता है बल्कि तार आदि ध्वनि उत्पादक वस्तु अपनी मौलिक आन्दोलन-संख्या के साथ-साथ दो, तीन आदि अनेक खण्डों में स्वतः कम्पित होता है जिससे एक गुन, दोगुन, तीन गुन आदि अनेक गुना आन्दोलन-संख्या के आवर्तक स्वतः उत्पन्न होते हैं। ये आवर्तक जितने अधिक ऊँचे होते हैं उतनी ही उनकी तीव्रता भी स्वतः घटती जाती है। अतः यहाँ केवल नौ गुना तक ही विचार किया जा रहा है।

षड्ज की आन्दोलन-संख्या 240 है तो उसके दूसरे आवर्तक की संख्या 480 होगी ये तार-षड्ज होगा, तीसरे आवर्तक की संख्या 240 x 3=720 है जिसे आधा करने से आन्दोलन-संख्या 360 हुई जो कि पंचम स्वर की है। चौथे आवर्तक की आन्दोलन-संख्या 240 x 4=960 है इसे आधा करने पर 480 होगी अतः चौथा आवर्तक अतितार-षड्ज हुआ। पाँचवें आवर्तक की आन्दोलन-संख्या 240 x 5 = 1200 होगी जिसे क्रमशः दो बार आधा करने पर 300 हो जाएगी जिससे पता यह चलता है कि यह अतितार-गान्धार है। इसी प्रकार आगे के आवर्तकों को भी देखा जा सकता है।

यहाँ यह भी बताना आवश्यक है कि जैसे-जैसे आवर्तक ऊँचे होते जाते हैं इनकी तीव्रता भी एक निश्चित क्रम में घटती जाती है। दूसरे आवर्तक की तीव्रता मूलनाद की चौथाई रह जाती है। तीसरे आवर्तक की तीव्रता (3x3) नौ गुना कम हो जाती है, चौथे की (4x4) सोलह गुना कम हो जाती है इसी तरह पाँचवें (5x5) आवर्तक की तीव्रता पचीस गुना घट जाती है। वाद्य के बजाने के ढंग से और वाद्य में प्रयुक्त सामग्री के कारण उनमें उत्पन्न होने वाले आवर्तक भिन्न-भिन्न क्रम के हो जाते हैं। बजाने का अर्थ है कि किसी वाद्य को प्रहार से बजाया जाता है जैसे सितार, सरोद, तबला आदि। कुछ वाद्य घर्षण द्वारा बजाए जाते हैं जैसे वायलिन, सारंगी आदि। वाद्य को किस स्थान से बजाया जा रहा है यानी तार के मध्य से, एक तिहाई से या किसी अन्य भाग से, मध्य से बजाने पर दूसरे, चौथे, छठे, आठवें आदि आवर्तक ग़ायब हो जाएँगें क्योंकि उनकी ग्रन्थि तार के मध्य में होती है अतः पहला, तीसरा, पाँचवाँ, सातवाँ आदि आवर्तक प्रबल हो जाएगा और इस कारण नाद में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तर आ जाएगा। इसी तरह तार के एक तिहाई भाग से बजाने पर तीसरा, छठवाँ, नौवाँ आदि आवर्तक ग़ायब हो जाएँगें क्योंकि उनकी ग्रन्थि तार के एक तिहाई वाले बिन्दु पर पड़ती है अतः इससे दूसरे, चौथे, पाँचवें, सातवें आदि आवर्तक प्रबल हो जाएँगे जिससे नाद के गुण या जाति में अन्तर आएगा इसीलिए चूँकि सातवाँ आवर्तक स्वर को कटु बनाने में सहायक होता है अतः वायलिन आदि वाद्यों को एक बटा सात ($^1/_7$) भाग से बजाते हैं।

वाद्य में प्रयुक्त सामग्री यथा धातु या लकड़ी और उसके आकार से भी आर्वतक प्रभावित होते हैं। इन्हीं कारणों से नाद में अन्तर आता है।

मुख्यतः तीन कारणों से नाद के गुण में अन्तर आता है– (1) आवर्तकों की संख्या, (2) उनका क्रम और (3) उनकी प्रबलता।

1- संख्याः– यदि किसी नाद में चार आवर्तक हैं और दूसरे में पाँच है तो गुण में अन्तर होगा। यदि आवर्तकों की संख्या और कम या अधिक हुई तो भी ध्वनि में अन्तर आता जाएगा।

2- क्रमः– मान लो किसी नाद में पाँच आवर्तक हैं। पहले नाद में पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा और पाँचवाँ आवर्तक; दूसरे नाद में पहला, तीसरा, पाँचवाँ, सातवाँ और नौवाँ आवर्तक है तो दोनों में पाँच आवर्तक हुए पर क्रम में अन्तर होने के कारण गुण में अन्तर आ जाएगा।

3- प्रबलताः– दो नाद में समान संख्या और क्रम समान होने पर भी यदि पहले नाद का तीसरा आवर्तक प्रबल है और दूसरे का चौथा तो नाद में अन्तर होगा। यदि एक वाद्य में पाँचवाँ आवर्तक प्रबल है और दूसरे वाद्य में वही आवर्तक अपेक्षाकृत दुर्बल है तो भी नाद के गुण में अन्तर आ जाएगा। आवर्तकों से उत्पन्न इन उपस्वरों के दुर्बल और प्रबल भेद से ही नाद की जाति पर मुख्य रूप से अंतर आता है।

अतः सिद्ध हुआ कि नाद की जाति या गुण में आवर्तकों या उपस्वरों का बहुत महत्त्व है। यहाँ यह बताना अति आवश्यक है कि किसी नाद में जब दूसरा आवर्तक मिलता है तो नाद अधिक प्रसन्नचित्त हो जाता है। तीसरे आवर्तक के मिलने से नाद गम्भीर और सानुनासिक हो जाता है। चौथे आवर्तक के मिलने से दूसरे की भाँति प्रसन्नता और अधिक बढ़ जाती है। पाँचवाँ आवर्तक नाद में खनक पैदा कर देता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। छठा और आठवाँ तो तीसरे, चौथे वाले गुणों को ही बढ़ाते हैं पर अधिक ऊँचे होने के कारण विशेष प्रभाव नहीं डाल पाते। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि नाद की जाति या टिम्बर में ये आवर्तक ही कारण होते हैं। यदि नाद की तीनों विशेषताओं को संक्षेप में कहा जाए तो कहना होगा कि नाद की तारता प्रति-सेकेण्ड आन्दोलन संख्या पर निर्भर करती है। नाद की तीव्रता आन्दोलन के विस्तार पर निर्भर है। नाद के उत्पन्न होने में सहायक मूल-स्वर के साथ-साथ उपस्वरों (Over Tone) के कारण नाद एक दूसरे से अलग हो जाता है, इसी पर नाद की जाति निर्भर होती है जिस प्रकार थोड़े-थोड़े अन्तर के कारण मनुष्य का चेहरा एक दूसरे से नहीं मिलता ठीक इसी तरह किसी के कण्ठ की आवाज़ किसी दूसरे के कण्ठ की आवाज़ से नहीं मिलती।

अब प्रश्न यह उठता है कि गले में किस कारण से अन्तर होता है? इसका मुख्य कारण तो स्वतः उत्पन्न होने वाले उपस्वर या overtone ही हैं, इसके अतिरिक्त शार्गदेव जो संगीत के साथ-साथ आयुर्वेद के भी विद्वान् थे, ने संगीत-रत्नाकर के तीसरे अध्याय में गले से उत्पन्न नाद में अन्तर होने के कारणों पर विचार किया है। उनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य का शरीर वात, पित्त, कफ़ और सन्निपात धातुओं से निर्मित होता है। कोई वात प्रधान है, कोई पित्त प्रधान तो कोई कफ़ प्रधान है या कोई दो-तीन धातुओं के मिश्रण (सन्निपात) वाला है, उसमें भी कौन किस धातु से अधिक प्रभावित है। कफ़ प्रधान वालों का गला सुरीला होता है। वात प्रधान वाले व्यक्ति का गला शुष्क और पित्त प्रधान वालों का मिला-जुला होता है। इन्हीं धातुओं के कारण नाद की जाति में भी अन्तर आता है। जिस प्रकार वाद्यों में आवर्तकों की प्रबलता और दुर्बलता के कारण हमने नाद में अन्तर देखा उसी प्रकार कफ़, पित्त, वात धातुओं में से कौन सा धातु किस व्यक्ति में कितना प्रबल या दुर्बल है। यही व्यक्ति के आवाज़ की भिन्नता (जाति) का कारण होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ड्रोन (Drone) या स्वरित

ड्रोन (Drone) या स्वरितः- वार्तालाप करते समय जब कोई व्यक्ति अपने भावों को भाषा द्वारा व्यक्त करता है तो हम देखते हैं कि वह किसी शब्द को धीरे से, किसी को अपेक्षाकृत ज़ोर से बोलता है। भय या क्रोध में तो इसकी आवाज़ की तारता काफ़ी ऊँची हो जाती है पर सामान्यतः पूरे समय एक निश्चित तारता में वार्तालाप होता है। यह निश्चित तारता संगीत की भाषा में स्वरित या ड्रोन (ध्व.सं.,पृ.-77) कहलाती है। शास्त्रीय-संगीत हो या फ़िल्मी-संगीत, लोक संगीत हो या भजन-ग़ज़ल, सब में आधार-स्वर का अपना एक स्थान है। शास्त्रीय-संगीत में तो आधार-स्वर या स्वरित का विशेष महत्व है। जो स्वर लगातार बजता रहता है उसी के सहारे शेष स्वरों की ऊंचाई-निचाई निर्धारित होती है। यदि कोई बिना वाद्य के गाता है तो आधार-स्वर उसके मन में होता है। यदि गाने वाले को संगीत की जानकारी न भी हो, तो भी आधार-स्वर का होना आवश्यक है। मान लो कि गाने वाला स्वरज्ञान से अनभिज्ञ है उसने केवल सुन कर कहीं से गाना सीख लिया है तो भी उसमें आधार-स्वर तो होगा ही।

मुख्य रूप से आधार-स्वर के लिए शास्त्रीय-संगीत में तानपूरे का प्रयोग किया जाता है। तानपूरा गायन के साथ तो बजता ही है सितार आदि वाद्यों के साथ भी इसका प्रयोग किया जाता है। यहाँ तक कि तबले या पखावज के एकल वाद्य कार्यक्रम में भी तानपूरे को बजते देखा जाता है, जिसमें ताल वाद्य मिले होते हैं। सितार आदि वाद्यों में जोड़े के तार और चिकारियाँ लगातार आधार-स्वर या स्वरित को पुष्ट करती रहती हैं। शहनाई या सपेरों की बीन में आधार-स्वर लगातार बजते देखा जाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इसकी इतनी महत्ता क्यों है? वस्तुतः गाते-बजाते समय कौन सा राग गाया या बजाया जा रहा है इसका निर्धारण आधार-स्वर से ही होता है। जैसे यदि भैरवी गाया या बजाया जा रहा है तो षड्ज के स्थान पर कोमल-ऋषभ को आधार-स्वर मान लिया जाए तो सारा भैरवी राग, यमन राग में परिवर्तित हो जाएगा। इसी प्रकार गान्धार से खमाज और भैरवीं के मध्यम से आसावरी थाट के स्वर बन जाएँगें। यही मूर्च्छना भेद है। इसी आधार-स्वर को पश्चिम में 'ड्रोन' कहा जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राचीन काल में तानपूरे का अविष्कार नहीं हुआ था उस समय आधार -स्वर के लिए गले से ही दो गायक स्वरित दिखाते रहते थे। कहा जाता है कि आगे चलकर बाँसुरी से आधार-स्वर का काम लिया जाने लगा। मध्ययुग के आसपास तानपूरे का अविष्कार हुआ तभी से तानपूरा शास्त्रीय-संगीत का अभिन्न अंग बन गया।

तानपूरे में चार तार होते हैं जो मन्द्र-पञ्चम, मध्य-षड्ज, मध्य-षड्ज तथा मन्द्र-षड्ज में मिलाए जाते हैं। इस प्रकार तानपूरे में केवल दो ही स्वर 'पंचम एवं षड्ज' हुए पर गाते-बजाते समय यदि कलाकार अत्यधिक सुरीला है तो सभी शुद्ध विकृत स्वर तानपूरे में पूरी तरह से समाये हुए दिखायी देते हैं। यह स्वर तानपूरे से स्वतः उत्पन्न होने वाले उपस्वरों से मिलने के कारण होता है। इन्हीं उपस्वरों को सहायक नाद भी कहा जाता है। तानपूरे के अन्तिम तार से गान्धार तो सामान्य स्वर ज्ञान वालों को भी सुनाई देता है। अधिक स्वर ज्ञान होने पर पञ्चम के तार से ऋषभ, निषाद आदि भी सुनाई देने लगते हैं। वैसे तो तानपूरे में सहायक नाद के रूप में सभी स्वर होते हैं। यहाँ इनके उत्पन्न होने की विधि दी जा रही है:-

भौतिक-शास्त्र के अनुसार कोई भी ध्वनि अकेली उत्पन्न नहीं होती। तार आदि कोई भी ध्वनि-उत्पादक-वस्तु (Vibrating body) जब कम्पित होती है तो मूल आन्दोलन संख्या के साथ-साथ दुगुनी, तिगुनी आदि बीसों गुना तक आन्दोलन उत्पन्न करती है(ध्व.सं.,पृष्ठ-39)। कारण यह है कि पूरा तार जो 'मौलिक' कहलाता है, के साथ-साथ दो खण्डों, तीन खण्डों, चार खण्डों आदि अनेक खण्डों में स्वतः कम्पित होता है, जिससे उतने ही गुना आन्दोलन उत्पन्न होते हैं। ये आन्दोलन क्रमानुसार ऊँचे होते जाते हैं एवं उनकी तीव्रता भी कम होती जाती है अतः यहाँ केवल नौ गुना तक ही कम्पन दिखाए जा रहे हैं। सातों स्वरों की आन्दोलन संख्या इस प्रकार है-

सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
240	270	300	320	360	405	450	480

तानपूरे के मध्य-षड्ज के (बीच वाले) दोनों तारों की आन्दोलन संख्या 240 होती है। दो खण्डों में दुगुनी यानी 240 x 2=480 हुई, तीन गुना 240 x 3=720 जो अधिक ऊँची होने के कारण आधी करके देखने से 360 हुई, यह आन्दोलन संख्या पंचम की है। यानी 720 तार-पंचम की आन्दोलन संख्या हुई। 240 का चार गुना करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर 240 x 4=960 हुआ जो अतितार-षड्ज हुआ क्योंकि यह मध्य-षड्ज (240) का चौगुना है। वैसे इसको आधा-आधा करके भी देखा जा सकता है। 240 को पाँच गुना करने पर 240 x 5=1200 हुआ जो क्रमशः आधा-आधा करने पर 600 और 300 होता है जो कि गांधार की आन्दोलन संख्या है अतः 1200 अतितार-गान्धार की आन्दोलन-संख्या हुई। यही तानपूरे के मन्द्र-षड्ज के तार से सुनाई देता है क्योंकि एक सप्तक नीचा होने के कारण उसकी आन्दोलन संख्या 600 होती है। 240 का छह गुना करने से वही स्वर होगा जो तीन गुना करने पर होता है अर्थात् अतितार-पंचम होगा। षड्ज की आन्दोलन-संख्या 240 का सात गुना करने से 240 x 7=1680 हुआ जो आधा करने पर 840 होता है और पुनः आधा करने पर 420 हुआ जो कि उतरा हुआ कोमल-निषाद है क्योंकि कोमल-निषाद की आन्दोलन-संख्या तो 432 होती है। 240 का आठ गुना करने पर अति-अतितार षड्ज हुआ, नौ गुना करने पर 2160 होगा जिसे आधा करने पर 1080 और पुनः आधा करने पर 540 हुआ तथा इसे एक बार फिर आधा करने पर 270 हुआ जो कि ऋषभ की आन्दोलन-संख्या है। अतः 540 तार ऋषभ, 1080 अति-तार ऋषभ और 2160 अति-अतितार ऋषभ हुआ।

इस प्रकार केवल मध्य-षड्ज के तार की आन्दोलन संख्या को 2, 4, 8 से गुणा करने पर सां, 3 और 6 से प, 5 से ग, 7 से उतरा हुआ कोमल नि और 9 से गुणा करने पर रे मिलेगा। अब मन्द्र-पञ्चम जो तानपूरे का प्रथम तार है उससे भी इसी रीति से उप-स्वर ज्ञात करेंगे। मध्य-पञ्चम की आन्दोलन संख्या 360 है अतः आधा करने पर मन्द्र-पंचम बना जिसकी आन्दोलन संख्या 180 होगी, उसे दो गुना करने पर 180 x 2=360 होता है जो मध्य-पञ्चम ही है। तीन गुना करने पर 180 x3=540 हुआ जिसे आधा करने पर ज्ञात होगा कि 270 है। यही वह ऋषभ है जो तानपूरे से सुनाई देता है। षड्ज को नौ गुना करने पर अधिक ऊँचा होने के कारण उप-स्वर ऋषभ बहुत कम सुनाई देता जबकि पंचम के तार से अधिक सुनाई देता है इसीलिए गायक ऋषभ को लगाते समय पंचम का आश्रय लेते हैं। मन्द्र-पंचम की आन्दोलन-संख्या 180 को चार गुना करने पर तार-पंचम ही प्राप्त होगा 180 का पाँच गुना करने पर 900 होता है जो तार-निषाद है जिसका आधा करने पर 450 होगा जो निषाद की आन्दोलन-संख्या है। 180 का छह गुना करने पर तीन गुना वाला ही स्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋषभ होगा। सात गुना करने पर 180 x7=1260 होता है जिसका आधा करेंगे तो 630 होगा पुनः आधा करने पर 315 हुआ जो उतरा हुआ मध्यम है क्योंकि मध्यम की वास्तविक आन्दोलन-संख्या 320 है। 180 को 8 से गुणा करने 180 x 8=1440 होगा जिसका आधा 720 है और उसका आधा 360 हुआ जो कि पंचम ही है। 180 को नौ गुना करने पर 180 x 9=1620 होगा जिसका आधा करने पर 810 और पुनः आधा करने पर 405 प्राप्त होता है यही पं. भातखण्डे द्वारा मान्य धैवत की आन्दोलन-संख्या है।

तानपूरे का अन्तिम तार जो मन्द्र-षड्ज में है, से मध्य-सप्तक के षड्ज वाले स्वर से उत्पन्न उप-स्वर ही सुनाई देंगे क्योंकि वह भी षड्ज में ही है अन्तर केवल यह होगा कि ये उप-स्वर एक सप्तक नीचे होंगे। मध्य षड्ज से उत्पन्न उपस्वरों की ऊँचाई अधिक होने के कारण ये कम सुनाई पड़ते हैं, मन्द्र षड्ज से 5 गुना करने पर गान्धार नीचा होने के कारण ही सुनाई पड़ता है, जबकि उत्पन्न तो बीच वाले तारों से भी होता है।

कुछ रागों में पञ्चम नहीं लगता जैसे ललित, मालकौंस आदि। ऐसे रागों के लिए तानपूरे के प्रथम तार को मन्द्र-मध्यम में मिलाया जाता है तथा मन्द्र-मध्यम की आन्दोलन-संख्या के अनुसार ही उप-स्वर होंगे।

संगीत जानने वालों को जहाँ कही भी किसी पंखे, मोटर, रेल के इंजन आदि से निरन्तर उत्पन्न होने वाली ध्वनि सुनाई पड़ जाती है तो वह उस संगीतकार के लिए सहारा बन जाती है और आधार-स्वर का काम करती है। इसी ड्रोन के सहारे वह कोई भी एक राग गुनगुनाता रहता है। ताल के लिए निश्चित गति की खट-खट सहायक बनती है, उसी में तालज्ञ लयकारियाँ, तिहाइयाँ आदि करता रहता है। किसी संगीत-विहीन व्यक्ति के लिए यह ध्वनि अनुपयोगी और उलझन का कारण हो सकती है परन्तु एक संगीतज्ञ के लिए उपयोगी हो सकती है।

हमने आधार-स्वर या ड्रोन के महत्त्व को देखा कि यह केवल एक स्वर नहीं है। इसमें सभी स्वर स्वतः उत्पन्न होते रहते हैं। गाने या बजाने के स्वर जब पूर्ण-रूपेण आधार-स्वर के उप-स्वरों से मिलते हैं तभी गायक या वादक सुरीला माना जाता है और तभी उसका संगीत-श्रोताओं को प्रभावित कर पाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संवाद-विवाद

[CONSONANCE-DISSONANCE]

संवाद शब्द में 'सं' उपसर्ग तथा 'वद्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय है जिसका अर्थ है मधुर बोलना। वाद में 'वि' उपसर्ग लगाने से विवाद शब्द बनता है जिसका अर्थ हुआ कटु बोलना। दो मनुष्यों या दो समूहों में संवाद का अर्थ है मधुर सम्बन्ध और विवाद का अर्थ है कटु सम्बन्ध।

संगीत में संवाद का अर्थ है दो ध्वनियों को एक साथ सुनने में कानों को मधुर लगना और इसके विपरीत दो ध्वनियों का सुनने में कटु लगना विवाद है। संवाद-विवाद सार्वभौमिक हैं। इन्हें देशकाल बाधित या प्रभावित नहीं करता। प्राचीन काल में भरत आदि मनीषियों ने संवाद के लिए नौ व तेरह श्रुतियों के अन्तर वाले दो स्वरों में क्रमशः षड्ज-मध्यम और षड्ज-पंचम संवाद कहे हैं और दो या बीस श्रुतियों के अन्तराल वाले दो स्वरों को विवादी स्वर कहा है।

आन्दोलन संख्या के आधार पर षड्ज 240, मध्यम 320 और पंचम 360 आन्दोलन-संख्या के स्वर हैं। जिनका पारस्परिक सम्बन्ध षड्ज-मध्यम संवाद के लिए $^4/_3$ और षड्ज-पञ्चम संवाद के लिए $^3/_2$ होता है, यही संवाद के भिन्नांक हुए। वीणा के तार पर षड्ज 36 इंच पर तथा मध्यम 27 इंच पर है जिसका भिन्नांक $^{36}/_{27}$ अर्थात $^4/_3$ हुआ इसी तरह षड्ज 36 और पंचम 24 इंच पर है जिसका भिन्नांक $^{36}/_{24}$ या $^3/_2$ हुआ। इसलिए सभी संगीत-पद्धतियों में षड्ज, मध्यम और पंचम समान ही हैं अतः इनके सम्बन्ध में कहीं भी विवाद नहीं है। चाहे उत्तर भारत का संगीत हो या दक्षिणी-भारत का, पश्चिम का संगीत हो या पूर्व का, सभी में ये तीन स्वर समान रूप से माने जाते हैं क्योंकि ये स्वर सीधे कानों को मधुर लगते हैं।

ठीक इसी प्रकार विवादी-स्वर भी कान को समान रूप से कटु लगते हैं अतः इनमें भी मतभेद नहीं है। दो श्रुति का स्वर हो या अर्ध स्वर, उसका गणितीय मान $^{16}/_{15}$ ही माना जाता है। यदि विवादी-स्वर को गणित की भाषा में सिद्ध करना हो तो, मध्यम और गान्धार में दो श्रुतियों का अन्तर है; बिलावल के स्वरों में मध्यम की आन्दोलन-संख्या 320 और गान्धार की 300 है जिसका संक्षेप किया जाए तो $^{16}/_{15}$ ही है। यही स्वरान्तर षड्ज ग्राम के स्वरों में ग-रे और नि-ध में है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'ध्वनि-विज्ञान' संवाद या विवाद को कानों पर तो आधारित मानता ही है साथ ही कानों को मधुर या कटु क्यों लगते हैं, इसका वैज्ञानिक कारण भी प्रस्तुत करता है। जिन दो ध्वनियों या दो स्वरों की आन्दोलन संख्याओं को संक्षिप्त करके छोटे अकों में दिखाया जा सकता है वे संवादी होते हैं। इसके विपरीत जिन्हें बड़ी संख्याओं में दिखाया जाएगा वे विवादी होते हैं। मध्य-षड्ज की आन्दोलन-संख्या 240 है और तार-षड्ज की 480 है जिनका सम्बन्ध $^2/_1$ का है या यूँ कहा जाए कि मध्य-षड्ज यदि एक है तो तार-षड्ज दो होगा। षड्ज-पंचम में तीन-दो, षड्ज-मध्यम में चार-तीन और इसी प्रकार षड्ज-गान्धार में पाँच-चार तथा षड्ज-कोमल गान्धार में छह-पाँच का सम्बन्ध है। ये संख्याएँ जैसे-जैसे आगे बढ़ती जा रही हैं वैसे-वैसे संवाद घटता जा रहा है। और भी आगे बढ़ने पर संवाद क्रमशः घटता जाएगा तथा विवाद बढ़ता जाएगा। $^9/_8$ गुरू-स्वर या मेजरटोन चार श्रुति का स्वर तथा $^{10}/_9$ लधु-स्वर या माइनरटोन तीन श्रुति का स्वर है जो संवादहीन हैं। $^{16}/_{15}$ अर्ध-स्वर या दो श्रुति का स्वर है जिसमें अधिकतम विवाद का सम्बन्ध होता है

संवाद या विवाद के तीन कारण होते हैं:- मौलिक-स्वर, उप-स्वर और परिणामी-स्वर। मौलिक स्वर का अर्थ है मूल स्वर, यानी तार से जो मूल आन्दोलन पैदा होता है। उप-स्वर का अर्थ है उस तार के दो खण्डों, तीन खण्डों आदि से उत्पन्न होने वाले आवर्तक जो दुगुने, तिगुने आदि आन्दोलन पैदा करते हैं। परिणामी-स्वर दो प्रकार के होते हैं:- शैषिक-स्वर और यौगिक-स्वर।

परिणामी स्वरों का संवाद-विवाद पर प्रभावः- शैषिक से तात्पर्य शेष अंश या अन्तर से है जैसे षड्ज-पंचम में षड्ज 240 और पंचम 360 आन्दोलन का है जिनका अन्तर 120 है यही शैषिक-स्वर है तथा षड्ज और पंचम स्वरों की आन्दोलन संख्या का योग (240 + 360 =) 600 यौगिक-स्वर होता है अर्थात् किन्हीं दो स्वरों की आन्दोलन संख्याओं का अन्तर शैषिक-स्वर तथा उनका योग यौगिक-स्वर होता है।

षड्ज-पंचम संवाद $^3/_2$ का होता है इसका अर्थ यह हुआ कि षड्ज का तीन गुना या तीसरा आवर्तक और पंचम का दो गुना या दूसरा आवर्तक समान हैं जैसे षड्ज (240 x 3 =) 720 और पंचम (360 x 2 =) 720 बराबर हैं। ये दोनों संख्याएँ समान हैं इसीलिए इन दोनों में संवाद है। इसी प्रकार षड्ज-मध्यम संवाद को भी देखें:- षड्ज-मध्यम संवाद $^4/_3$ है यानी षड्ज के चौथे आवर्तक और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्यम के तीसरे आवर्तक की आन्दोलन-संख्या समान है यथाः- (240 x 4 =) 960 और (320 x 3 =) 960, अतः इन दोनों स्वरों में भी संवाद है। षड्ज-पंचम संवाद में तीसरे और दूसरे आवर्तक में समानता थी पर षड्ज-मध्यम संवाद में चौथे और तीसरे आवर्तक में समानता मिलती है जो अपेक्षाकृत अधिक दूरी में होने के कारण षड्ज-पंचम से कुछ निचले स्तर का संवाद होता है। षड्ज-पंचम का शैषिक (240 - 360 =) 120 है जो कि 240 का आधा होने के कारण मन्द्र-सप्तक का षड्ज है जबकि षड्ज-मध्यम का शैषिक (240 - 320 =) 80 है जो मध्यम की आन्दोलन-संख्या 320 का चौथाई होने के कारण अति-मन्द्र मध्यम है अतः षड्ज-पंचम से षड्ज-मध्यम संवाद अपेक्षाकृत कम हो गया। इसी रीति से षड्ज-गान्धार या षड्ज-कोमल गान्धार को भी देखा जा सकता है।

डोलः- किन्हीं दो स्वरों के मध्य जितने आन्दोलनों का अन्तर होता है उतने ही डोल होते हैं। इन्हें डोल तब कहा जाता है जब इनकी संख्या प्रति-सेकेण्ड बहुत ही कम होती है। जब दो स्वरों में प्रति-सेकेण्ड पाँच-सात आन्दोलनों का अन्तर होता है तब तो इन डोलों का कान के अलावा तानपूरे की डाँड पर हाथ रखकर उन्नत क़िस्म स्पर्श से भी अनुभव किया जा सकता है। जैसे-जैसे उन दोनों स्वरों को और अधिक निकट लाया जाता है डोलों की संख्या घटती जाती है कुशल संगीतज्ञ इन्हीं डोलों के सहारे तानपूरे को मिलाते हैं।

दो स्वरों में जितने आन्दोलनों का अन्तर होगा स्वर उतनी ही बार उठता-गिरता प्रतीत होगा। यह स्वर का उठना गिरना क्यों अनुभव होता है इसके पीछे केवल कान का विकार या अनुभव ही नहीं है बल्कि वास्तव में जब दो स्वरों की तरंगें बनकर एक दूसरे पर पड़ती हैं तो संयोग तरंग बनती है इस प्रकार उन दोनों स्वरों की आन्दोलन-संख्या के अन्तर के बराबर तरंग में बनने वाली 'उभार' और 'खाल' कम हो जाती है। उदाहरणार्थः-यदि एक स्वर में चार और दूसरे में छह आन्दोलन है तो प्रति-सेकेण्ड प्रथम स्वर की तरंग से चार बार उभार व खाल बनेंगी, उतने ही समय में दूसरे स्वर में छह उभार और खाल बनेंगी क्योंकि दो आन्दोलन दूसरे स्वर में अधिक हैं और दो उभार प्रथम स्वर के खाल पर पड़ेंगे अतः वहाँ तरंग नहीं बन सकेगी। जहाँ उभार पर उभार पड़ेगा या खाल पर खाल पड़ेगी वहाँ तरंग का विस्तार बढ़ने से स्वर की तीव्रता बढ़ जाएगी। इसी कारण स्वर दो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बार उठकर गिरता हुआ अनुभव होता है। वैसे तो इतने कम आन्दोलनों का तो स्वर नहीं हो सकता किन्तु यहाँ केवल तथ्य को समझाने के लिए इतने कम आन्दोलनों को लिया गया है, जो आगे चित्र में स्पष्ट है:–

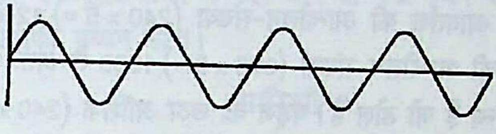

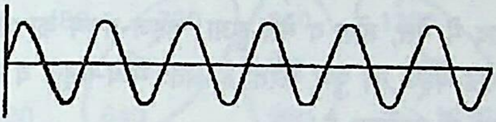

कान प्रति–सेकेण्ड 23 डोलों की संख्या वाले स्वर में सबसे अधिक कटुता का अनुभव करता है। कुछ विद्वान 33 प्रति–सेकेण्ड डोलों वाले स्वर को विवादी मानते हैं अतः जब षड्ज 240 आन्दोलन का है तो 240 + 23 = 263 या 240 - 23 =217 आन्दोलन का स्वर विवादी होगा। यह संख्या लगभग अर्ध–स्वर के बराबर है, अर्ध–स्वर की आन्दोलन-संख्या $^{16}/_{15}$ मानी गई है। श्रुतियों की दृष्टि से दो श्रुति वाला स्वर विवादी माना जाता है। यही डोल जब अधिक हो जाते हैं तो कान इन्हें नहीं पकड़ पाते और अधिक संख्या होने पर यही शैषिक–स्वर बन जाता है। जैसे यदि षड्ज 240 का है और पंचम 360 का तो अन्तर 120 आन्दोलन प्रति–सेकेण्ड का हुआ। यही शैषिक–स्वर होगा जो मन्द्र षड्ज होने के कारण मौलिक–षड्ज को पुष्ट करेगा। हारमोनियम की दो समीपवर्ती पटरियों को यदि एक साथ दबा कर धौंकनी चलाएँ तो दोनों स्वरों में 'गड़गड़' की अनुभूति होती है, यही डोल है।

उप–स्वरों का संवाद–विवाद पर प्रभावः– दो स्वरों की मूल–आन्दोलन संख्या का भिन्नांक जब छोटे अंकों में होता है तो उनमें संवाद होता हैं साथ ही उन दोनों स्वरों के आवर्तकों या आंशिकों में यदि मेल है तो अपेक्षाकृत अधिक संवाद होता है और यदि उनके आंशिकों में डोल है तो विवाद होता है, यानी 'मेल' होने पर संवाद और 'डोल' होने पर विवाद होता है।

षड्ज–पंचम संवादः– षड्ज–पञ्चम दो स्वर हैं जिनकी आन्दोलन–संख्या क्रमशः 240 और 360 है, षड्ज का दूसरा आंशिक 480 और पञ्चम का दूसरा 720 है इसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार क्रमशः तीसरे, चौथे आंशिक आदि अनेक गुणा के होते हैं पर यहाँ छह आंशिकों तक ही विचार किया जाएगा। षड्ज के तीसरे आंशिक (240 x 3 =) 720 और पंचम के दूसरे आंशिक (360 x 2 =) 720 की आन्दोलन-संख्या एक ही है जिसे मेल कहेंगे। षड्ज के पाँचवें आवर्तक की आन्दोलन-संख्या (240 x 5 =) 1200 है तो पंचम के तीसरे आवर्तक की आन्दोलन-संख्या (360 x 3 =) 1080 है अतः 1200 और 1080 में $9/8$ का सम्बन्ध है जो डोल है। षड्ज का छठा आंशिक (240 x 6 =) 1440 और पंचम का चौथा आंशिक (360 x 4 =) 1440 समान होने के कारण मेल कहेंगे अतः षड्ज-पंचम संवाद में मेल, डोल व मेल हुआ। षड्ज-पंचम का शैषिक (360 - 240 =) 120 है जो मन्द्र-षड्ज को पुष्ट करता है अतः मध्य-षड्ज व तार-षड्ज के बाद षड्ज-पंचम संवाद ही सर्वोत्तम है।

सारिणी-1

षड्ज-पंचम संवाद

स	240	480	720	960	1200	1440
			मेल		डोल	मेल
प		360	720		1080	1440

षड्ज-मध्यम संवादः– षड्ज का तीसरा आंशिक (240 x 3=) 720 है और मध्यम का दूसरा (320 x 2 =) 640 है जिसमें $9/8$ का सम्बन्ध है जो डोल है। षड्ज का चौथा आँशिक (240 x 4 =) 960 और मध्यम का तीसरा आंशिक (320 x 3 =) 960 है जो मेल है। षड्ज का पाँचवाँ और मध्यम का चौथा आंशिक क्रमशः (240 x 5 =) 1200 व (320 x 4 =) 1280 है जिसमें $16/15$ का अर्ध-स्वर का सम्बन्ध है, जो डोल है। षड्ज का छठा आंशिक (240 x 6) = 1440 है और मध्यम का पाँचवाँ आंशिक (320 x 5 =) 1600 है जो $10/9$ का लघु-स्वर होने के कारण डोल है।

षड्ज-मध्यम संवाद में डोल अधिक है और मेल ऊँचे आंशिकों में है अतः विद्वानों में षड्ज-मध्यम संवाद एक विवाद का विषय रहा है। पहले तो षड्ज-मध्यम संवाद को संवाद ही नहीं माना जाता था पर कानों को तो षड्ज-पंचम की अपेक्षा षड्ज-मध्यम संवाद अधिक प्रिय लगता है जिससे अन्ततः समाधान यह निकाला गया कि षड्ज-मध्यम संवाद में पंचम को यदि षड्ज मान लिया जाए तो अवरोह-क्रम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से षड्ज, मध्यम में परिवर्तित हो जाएगा अतः कहा जा सकता है कि षड्ज-पंचम का उल्टा षड्ज-मध्यम संवाद है। अतः इसे संवाद मान लिया गया। उल्टा इसलिए कहा गया है, क्योंकि मन्द्र-मध्यम व मध्य-षड्ज में $^{3}/_{2}$ का सम्बन्ध है जो $^{240}/_{160}$ होता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो मन्द्र-पंचम को यदि षड्ज कहें तो मध्य-षड्ज उसका मध्यम होगा।

सारिणी-2

षड्ज-मध्यम संवाद

स	240	480	720	960	1200	1440
			डोल	मेल	डोल	
म		320	640	960	1280	

षड्ज-गान्धार संवादः– दोनों मौलिक स्वरों का शैषिक (300-240=) 60 है जो अतिमन्द्र-षड्ज है। बहुत नीचा होने के कारण ये संवाद में विशेष सहायक नहीं है। षड्ज का चौथा आंशिक (240 x 4 =) 960 है और गान्धार का तीसरा आंशिक (300 x 3 =) 900 है जिनका सम्बन्ध $^{960}/_{900}$ या $^{16}/_{15}$ का अर्ध-स्वर का है अतः डोल है। षड्ज का पाँचवाँ आंशिक (240 x 5 =) 1200 और गान्धार का चौथा आंशिक (300 x 4 =) 1200 है जो मेल है। षड्ज का छठा आंशिक (240 x 6 =) 1440 तथा गान्धार का पाँचवाँ आंशिक (300 x 5=) 1500 है जिसमें $^{1500}/_{1440}$ या $^{25}/_{24}$ का सम्बन्ध अर्ध-स्वर से भी कम का है अतः डोल है।

सारिणी-3

षड्ज-गान्धार संवाद

स	240	480	720	960	1200	1440
				डोल	मेल	डोल
ग		320	600	900	1200	1500

षड्ज-धैवत संवादः– दोनों स्वरों का शैषिक (400-240 =) 160 है जो एक अन्य स्वर मन्द्र-मध्यम है। षड्ज का तीसरा आंशिक (240 x 3=) 720 और धैवत का दूसरा आंशिक (400 x 2=) 800 है जिनका भिन्नांक $^{800}/_{720}$ या $^{10}/_{9}$ है जो लघु-स्वर है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः डोल है। षड्ज का पाँचवाँ (240 x 5=) 1200 है तथा धैवत का तीसरा आवर्तक (400 x 3=) 1200 है जो समान होने के कारण मेल है। षड्ज का छठा (240 x 6 =) 1440 और धैवत का चौथा (400 x 4=) 1600 है जिसमें पुनः $^{1600}/_{1440}$ या $^{10}/_{9}$ का लघु-स्वर का सम्बन्ध होने के कारण डोल है।

षड्ज-गान्धार और षड्ज-धैवत संवाद प्रायः एक जैसा है क्योंकि इन दोनों में डोल, मेल व डोल इसी क्रम से आंशिकों में सम्बन्ध है। षड्ज-गान्धार का तीसरा 960/900 आंशिक डोल पैदा करता है जबकि षड्ज-धैवत का दूसरा 800/720 ही आंशिक डोल पैदा करता है पर षड्ज-गान्धार का डोल अर्ध-स्वर का है तो षड्ज-धैवत का डोल लघु-स्वर का है। षड्ज-गान्धार का अर्ध-स्वर का डोल होने के कारण अनिष्टता उत्पन्न होती है परन्तु यह डोल अधिक ऊँचा है और षड्ज-धैवत की डोल लघु-स्वर की होने के कारण अपेक्षाकृत कम अनिष्टता उत्पन्न करती है पर नीची है षड्ज-गान्धार में एक कारण से अनिष्टता बढ़ती है वहीं दूसरे कारण से घटती है। षड्ज-धैवत में पहले कारण में अनिष्टता घटती है और दूसरे से बढ़ती है। षड्ज-गान्धार 300 - 240=60 का शैषिक अतिमन्द्र-षड्ज है जबकि षड्ज-धैवत 400 - 240=160का शैषिक मन्द्र-मध्यम है जो एक नवीन स्वर उत्पन्न है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थकारों ने षड्ज-गान्धार को 'सप्तश्रुत्यन्तर-संवाद' कहा है जबकि षड्ज-धैवत संवाद के लिए कुछ नहीं कहा है।

षड्ज-धैवत संवाद के विषय में यह बताना आवश्यक है कि यह धैवत 400 आन्दोलन का है जिसका सम्बन्ध षड्ज से $^{400}/_{240}$ अर्थात् $^{5}/_{3}$ का है (405 का धैवत $^{27}/_{16}$ भिन्नांक का है।) जो पूर्णरूपेण विवादी है। इस धैवत में यही विशेषता है कि यह पूर्वाङ्ग के यमक और उत्तराङ्ग के यमक से संवाद करने से प्राप्त होता है। 400 का धैवत तानपूरे से संवाद करता है। भातखण्डे जी ने 405 का धैवत माना है। पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर परम्परा वाले 400 के धैवत को ही मान्यता देते हैं।

सारिणी-4

षड्ज-धैवत संवाद

स	240	480	720	960	1200	1440
			डोल		मेल	डोल
ध		400	800		1200	1600

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षड्ज-कोमल गान्धार संवादः– षड्ज का चौथा आंशिक (240 x 4 =) 960 है और गान्धार का तीसरा आंशिक (288 x 3 =) 864 है जिसका भिन्नांक $^{960}/_{864}$ या $^{10}/_{9}$ है जो डोल है। षड्ज का पाँचवाँ आंशिक (240 x 5 =) 1200 है और गांधार का चौथा आंशिक (288 x 4 =) 1152 है जिसका सम्बन्ध षड्ज से $^{1200}/_{1152}$ या $^{25}/_{24}$ का है जो अत्यन्त विवादी है। केवल षड्ज का छठा (240 x 6 =) 1440 और गान्धार का पाँचवाँ आंशिक (288 x 5=) 1440 समान हैं जो मेल है। यह बहुत ऊँचे आंशिकों में मेल होने के कारण संवाद और विवाद की सीमा पर है। इनके मौलिकों का शैषिक (गांन्धार 288 – षड्ज 240=) 48 भी किसी स्वर को पुष्ट नहीं करता।

सारिणी-5

षड्ज-कोमल गान्धार संवाद

स	240	480	720	960	1200	1440
				डोल	डोल	मेल
ग॒		288	576	864	1152	1440

षड्ज-कोमल धैवत संवादः– षड्ज का तीसरा आंशिक जो कि (240 x 3=) 720 है और धैवत का दूसरा आंशिक (384 x 2=) 768 है जिसका पारस्परिक सम्बन्ध $^{768}/_{720}$ या $^{16}/_{15}$ का है यह अर्ध-स्वर विवादी होने के कारण डोल है। षड्ज का पाँचवाँ आंशिक (240 x 5=) 1200 आन्दोलन का है और कोमल-धैवत का तीसरा आंशिक (384 x 3=) 1152 का है जिसका भिन्नांक भी $^{25}/_{24}$ का अत्यन्त विवादी डोल है। षड्ज का छठा आंशिक (240 x 6=)1440 का है और कोमल-धैवत का चौथा आंशिक (384 x 4 =)1536 का है अतः दोनों का सम्बन्ध ($^{1536}/_{1440}$=) $^{16}/_{15}$ का है जो अर्ध-स्वर का विवादी अन्तराल है जो कि डोल है। केवल षड्ज का आठवाँ आंशिक (240 x 8=) 1920 और कोमल-धैवत का पाँचवाँ आंशिक जो कि (384 x 5=) 1920 आन्दोलन-संख्या का है, ये समान होने के कारण उनमें मेल है। यह बहुत ही ऊँचे आंशिकों में है अतः इनमें न के बराबर संवाद है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारिणी-6

षड्ज-कोमल धैवत संवाद

स	240	480	720	960	1200	1440
			डोल		डोल	डोल
<u>ध</u>		384	768		1152	1536

यहाँ षड्ज, गान्धार, कोमल-गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और कोमल-धैवत के संवाद पर विचार किया गया। कानों को जो संवाद सुरीले लगते हैं ध्वनि-विज्ञान उन संवादों को यह कह कर स्वीकार करता है कि उनमें नीचे के आंशिकों में मेल होता है। साथ ही ऐसे संवादों में डोल कम होते हैं और मेल अधिक होते हैं। जैसे-जैसे मेल कम होते जाते हैं और डोलों की संख्या में वृद्धि होती जाती है और विवाद बढ़ता जाता है। यहाँ केवल उन्ही संवादों पर विचार किया गया जिनको हार्मोनी में लिया जाता है।

संवाद के लिए आठ अंक की सीमा है इसके आगे विवाद का क्षेत्र आ जाता है। $^{9}/_{8}$ गुरु स्वर का अन्तराल है जो कि बिलावल का शुद्ध-ऋषभ है। षड्ज से शुद्ध-ऋषभ का सम्बन्ध $^{9}/_{8}$ का है। इसका अर्थ यह हुआ कि षड्ज का नौवाँ और ऋषभ का आठवाँ आंशिक समान आवृत्ति के है जो कि 240 x 9 =2160 और 270 x 8 =2160 है। यह अधिक ऊँचा होने के कारण विवाद के क्षेत्र का स्वर है।

तीन श्रुति का स्वर $^{10}/_{9}$ होता है। षड्ज का दसवाँ आंशिक और तीन श्रुति वाले ऋषभ का नौवाँ आंशिक समान या मेल होंगे जो कि 240 x 10 =2400 और 266 $^{2}/_{3}$ x 9 =2400 आवृत्ति के हैं। वागेश्वरी, रागेश्वरी आदि रागों में तीन श्रुति वाले ऋषभ का प्रयोग होता है। वस्तुतः जिन रागों में तानपूरे के प्रथम तार को पंचम के स्थान पर मध्यम में मिलाते हैं उन रागों में यदि शुद्ध-ऋषभ का प्रयोग होता है तो वह तीन श्रुति का ही लगता है क्योंकि शुद्ध-मध्यम से छह श्रुति या $^{6}/_{5}$ के अन्तराल वाला स्वर त्रिश्रुतिक 266 $^{2}/_{3}$ आन्दोलन का ही होता है।

कोमल-ऋषभ जो अर्ध-स्वर के अन्तराल $^{16}/_{15}$ पर स्थित है, सबसे अधिक विवादी होता है। प्राचीन काल के सभी ग्रन्थकार दो श्रुति वाले स्वरों को विवादी मानते हैं। ऋषभ और धैवत के आधार-स्वर होने पर क्रमशः कोमल-गांधार, कोमल-निषाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विवादी-अन्तराल पर हैं अतः वे विवादी स्वर हुए। इसी प्रकार कोमल-गान्धार, कोमल-निषाद के आधार-स्वर होने पर क्रमशः ऋषभ, धैवत विवादी हुए क्योंकि उनका आधार स्वर से दूरी या अन्तराल दो या बीस श्रुतियों का है।

$^{16}/_{15}$ अन्तराल का अर्थ यह हुआ कि षड्ज का सोलहवाँ और कोमल-ऋषभ का पन्द्रहवाँ आंशिक समान आवृत्ति के हैं जो कि 240 x 16 = 3840 और 256 x 15 = 3840 है, यह बहुत ही ऊँचा स्वर है, इसका शैषिक (256 - 240 =) 16 दोनों स्वरों में से किसी को प्रभावित नहीं कर पाता है क्योंकि यह स्वर चार सप्तक नीचे का कोमल-ऋषभ है अतः यह विवादी स्वर है। षड्ज से शुद्ध-निषाद भी $^{15}/_{8}$ पर है इसलिए षड्ज और शुद्ध-निषाद का अन्तराल भी विवादी अन्तराल माना जाएगा।

दूसरे और पहले आंशिकों में $^{2}/_{1}$ का सम्बन्ध है जो तार-षड्ज और मध्य-षड्ज का अन्तराल है। तीसरे व दूसरे आंशिकों का $^{3}/_{2}$ षड्ज-पंचम का अन्तराल है। चौथे व तीसरे आंशिकों का $^{4}/_{3}$ का अन्तराल है जो षड्ज-मध्यम का है इसी प्रकार पाँचवें-चौथे का $^{5}/_{4}$ षड्ज-गान्धार का और छठे-पाँचवें का $^{6}/_{5}$ षड्ज-कोमल गान्धार का अन्तराल है। इसी तरह जैसे-जैसे आगे ऊँचे आंशिक एक दूसरे के और निकट आते जाते हैं, छोटा अन्तराल होने के कारण स्वरों में संवाद के स्थान पर विवाद की मात्रा क्रमशः बढ़ती ज़ाती है। इस प्रक्रिया से दो स्वरों में संवाद के स्थान पर विवाद की मात्रा क्रमशः बढ़ती जाती है। यह प्रक्रिया दो स्वरों में तो होती ही है एक स्वर में भी होती है अतः अकेला स्वर भी सुरीला व कटु हो सकता है। कुछ वाद्यों या मनुष्यों का स्वर सुरीला व कटु इन्हीं आंशिकों के ही कारण होता है। जिन वाद्यों या कण्ठ में सुरीला स्वर होता है उनमें नीचे यानि कम वाले आंशिक प्रबल होते हैं, इसके विपरीत जिनका स्वर कटु होता है उनमें ऊपर या अधिक संख्या वाले आंशिक प्रबल होते है और नीचे वाले दुर्बल होते हैं।

सातवें, ग्यारहवें, तेरहवें आदि ऊँचे आंशिक जो किसी संख्या से विभाजित नहीं होते वो यदि किसी वाद्य या किसी के गले में प्रबल हैं तो उनकी आवाज़ कटु होती है। जिन संख्याओं के आंशिक किसी संख्या से विभाजित हो जाते हैं वे नीचे वाले को ही पुष्ट करेंगे जैसे 12, 15, 16 आदि क्रमशः तीसरे पाँचवें और पहले (मौलिक) आवर्तक को ही पुष्ट करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आयुर्वेद के अनुसार मनुष्य में कफ़, पित्त, और वात धातु होते हैं। जिनमें एक से अधिक धातुओं का मिश्रण होता है उसे सन्निपात कहते हैं। संगीत-रत्नाकर के तीसरे प्रकीर्णक अध्याय में शार्गदेव ने कंठ स्वर में परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि कफ़ प्रधान लोगों का कण्ठ सुरीला, मधुर व सुकुमार होता है। पित्त प्रधान लोगों का कण्ठ घन-गम्भीर, तीनों सप्तकों में आसानी से जाने वाला होता है। वात प्रधान लोगों का कण्ठ खोखला, कठोर एवं मोटी आवाज़ वाला और ऊँचे स्वरों वाला होता है।

ध्वनि-विज्ञान से यदि आयुर्वेद के धातुओं के मिलाने का यत्न किया जाए तो यह होना चाहिए कि कफ़ प्रधान लोगों में सम्भवतः नीचे के आँशिक प्रबल होते होंगे और ऊपर वाले दुर्बल, वात प्रधान वालों के ऊँचे आँशिक प्रबल होते होंगे और नीचे वाले दुर्बल तथा सन्निपात में मिले जुले गुण वाली कण्ठ ध्वनि होती होगी। इनमें भी जो कण्ठ ध्वनि एक दूसरे से विरोधी नहीं है, जैसे वात प्रधान लोगों की मोटी एवं कफ़ वालों की मधुर, तो वे मिल सकती हैं। कठोर और मधुर या घन और खोखली आवाज़ तो परस्पर विरोधी हैं अतः वे नहीं मिल सकतीं और संगीत के लिए भी अनुपयोगी होती है।

वाद्यों में से विवादी आंशिकों को दबा कर उनमें मधुरता बढ़ाई जाती है। कण्ठ में खान-पान, रहन-सहन और विचारों में परिवर्तन से किसी हद तक सुधार किया जा सकता है। आजकल तो गले का आप्रेशन करवा के भी कुछ सुधार लाया जाता है। अभ्यास से तो सब कुछ सिद्ध होते देखा गया है। पं0 ओमूकारनाथ ठाकुर अपने कण्ठ में मधुरता का कारण उचित अभ्यास ही मानते थे।

संगीत में मधुर ध्वनियों का प्रयोग होता है जो कि संवाद पर निर्भर क़रती है। विवादी स्वरों के प्रयोग से भी विचित्रता उत्पन्न की जा सकती है किन्तु इसके लिए उचित ज्ञान की आवश्यकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरान्तर

स्वरान्तर शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है- स्वर और अन्तर। गायन-वादन करते समय जब एक स्वर के बाद दूसरा स्वर प्रयोग किया जाता है तो उन दो स्वरों में जो अन्तराल होता है, वही स्वरान्तर या स्वरान्तराल कहलाता है। यदि सातों स्वरों को क्रम से गाया या बजाया जाए तो अन्तराल कुल तीन प्रकार के ही होते हैं क्योंकि स्वर चार, तीन और दो ही श्रुतियों के होते हैं अतः अन्तराल भी तीन ही प्रकार के होंगे।

किसी राग को गाते या बजाते समय आवश्यक नहीं कि राग विशेष में लगने वाले स्वरों को क्रम से प्रयोग किया ही जाए। अतः इस प्रकार स्वरान्तर भी अलग-अलग प्रकार के हो जाते हैं। जैसे राग केदार में षड्ज के बाद सीधे मध्यम का प्रयोग करना होता है, राग बिहाग में षड्ज के बाद गान्धार लगाना होता है। इसी प्रकार राग के अनुसार भैरव की स्वर मालिका में सा ध॒ प प ध॒ म प म ग रे॒ है। यानी षड्ज के बाद सीधे कोमल धैवत का प्रयोग किया गया। राग आसावरी, जौनपुरी आदि में तो मध्य-षड्ज से तार-सप्तक के कोमल-गान्धार का प्रयोग अधिकतर बन्दिशों में मिलता है।

एक स्वर के बाद दूसरे स्वर के मध्य कितना अन्तराल मुख्य रूप से प्रयोग होता है उसे यदि ध्यान से देखा जाए तो ज्ञात होगा कि सभी रागों में कुल सात-आठ अन्तराल ही पुनरावृत्त होते रहते हैं। जिस राग में कम से कम स्वरान्तरों का प्रयोग होता है वह राग उतना ही प्रभावशाली होता है, जितने अधिक स्वरान्तर प्रयुक्त होंगे वह राग उतना ही क्लिष्ट होता जाता है और वह राग हृदय का विषय न रह कर बुद्धि-कौशल का प्रदर्शन रह जाता है।

राग बिहाग में 'ऩिसा गम पमं गमग सां नि पमं गमग' के स्वर विस्तार में सभी स्थलों पर अर्ध-स्वर या $^{16}/_{15}$ के स्वरान्तर का ही प्रयोग हुआ है। इसी राग में दूसरा स्वरान्तराल सा ग और प नि का होता है जो कि षड्जान्तर का है यह $^{5}/_{4}$ का है। अवरोह में भी यही अन्तराल मींड के साथ से प्रयुक्त होता है म-प का स्वरान्तर चार श्रुति का या $^{9}/_{8}$ का है। राग बिहाग में सा-म और प-सां की स्वर संगतियां भी प्रयुक्त होती हैं। षड्ज से मध्यम पर और पंचम से तार-षड्ज पर भी जाते हैं। ये दोनों स्वरान्तर वास्तव में एक ही हैं जो कि $^{4}/_{3}$ अन्तराल के हैं। कहने का भाव यह है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी भी राग में स्वरान्तरों की संख्या अधिक नहीं होती राग बिहाग में कुल चार ही प्रकार के स्वरान्तरों का प्रयोग हुआ है।

1. अर्धस्वर- नि, सा, ग, म, प, मं, ग म ग, 16/15
2. 5/4 जो कि सा-ग और प-नि में है।
3. 9/8 जो कि म-प में है।
4. 4/3 जो कि सा-म, प-सां में है।

स्वरान्तर या अन्तराल अलग-अलग स्वरों से भी बनाए जा सकते हैं जैसे जो अन्तराल षड्ज से मध्यम का है वही ऋषभ और पंचम का, गान्धार और धैवत का तथा पंचम और तार षड्ज का होगा। इसी प्रकार जो अन्तराल षड्ज-गान्धार का है वही ऋषभ-तीव्रमध्यम, कोमल गान्धार-पञ्चम, मध्यम-धैवत और पंचम-निषाद में होगा। आगे षड्ज से शेष सभी शुद्ध विकृत स्वरों के अन्तराल दिए जा रहे हैं:-

1- **प्रथम अन्तराल (UNISON INTERVAL):-** षड्ज के बाद पुनः षड्ज के प्रयोग को हमारे संगीत में तो अन्तराल नहीं कहा जाता पर पाश्चात्य संगीत में इसे भी स्वरान्तर कहते हैं। यह शून्य अन्तराल है इसे यूनिसन-इण्टरवल के नाम से जाना जाता है।

2- **दूसरा अन्तराल (SECOND INTERVAL) :-** यह अन्तराल षड्ज से ऋषभ का है जो चार श्रुति या गुरु स्वर का है। इसे मेजर-टोन (Major Tone) भी कहते हैं। वीणा पर सा = 36 और रे =32 तो ($^{36}/_{32}$ =) $^{9}/_{8}$ आन्दोलन संख्या की दृष्टि से इसे ($^{270}/_{240}$ =) $^{9}/_{8}$ लिखते हैं।

3- **तीसरा अन्तराल (THIRD INTERVAL) :-** यह अन्तराल षड्ज से शुद्ध गान्धार का है जिसे सात श्रुतियों का अन्तराल या 'षड्जान्तर-संवाद' भी कहा जाता है। इसे भिन्नांक में ($^{300}/_{240}$ =) $^{5}/_{4}$ का स्वरान्तर कहते हैं।

4- **चौथा अन्तराल (FOURTH INTERVAL) :-** यह स्वरान्तर षड्ज-मध्यम में होता है। वीणा पर सा = 36 और म =27 तो ($^{36}/_{27}$=) $^{9}/_{8}$ आन्दोलन संख्या में इसे ($^{320}/_{240}$ =) $^{4}/_{3}$ का या षड्ज-मध्यम का संवाद कहा जाता है। इसे नौ श्रुति का अन्तराल भी कहते है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5- **पाँचवाँ अन्तराल** (FIFTH INTERVAL) :- यह स्वरान्तर षड्ज-पंचम में होता है वीणा के तार पर सा = 36 और प =24 तो ($^{36}/_{24}$=) $^{3}/_{2}$ आन्दोलन संख्या में ($^{360}/_{240}$ =) $^{3}/_{2}$ में लिखते हैं। सभी रागों में वादी और संवादी में चौथा व पाँचवाँ स्वरान्तर या अन्तराल ही होता है। विद्वानों ने पाँचवें स्वरान्तर को तेरह श्रुति का कहा है।

6- **छठा अन्तराल** (SIX INTERVAL) :- षड्ज से धैवत का स्वरान्तर छठा अन्तराल कहलाता है जो भिन्नांक में ($^{400}/_{240}$ =) $^{5}/_{3}$ का है।

7- **सातवाँ अन्तराल** (SEVENTH INTERVAL) :- यह अन्तराल षड्ज से निषाद का है जो ($^{450}/_{240}$ =) $^{15}/_{8}$ का स्वरान्तराल है।

8- **आठवाँ अन्तराल या सप्तकान्तर** (OCTIVE INTERVAL):- यह अन्तराल मध य -षड्ज से तार-षड्ज के बीच होता है। वीणा के तार पर सा = 36 और सां =18 तो ($^{36}/_{18}$=) $^{2}/_{1}$ आन्दोलन संख्या में ($^{480}/_{240}$ =) $^{2}/_{1}$ का है, अथवा किसी भी स्वर से उसी स्वर का तार सप्तक में गाने या बजाने पर यह अन्तराल प्राप्त होता है।

यहाँ तक एक सप्तक की चर्चा हुई। यदि मध्य-षड्ज से तार-सप्तक के किसी स्वर का प्रयोग किया जाएगा तो वह (Compound Interval) कहलाएगा। मध्य-षड्ज से तार-ऋषभ, तार-गान्धार आदि में यह अन्तराल पाया जाता है। यहाँ तक केवल शुद्ध स्वरों के स्वरान्तर पर ही विचार किया गया है। रागों में विकृत स्वरों का भी प्रयोग होता है। अतः संक्षेप में इन अन्तरालों पर भी विचार किया जा रहा है। षड्ज-कोमल ऋषभ, यह अर्ध स्वरान्तर (Semitone Interval $^{256}/_{240}$ =) $^{16}/_{15}$ का स्वरान्तर है। षड्ज-कोमल गान्धार ($^{288}/_{240}$ =) $^{6}/_{5}$ का स्वरान्तर है। इसी प्रकार षड्ज से तीव्र-मध्यम के बीच (337 $^{1}/_{2}$ x $^{1}/_{240}$ =) $^{45}/_{32}$ का अन्तराल होता है। षड्ज से कोमल-धैवत के मध्य ($^{384}/_{240}$ =) $^{8}/_{5}$ का स्वरान्तर होता है और षड्ज से कोमल-निषाद का ($^{432}/_{240}$ =) $^{9}/_{5}$ का स्वरान्तर होता है। किन्तु यदि तानपूरे का प्रथम-तार मध्यम में मिला हो तो कोमल-निषाद 320 x 4/3 = 426 $^{2}/_{3}$ (426 $^{2}/_{3}$ x $^{1}/_{240}$ =) $^{16}/_{9}$ के स्वरान्तर का होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरान्तर निकालने की विधिः– जिन दो स्वरों का पारस्परिक स्वरान्तर ज्ञात करना हो इसके लिए दोनों स्वरों की आन्दोलन संख्याओं अथवा वीणा पर दोनों स्वरों की लम्बाई को लिख लें। यहाँ यह ध्यान रहे कि बड़ी संख्या को ऊपर लिखना होगा और छोटी संख्या को नीचे। अब उसे गणित के नियमानुसार संक्षिप्त करें। इससे स्वरान्तर भिन्नांक में प्राप्त हो जाएगा।

यह पारस्परिक स्वरान्तर किन्हीं भी दो स्वरों में ज्ञात किया जा सकता है। जैसे मध्यम और गान्धार की आन्दोलन संख्याएँ क्रमशः 320 व 300 है जिनका भिन्नांक ($^{320}/_{300} =$)$^{16}/_{15}$ है यही उन दोनों स्वरों का स्वरान्तर होगा।

ऊपर दिए गए स्वरान्तरों को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– (1) अति इष्ट स्वरान्तर, (2) इष्ट स्वरान्तर, (3) अनिष्ट स्वरान्तर और (4) अति अनिष्ट स्वरान्तर।

1. अति इष्ट स्वरान्तरः– प्राचीन ग्रन्थों में इसके अन्तर्गत षड्ज-पञ्चम और षड्ज-मध्यम संवाद कहा गया है। विश्व में सभी स्थानों पर इसे एक मत से माना जाता है। पाश्चात्य संगीत में इसके अतिरिक्त समान स्वरों की दो ध्वनियों में 'यूनिसन-इण्टरवल' मानते हैं और सप्तकान्तर को भी स्वीकार करते हैं जिसे 'आक्टिव-इण्टरवल' कहते हैं। इस प्रकार वे इन चारों अन्तरालों को मानते है और इन्हें 'परफेक्ट-इण्टरवल (Perfect Interval)' कहते हैं। सामान्यतः 'आक्टिव-इण्टरवल' पुरुष एवं महिला के एक साथ गाने पर होता है।

2. इष्ट-स्वरान्तरः– षड्ज और शुद्ध-गान्धार, षड्ज और शुद्ध-धैवत में जो स्वरान्तराल है उसे 'मेजर-थर्ड' तथा 'मेजर-सिक्स्थ' इण्टरवल कहते हैं। षड्ज और कोमल-गान्धार को 'माइनर-थर्ड' इण्टरवल तथा षड्ज और कोमल-धैवत के अन्तराल को 'माइनर-सिक्स्थ' इण्टरवल कहते हैं। यह स्वरान्तराल अति-इष्ट स्वरान्तर से कुछ कम स्तर का होता है लेकिन कानों को सुनने में कटु नहीं लगता इसलिए इन चार स्वरान्तरों को इष्टस्वरान्तर कहा जाता है। अति इष्ट और इष्ट इण्टरवल का प्रयोग मुख्यतः पाश्चात्य संगीत के हार्मोनी में किया जाता है।

3. अनिष्ट-स्वरान्तरालः– चार श्रुति के तथा तीन श्रुति के स्वरान्तर जो कि क्रमशः मेजर-टोन और माइनर-टोन कहे जाते हैं जिसका भिन्नांक $^{9}/_{8}$ तथा $^{10}/_{9}$ होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनका स्वरान्तर कानों को मधुर नहीं लगता अतः ऐसे अन्तरालों को अनिष्ट अन्तराल वाले स्वरान्तर माना जाता है। प्राकृतिक ग्राम (Natural Scale) के षड्ज-ऋषभ, मध्यम-पंचम, धैवत-निषाद में चार श्रुति का अन्तराल है। ऋषभ-गान्धार और पंचम-धैवत में तीन श्रुति का अन्तराल है। रागेश्वरी, बागेश्वरी आदि रागों के षड्ज-ऋषभ में तीन श्रुति का अन्तराल होने के कारण $^{10}/_{9}$ का अनिष्ट-स्वरान्तर होगा।

4. अतिअनिष्ट-स्वरान्तरः– यह दो श्रुति का स्वरान्तर है। षड्ज-कोमल ऋषभ और षड्ज-मन्द्र शुद्ध निषाद में यह अन्तराल होता है। इसे अर्धस्वरान्तर कहते हैं। इसका भिन्नांक $^{16}/_{15}$ है। उपरोक्त स्वरान्तरों के अतिरिक्त पाश्चात्य संगीत में डिमनिष्ड-इण्टरवल (Diminished Interval) और ऑगमेण्टेड-इण्टरवल (Augmented Interval) भी होते है जो किसी स्वरान्तर में से भी सेमी टोन के क्रमशः घटाने और जोड़ने से प्राप्त किए जाते हैं। जैसे षड्ज-पंचम स्वरान्तर में अर्ध स्वरान्तर को घटा कर षड्ज-तीव्रमध्यम अन्तराल प्राप्त किया जा सकता है और षड्ज-धैवत अन्तराल में एक अर्ध स्वरान्तर को जोड़ने से षड्ज-कोमल निषाद का स्वरान्तर प्राप्त किया जा सकता है। स्वरान्तरों में जितने छोटे अन्तरालों का प्रयोग अधिकता से होता है, रागों में उतनी ही चञ्चलता दिखाई देती है। ये राग स्त्री-राग या रागिनी कहलाते हैं और इसके विपरीत यदि बड़े स्वरान्तरों का प्रयोग होता है तो राग में गम्भीरता होगी और वह पुरुष-राग होगा।

राग-रागिनी वर्गीकरण में मालकौंस, हिण्डोल, मेघ आदि सभी रागों में अर्ध-स्वरान्तर का प्रयोग नहीं हुआ है। कम से कम चार श्रुतियाँ $^{9}/_{8}$ और षड्ज से कोमल-गान्धार $^{6}/_{5}$ वाला अन्तराल ही प्रयुक्त होता है जो कि बड़ा स्वरान्तराल है। हिण्डोल में तो षड्ज से शुद्ध-गान्धार का स्वरान्तर $^{5}/_{4}$ और भी बड़ा है। केवल भैरव में षड्ज से कोमल-ऋषभ, गान्धार-मध्यम, पञ्चम-धैवत व निषाद-षड्ज में अर्ध- स्वरान्तराल है। इसके विषय में यह कहा जा सकता है कि संगीत रत्नाकर का भैरव तो ऋषभ-पंचम वर्जित, शेष पाँच स्वरों का भैरव था (सं.र.-2, पृ.-71)। मध्य युग में जब राग-रागिनी वर्गीकरण प्रचार में था उस समय भैरव के स्वर वर्तमान वाले थे या नहीं, यह शोध का विषय है। यदि वर्तमान वाले स्वर ही भैरव के स्वर रहे होंगे तो सम्भवतः कोमल ऋषभ-गान्धार और कोमल धैवत-निषाद का बड़ा अन्तराल ($^{300}/_{256}$ =) $^{75}/_{64}$ का है, जिसका अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग होता होगा क्योंकि पुरुष-राग में बड़े अन्तराल ही अधिक प्रयोग में आते है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुद्ध विकृत स्वर और ग्राम

वार्तालाप करते समय जब कोई व्यक्ति अपने भावों को भाषा द्वारा व्यक्त करता है तो हम देखते हैं कि वह किसी शब्द को धीरे से, किसी को अपेक्षाकृत ज़ोर से बोलता है। भय या क्रोध में तो इसकी आवाज़ की तारता काफ़ी ऊँची हो जाती है पर सामान्यतः पूरे समय एक निश्चित तारता में वार्तालाप होता है। यह निश्चित तारता संगीत की भाषा में स्वरित या ड्रोन (ध्व.सं., पृ.-77) कहलाती है। संगीत में गाते बजाते समय एक आधार-स्वर होता है और उल्लेखनीय है कि किसी राग में रागानुसार विभिन्न तारताओं के स्वरों (ध्वनियों) का प्रयोग किया जाता है। ये ऊपर-नीचे होने वाली ध्वनियाँ ही स्वर कहलाती हैं।

आधार-स्वर से इन स्वरों की कितनी ऊँचाई हो यह गले या कान से सम्बन्धित होने के कारण पूरे विश्व में लगभग नियत है। आधार-स्वर (षड्ज) से दुगुनी ऊँची तारता की जो ध्वनि होगी वह आधार-स्वर की ही ध्वनि होती है जिसे संगीत की भाषा में अलग नाम न देकर 'तार-षड्ज' कहा जाता है। विश्व के सभी देशों में प्राचीन काल से अब तक मध्य-षड्ज से तार-षड्ज के बीच कुल छह सीढ़ियाँ ही मानी गई हैं। प्रथम को भी सम्मिलित करने पर ये कुल सात हो जाती हैं। यही सात-स्वर हैं। इन क्रमानुसार ऊँची होती जाने वाली ध्वनियों को संगीत की भाषा में-षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद कहा जाता है। इनके संक्षिप्त नाम सा, रे, ग, म, प, ध और नि है। पाश्चात्य-पद्धति में इन्हीं को सी, डी, ई, एफ़, जी, ए, बी कहा जाता है। सोल्फ़ा-पद्धति में डो, रे, मी, फ़ा, सोल, ला, सी (टी) कहा जाता है। आगे सारिणी में इन तीनों को एक साथ दिया जा रहा हैः–

क्रम	स्वर नाम	स्वर						
1-	शास्त्रीय नाम	षड्ज	ऋषभ	गान्धार	मध्यम	पंचम	धैवत	निषाद
2-	संक्षिप्त नाम	सा	रे	ग	म	प	ध	नि
3-	आन्दोलन संख्या	240	270	300	320	360	405	450
4-	श्रुतियाँ	4	3	2	4	4	3	2
5-	अन्तराल	गुरुस्वर	लघुस्वर	अर्धस्वर	गुरुस्वर	गुरुस्वर	लघुस्वर	अर्धस्वर
6-	भिन्नांक	9/8	10/9	16/15	9/8	9/8	10/9	16/15
7-	सेवर्ट	51	46	28	51	51	46	28
8-	सेण्ट	204	182	112	204	204	182	112

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रम	स्वर नाम	स्वर						
1-	पाश्चात्य नाम	सी	डी	ई	एफ	जी	ए	बी
2-	आन्दोलन संख्या	240	270	300	320	360	400	450
3-	अन्तराल	मेजरटोन	माइनरटोन	सेमीटोन	मेजरटोन	माइनरटोन	मेजरटोन	सेमीटोन
4-	सेवर्ट	51	46	28	51	46	51	28
5-	सेण्ट	204	182	112	204	182	204	112
6-	सोल्फा पद्धति के नाम	डो	रे	मी	फा	सोल	ला	सी(टी)

नोटः- सोल्फा पद्धति के स्वरों की आन्दोलन संख्या, सेवर्ट, सेण्ट इत्यादि पाश्चात्य पद्धति के अनुसार ही होंगे।

स्वरों की ऊँचाई नापने के लिए गणना आधार स्वर या स्वरित से की जाती हैं जैसे-किसी पहाड़ की ऊँचाई या समुद्र की गहराई, समुद्र-तल से या किसी मकान की ऊँचाई अथवा कुएँ की गहराई पृथ्वीतल से मापी जाती है। उसी प्रकार संगीत में स्वरित से ही अन्य स्वरों की ऊँचाई मापी जाती हैं। स्वरों को नापने के लिए प्राचीन-काल में श्रुति ही माध्यम था, अतः तब चार श्रुति का स्वर, तीन श्रुति का स्वर और दो श्रुति का स्वर कहकर स्वरों का पारस्परिक अन्तराल निर्धारित किया जाता था। मध्यकाल में वीणा पर स्वरों की स्थापना पं. अहोबल, हृदय-नारायण देव और पं. श्रीनिवास ने की है। इस प्रकार उन्होंने इन स्वरान्तरालों को श्रव्य के साथ-साथ दृष्यमान भी कर दिया जिससे इन स्वरों की तारता निश्चित हो गई। कुछ विद्वानों के अनुसार प्राचीन ग्रन्थकारों के स्वरों में अभी तक मतैक्य नहीं है।

ऊपर दी गई सारिणी को देखने से ज्ञात होता है कि सात स्वरों में तीन प्रकार के अन्तराल ही प्रयोग में आए हैं जिन्हें गुरु-स्वर, लघु-स्वर और अर्ध-स्वर कहा गया है। पाश्चात्य नाम मेजरटोन, माइनर टोन व सेमीटोन हैं। चार श्रुति, तीन श्रुति और दो श्रुति के स्वर ये प्राचीन नाम हैं। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि स्वर का अर्थ तारता और अन्तराल दोनों ही है। प्राचीन नामों में चार श्रुति का स्वर, तीन श्रुति का स्वर और दो श्रुति का स्वर से तात्पर्य अन्तराल से था। इनके समकक्ष मेजर टोन, माइनर टोन और सेमीटोन या गुरु-स्वर, लघु-स्वर और अर्ध-स्वर भी अन्तराल के द्योतक हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जब षड्ज 240 आन्दोलन का कहा जाता है तब वह केवल तारता को ही प्रदर्शित करता है इसलिए उसे अन्तराल नहीं कहा जाएगा। अँग्रेज़ी में टोन (Tone) और नोट (Note) ये दो शब्द हैं जो अन्तराल व तारता के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।

भरत, मतंग तथा शार्ङ्गदेव आदि सभी प्राचीन ग्रन्थकार मुख्यतः 4, 3, और 2 श्रुतियों के तीन ही स्वर मानते हैं, क्योंकि ये तीन अन्तराल ही बार-बार प्रयुक्त होते हैं। भारतीय प्राचीन ग्राम हो या पाश्चात्य प्राकृतिक-ग्राम (Natural Scale), बिलावल हो या अहोबल का शुद्ध-सप्तक सैन्धव सभी में केवल इन्हीं तीन अन्तरालों का प्रयोग हुआ है। केवल उनके क्रम में अन्तर होता है। इसलिए भरतादि केवल तीन ही स्वर मानते हैं। यहाँ केवल एक सप्तक या स्थान की बात की गई है। इसके ऊपर व नीचे दोनों ओर मनुष्य के कण्ठ की आवाज़ का विस्तार होता है। इसलिए आरम्भ से तीन ही सप्तकों का उल्लेख मिलता है। हालाँकि तीन से अधिक सप्तकों तक भी किसी की आवाज़ का विस्तार हो सकता है। वाद्यों में तो सात सप्तकों तक का उपयोग किया जाता है। पियानों में इसीलिए सात सप्तक होते हैं। विदित हो कि हमारे कान की सीमा ग्यारह सप्तक तक सुनने की होती है।

ऊपर दिए गए तीन स्वर अन्तरालों को आगे-पीछे करके अनेक ग्राम (Scale) बनाए जा सकते हैं। जब किसी ग्राम के एक या अनेक स्वरों में परिवर्तन किया जाता है तो वह दूसरा ग्राम हो जाता है। षड्ज-ग्राम का पंचम एक श्रुति उतरने से मध्यम-ग्राम बन जाता है। इन दोनों ग्रामों के पंचमों में पाँच सेवर्ट का अन्तर है जिसे भिन्नांक में 81/80 का अन्तराल कहते हैं। यही सूक्ष्म अन्तराल 'कोमा' या प्रमाण-श्रुति है।

भरत ने स्वरों को शुद्ध नहीं कहा अर्थात् तब तक षड्ज-ग्राम व मध्यम -ग्राम ये दोनों ही समान महत्त्व रखते होंगे। शार्ङ्गदेव ने षड्ज-ग्राम के स्वरों को शुद्ध-स्वर कहा है, इसलिए मध्यम-ग्रामिक पञ्चम को विकृत-स्वरों में गिना है (सं.र.-1, पृ. -89)। मध्य युग में अहोबल, श्रीनिवास आदि के समय में केवल षड्ज-ग्राम ही प्रचार में रह गया था इसलिए विकृत स्वरों के प्रयोग से अनेक मेल या थाट बनाए गए। प्राचीन काल में यही कार्य मूर्च्छना से लिया जाता था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विकृत-स्वरः- शुद्ध-सप्तक में प्राप्त सबसे छोटे अन्तराल को अन्य स्वरों में जोड़ या घटा कर विकृत-स्वरों की प्राप्ति की जाती है, जैसे-बिलावल में गान्धार-मध्यम या निषाद-तार षड्ज का अन्तराल सबसे छोटा है, जिसका अन्तराल $^{16}/_{15}$ है। अब इसे किसी स्वर में जोड़ने से, जैसे षड्ज की आन्दोलन-संख्या 240 है और इसमें $^{16}/_{15}$ को जोड़ते हैं तो ($240 \times {}^{16}/_{15} =$)256 हुआ, यही कोमल-ऋषभ है। इसी प्रकार शुद्ध-ऋषभ जिसकी आन्दोलन संख्या 270 है और इसमें $^{16}/_{15}$ जोड़ने पर 288 होगा, जो कोमल-गान्धार होता है। ठीक इसी रीति से कोमल-धैवत व कोमल-निषाद भी निकाले जा सकते हैं। यदि इस अर्ध-स्वर के अन्तराल ($^{16}/_{15}$) को जोड़ने के स्थान पर घटाया जाए तो अलग प्रकार के विकृत-स्वर प्राप्त किए जा सकेंगे, जैसे- शुद्ध-ऋषभ की आन्दोलन-संख्या 270 है, उसमें से $^{16}/_{15}$ घटाने पर ($270 \div {}^{16}/_{15} = 270 \times {}^{15}/_{16} =$) $253\ ^{1}/_{8}$ होगा जो कोमल-ऋषभ है। यह कोमल-ऋषभ 256 आन्दोलन वाले कोमल-ऋषभ से थोड़ा सा उतरा हुआ है।

उत्तरी संगीत के रागों में शुद्ध-ऋषभ के बाद कोमल-ऋषभ प्रयोग में नहीं आता है अतः इस ऋषभ ($253\ ^{1}/_{8}$) का उपयोग नहीं है। षड्ज से तो कोमल-ऋषभ पर जाते ही हैं अतः 256 आन्दोलनों का कोमल-ऋषभ व्यवहार में है। अर्ध-स्वर के जोड़ने व घटाने से सभी स्वरों के भिन्न-आवृत्ति के विकृत-स्वर प्राप्त किए जा सकते हैं। चार श्रुति या गुरु-स्वर में से अर्ध-स्वर घटाने पर ($^{9}/_{8} \div {}^{16}/_{15} = {}^{9}/_{8} \times {}^{15}/_{16} =$) $^{135}/_{128}$ आता है जो नया अन्तराल है। इसे 'लीमा' कहा जाता है, जिसके (51-28 =) 23 सेवर्ट होते हैं। लघु-स्वर में से अर्ध-स्वर घटाने पर ($^{10}/_{9} \div {}^{16}/_{15} = {}^{10}/_{9} \times {}^{15}/_{16} =$) $^{25}/_{24}$ प्राप्त होता है। इसे 'लघु-अर्ध स्वर' कहते हैं। इसका माप (46-28 =) 18 सेवर्ट होता है। गुरु-स्वर में से लघु-स्वर घटाने पर ($^{9}/_{8} \div {}^{10}/_{9} = {}^{9}/_{8} \times {}^{9}/_{10} =$) $^{81}/_{80}$ मिलता है यही 'कोमा' या 'प्रमाण-श्रुति' है। इसके पाँच (51-46=5) सेवर्ट होते हैं। इस प्रकार अर्ध-स्वर से भी छोटे तीन अन्य अन्तराल प्राप्त हुए। (क) $^{135}/_{128}$, (ख) $^{25}/_{24}$ और (ग) $^{81}/_{80}$ इन छोटे अन्तरालों को मुख्य स्वरों में जोड़ने व घटाने से अनेक सूक्ष्म विकृत-स्वर भी प्राप्त हो सकते हैं। शायद यही कोहल आदि द्वारा कही गई अनन्त श्रुतियाँ होंगी। प्रबुद्ध गायक-वादक इन सूक्ष्म-स्वरों के प्रयोग से रागों को प्रभावी बनाते हैं। वैसे सूक्ष्म-स्वरों का व्यवहार घटता जा रहा है और अब शास्त्रीय-संगीत में हारमोनियम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का प्रचलन हो जाने से तो सूक्ष्म-स्वरों का मार्ग ही अवरुद्ध हो गया है। वर्तमान थाट-प्रणाली में 'अति गुरु-स्वर' का भी प्रयोग होता है। भैरव और पूर्वी के कोमल-ऋषभ और शुद्ध-गान्धार का जो अन्तराल है, कोमल-धैवत और निषाद में भी वही अन्तराल है। इसका मान 75/64 है। मारवा के कोमल-ऋषभ और गांधार में, तोड़ी के कोमल-गान्धार और तीव्र-मध्यम में तथा कोमल-धैवत और निषाद में इस 'अति गुरु-स्वर' का प्रयोग हुआ है।

मूर्च्छना-प्रणाली में इस अन्तराल का प्रयोग नहीं होता था। किसी स्वर को वर्जित करके लंघन द्वारा तो इससे भी बड़े अन्तराल का प्रयोग किया जा सकता था। किन्तु विशेष रीति से अति गुरु-स्वर 75/64 का अन्तराल मूर्च्छना-पद्धति में विकृत-स्वर, जैसेः- अन्तर गान्धार और काकली-निषाद के स्वरों को शुद्ध स्वरों के साथ प्रयोग करके मारवा, पूर्वी और तोड़ी थाट भी प्राप्त किए जा सकते हैं। मारवा-थाट के लिए मन्द्र-निषाद को 'सा', काकली-निषाद को 'रे॒', शुद्ध ऋषभ को 'ग', अन्तर गान्धार को 'मॅ', मध्यम को 'प', पंचम को 'ध' और धैवत को 'नि' मानने पर मारवा-थाट के स्वर प्राप्त हो जाएँगे। मारवा-थाट के ही स्वर षड्ज-ग्राम के गान्धार से आरम्भ करके प्राप्त किए जा सकते हैं। जैसेः- गान्धार को 'सा', अन्तर गान्धार को 'रे॒', पंचम को 'ग', धैवत को 'मॅ', निषाद को 'प', षड्ज को 'ध', ऋषभ को 'नि' मानने से भी मारवा-थाट के स्वर प्राप्त हुए।

पूर्वी-थाट के लिए मारवा के शुद्ध-धैवत के स्थान पर कोमल-धैवत जो कि काकली-निषाद पर प्राप्त होगा, को लेना होगा। तोड़ी-थाट के स्वरों को प्राप्त करने के लिए अन्तर गान्धार से आरम्भ करना होगा, अन्तर-गान्धार को 'सा', मध्यम को 'रे॒', पंचम को 'ग॒', निषाद को 'मॅ', काकली-निषाद को 'प', षड्ज को 'ध॒', गान्धार को 'नि' मानने से तोड़ी-थाट के स्वर मूर्च्छना-पद्धति में भी प्राप्त किए जा सकते हैं, केवल भैरव-थाट के स्वर मूर्च्छना-पद्धति में नहीं प्राप्त होते।* आगे सारिणी में मारवा, पूर्वी और तोड़ी के स्वर मूर्च्छना-प्रणाली में दिखाए जा रहे हैं।

(*- यद्यपि आचार्य बृहस्पति[1] ने मूर्च्छना प्रणाली में भैरव के भी स्वर सिद्ध किए हैं परन्तु हम इनसे असहमत हैं।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारिणी

	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17
षड्ज ग्राम के स्वर	सा	रे	ग	अं. ग	म	प	ध	नि	का. नि	सां	रें	गं	अं ग	मं	पं	धं	निं
मारवा के स्वर								सा	रे॒		ग		म॑	प	ध	नि	
मारवा के स्वर			सा	रे॒		ग	म॑	प		ध	नि						
पूर्वी के स्वर			सा	रे॒		ग	म॑	प	ध॒		नि						
तोड़ी के स्वर			सा	रे॒	ग॒		म॑	प	ध॒		नि						

आगे अर्धस्वर या semitone से भी छोटे अन्तरालों को छोटे से बड़े क्रमानुसार इनके माप भिन्नांक, सेवर्ट व सेण्ट प्रणाली के अनुसार दिए जा रहे हैं:–

क्रम	नाम	भिन्नांक	सेवर्ट	सेण्ट
1-	कोम	81/80	5	22
2-	लघु-अर्ध-स्वर	25/24	18	70
3-	लीमा	256/243	23	90
4-	पूरक-अर्ध-स्वर	135/128	23.1	92
5-	अर्ध-स्वर	16/15	28	112

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के दस थाट

ग्राम मूर्च्छना पद्धति के दुर्बोध होने पर मध्य युग में स्वर साम्य के आधार पर राग वर्गीकरण प्रचार में आया। सर्वप्रथम विजय नगर के मन्त्री माधवाचार्य विद्यारण्य ने 1336 में तत्कालीन उपलब्ध 50 रागों को 15 मेलों में समान स्वरों के आधार पर वर्गीकृत किया। विजय नगर के ही रामामात्य ने 'स्वर मेल कलानिधि' में 20, सोमनाथ ने 'राग-विबोध' में 23, और व्यंकटमखी ने 'चतुर्दण्डी प्रकाशिका' में अधिकतम 72 मेल बनाने की विधि देकर 19 मेल स्वीकार किए। उत्तरी संगीत में कवि-लोचन और ह्यदयनरायणदेव ने 12 संस्थानों (मेलों) में 75 रागों को स्वर साम्य के आधार पर वर्गीकृत किया। पुण्डरीक विठ्ठल ने 'सद्राग चन्द्रोदय' में 19 और 'राग मंजरी' में 20 मेल स्वीकार किए है। भावभट्ट ने 'अनूप संगीत रत्नाकर' में 20 मेल माने हैं। मेलों की संख्या श्रीकण्ठ ने 'रस कौमुदी' में 11 मानी है। भातखण्डे जी ने उत्तरी-संगीत के लिए अधिकतम 32 मेलों या थाटों में से 10 मेल ही प्रयोग में स्वीकार किए हैं।

ठाठ शब्द से ही ठाट या थाट बना है। थाट शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सोमनाथ ने राग विबोध में किया है। थाट पद्धति वर्गीकरण का अर्थ भी स्वर साम्य के आधार पर रागों का वर्गीकरण होता है यानी समान स्वरों वाले राग एक वर्ग में रखे जाते हैं। इसी को जन्य जनक पद्धति भी कहते हैं। किसी स्वर के परिवर्तन के साथ ही थाट भी बदल जाता है। जैसे शुद्ध स्वरों वाले सभी राग बिलावल थाट के अन्तर्गत रखे जाते हैं। शुद्ध-मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम के प्रयोग से बिलावल के स्थान पर वो थाट, कल्याण हो जाएगा क्योंकि कल्याण थाट में तीव्र मध्यम होता है।

थाट शब्द सितार आदि पर्दे वाले वाद्यों से सम्बन्धित हैं। जो राग बजाना होता है उससे पहले उस राग विशेष के लिए पर्दों को खिसका कर प्रयुक्त होने वाले स्वरों को, स्थापित करना होता है। यही ठाठ बाँधना कहलाता है। ठाठ का अर्थ है ढाँचा या फ्रेम। ठाठ तैयार होने पर उस ठाठ में प्रयुक्त स्वरों से सम्बन्धित सभी राग बजाए जा सकते हैं यानी निश्चित स्वरों वाले रागों का ढाँचा बन जाने पर बिना पर्दों को इधर-उधर किए हुए उन्हीं समान स्वरों वाले राग बज सकते हैं। सरस्वती-वीणा आदि पर स्थिर पर्दे होते हैं इसलिए ऐसे वाद्यों को अचल ठाठ वाले वाद्य कहा जाता है। जिन वाद्यों में पर्दे खिसकाने पड़ते हैं उन्हें चल ठाठ वाले वाद्य कहा जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दस थाट- पं. भातखण्डे जी ने व्यंकटमखी के 72 मेलों में से हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति के लिए उपयुक्त दस थाट स्वीकार किए उन्ही के शब्दों में-

द्विसप्ततिमेलकेषु त्यक्त्वाताननवश्यकान्।
स्वीकुर्मो दशसंङ्ख्यांन्स्तान् लक्ष्यवर्त्मनि विश्रुतान्।। (श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् पृ.-113)

अर्थात् शास्त्र ग्रन्थों में निर्दिष्ट 72 मेलों में जो मेल अनावश्यक है, उन्हें छोड़ कर हम प्रचलित संगीत में सुप्रसिद्ध दस मेलों को स्वीकार करते हैं जो निम्नलिखित हैं– कल्याण, बिलावल, खमाज, भैरव, भैरवी, काफी, आसावरी, मारवा, पूर्वी और तोड़ी। सबसे पहले इन थाटों का चयन किसने किया? इस विषय में भी माना जाता है कि भातखण्डे जी ने ही सर्वप्रथम इन्हें निश्चित किया। पर आचार्य बृहस्पति का कहना है कि रामपुर के पुस्तकालय में प्राप्त सादिक् अली की 'सरमाय-ए-इशरत' नाम की पुस्तक जो सन् 1858 ई. में लिखी गई है, उसमें इन्हीं दस थाटों का उल्लेख (सं. चि.द्वि.सं.,पृ.-360) सबसे पहले मिलता है। सरमाय-ए-इशरत' का उल्लेख भातखण्डे जी ने भी किया है (भात.सं.शा.भाग-3,पृ.-133) अतः यह कहा जा सकता है कि कदाचित् भातखण्डे जी को इन दस थाटों का विचार इसी पुस्तक से मिला होगा। जो भी हो लेकिन इनका प्रचार तो निश्चित रूप से भातखण्डे जी ने ही किया है।

दस थाटों की वैज्ञानिकता- भातखण्डे जी ने तो केवल इतना ही कहा कि व्यंकटमखी के 72 मेलकर्ताओं में से हिन्दुस्तानी-पद्धति के लिए यही दस थाट उपयुक्त हैं। आगे चलकर प्रो. ललित किशोर सिंह जो स्वयं भौतिक-शास्त्र के ज्ञाता थे, ने ध्वनि और संगीत में इन दस थाटों पर ध्वनि-विज्ञान के नियमों के अनुसार इनकी वैज्ञानिकता पर विशद् विचार किया और यह सिद्ध किया कि केवल यही दस थाट 72 मेलों में से वैज्ञानिक नियमों पर खरे उतरते हैं। यहाँ इसी बिन्दु पर कुछ विचार किया जाएगा।

थाट या मेल बनाने के छह नियम (ध्व.सं.,पृ.-233):-

(1) सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वरों में से थाट के लिए सात स्वर क्रमानुसार होने चाहिए।

(2) प्रत्येक थाट में षड्ज, पंचम के अतिरिक्त दोनों मध्यमों में से किसी एक का होना आवश्यक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(3) रे॒ रे ग॒ ग ध॒ ध नि॒ नि में से दो पूर्वांग और दो उत्तरांग में होने चाहिए।

(4) स्वरों के शुद्ध और विकृत प्रकारों में से किसी एक का होना आवश्यक है।

(5) उस थाट में प्रत्येक स्वर का 'षड्ज-मध्यम' या 'षड्ज-पंचम' संवाद होना आवश्यक है।

(6) तीव्र-मध्यम के साथ शुद्ध-निषाद तथा साथ ही कोमल-ऋषभ या शुद्ध-गान्धार का होना अति आवश्यक है।

पहले तीन नियम दक्षिणी-संगीत के बहत्तर मेलों के लिए हैं और सभी छह नियम उत्तरी-संगीत के दस थाटों के लिए माने गए हैं। आरम्भ के तीन नियम यदि छोड़ भी दिए जाएँ तो शेष तीन नियमों के पालन करने मात्र से दस थाटों की प्राप्ति हो सकती है।

चूँकि प्रारम्भ के तीन नियम शेष तीन नियमों में समाहित हैं इसलिए यहाँ केवल अन्तिम तीन नियमों पर वैज्ञानिकता की दृष्टि से विचार किया जा रहा है:-

1- चौथे नियम के अनुसार शुद्ध और विकृत रूपों में से किसी एक का होना चाहिए। जब शुद्ध और विकृत में से कोई एक ही स्वर प्रयोग किया ज़ाएगा तो स्वर संयोजन स्वतः क्रमानुसार हो जाएगा। दक्षिणी-संगीत में भी इस नियम का पालन किया जाता है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि वहाँ ऋषभ, धैवत और कोमल-गान्धार, कोमल-निषाद इन चार स्वरों के दो-दो नाम प्रचार में है। शुद्ध 'ऋषभ-धैवत' को कर्नाटकी संगीत में शुद्ध 'गांधार-निषाद' या पञ्चश्रुतिक ऋषभ-धैवत भी कहा जाता है। कोमल-गान्धार को साधारण-गांधार या षटश्रुतिक-ऋषभ और कोमल-निषाद को कैशिक-निषाद या षटश्रुतिक-धैवत कहा जाता है। इसलिए भिन्न नाम होने के कारण इन चार स्वरों को आठ नामों से पुकारने पर 72 मेल तैयार हो जाते हैं जबकि हमारे यहाँ केवल 32 मेल ही हो पाते हैं।

यहाँ संक्षेप में 72 और 32 थाट बनाने की विधि दी जा रही है :-

प्रारम्भ में सुविधा के लिए दो मध्यमों में से एक को छोड़ कर उसके स्थान पर तार-षड्ज को लेना होगा अतः सात के स्थान पर आठ स्वरों को लेने से सप्तक, अष्टक में परिवर्तित हो जाएगा। इस अष्टक के दो भाग पूर्वांग और उत्तरांग करने होंगे। पूर्वांग में अर्धमेल के अधिक से अधिक छह प्रकार बनेंगे जैसे- (1) सा रे॒ रे म, (2) सा रे॒ ग॒ म, (3) सा रे॒ ग म, (4) सा रे ग॒ म, (5) सा रे ग म, (6) सा ग॒ ग म।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार उत्तरांग के भी छह प्रकार बनेंगे। जैसे- (1) प ध॒ ध सां, (2) प ध॒ नि॒ सां, (3) प ध॒ नि सां, (4) प ध नि॒ सां, (5) प ध नि सां, (6) प नि॒ नि सां।

प्रत्येक पूर्वांग के अर्धमेल के साथ उत्तरांग के छहों प्रकारों को क्रमशः जोड़ने से कुल छह पूर्णमेल तैयार हो जाएँगे। इसी प्रकार पूर्वांग के दूसरे क्रम (सा रे॒ ग॒ म) के साथ भी उत्तरांग के सभी अर्ध मेलों को बारी-बारी जोड़ने से अन्य छह पूर्णमेल तैयार हो जाएँगे। इसी प्रकार प्रत्येक पूर्वांग के साथ उत्तरांग के अर्धमेलों को मिलाने से (6x6=)36 पूर्णमेल हुए जिनमें शुद्ध-मध्यम का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार शुद्ध-मध्यम के स्थान पर यदि तीव्र-मध्यम का प्रयोग किया जाए तो छत्तीस और मेल बन सकेंगे, यही दक्षिण के बहत्तर मेल हैं। आगे तालिका में बहत्तर मेल दिखाए जा रहे हैं-

पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध से छत्तीस थाट

1								
1	सा	रे॒	रे	म	प	ध॒	ध	सां
2	सा	रे॒	रे	म	प	ध॒	नि॒	सां
3	सा	रे॒	रे	म	प	ध॒	नि	सां
4	सा	रे॒	रे	म	प	ध	नि॒	सां
5	सा	रे॒	रे	म	प	ध	नि	सां
6	सा	रे॒	रे	म	प	नि॒	नि	सां

2								
7	सा	रे॒	ग॒	म	प	ध॒	ध	सां
8	सा	रे॒	ग॒	म	प	ध॒	नि॒	सां
9	सा	रे॒	ग॒	म	प	ध॒	नि	सां
10	सा	रे॒	ग॒	म	प	ध	नि॒	सां
11	सा	रे॒	ग॒	म	प	ध	नि	सां
12	सा	रे॒	ग॒	म	प	नि॒	नि	सां

3								
13	सा	रे॒	ग	म	प	ध॒	ध	सां
14	सा	रे॒	ग	म	प	ध॒	नि॒	सां
15	सा	रे॒	ग	म	प	ध॒	नि	सां
16	सा	रे॒	ग	म	प	ध	नि॒	सां
17	सा	रे॒	ग	म	प	ध	नि	सां
18	सा	रे॒	ग	म	प	नि॒	नि	सां

4								
19	सा	रे	ग॒	म	प	ध॒	ध	सां
20	सा	रे	ग॒	म	प	ध॒	नि॒	सां
21	सा	रे	ग॒	म	प	ध॒	नि	सां
22	सा	रे	ग॒	म	प	ध	नि॒	सां
23	सा	रे	ग॒	म	प	ध	नि	सां
24	सा	रे	ग॒	म	प	नि॒	नि	सां

5								
25	सा	रे	ग	म	प	ध॒	ध	सां
26	सा	रे	ग	म	प	ध॒	नि॒	सां
27	सा	रे	ग	म	प	ध॒	नि	सां
28	सा	रे	ग	म	प	ध	नि॒	सां
29	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
30	सा	रे	ग	म	प	नि॒	नि	सां

6								
31	सा	ग॒	ग	म	प	ध॒	ध	सां
32	सा	ग॒	ग	म	प	ध॒	नि॒	सां
33	सा	ग॒	ग	म	प	ध॒	नि	सां
34	सा	ग॒	ग	म	प	ध	नि॒	सां
35	सा	ग॒	ग	म	प	ध	नि	सां
36	सा	ग॒	ग	म	प	नि॒	नि	सां

इन सभी में केवल शुद्ध-मध्यम का प्रयोग किया गया है यदि शुद्ध-मध्यम के स्थान पर तीव्र-मध्यम का प्रयोग करें तो इसी प्रकार 36 अन्य नवीन थाट बन जाएँगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस सारिणी के पहले और छठे क्रम को यदि छोड़ दिया जाए तो मध्य के चार प्रकारों से (4x4=)16 शुद्ध-मध्यम के और 16 ही तीव्र-मध्यम के कुल 32 उत्तरी-संगीत के थाट बनेंगे। यहाँ इन अर्धमेलों का क्रम भैरवी, भैरव, काफ़ी और बिलावल है। यदि यह क्रम बिलावल, भैरव, काफ़ी और भैरवी कर लिया जाए तो समझने में और सुविधा होगी।

हिन्दुस्तानी पद्धति के 32 थाट एक नवीन-विधि से भी प्राप्त किए जा सकते हैं। सभी शुद्ध स्वरों से एक थाट प्राप्त होता है। ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत और निषाद के क्रमशः एक-एक विकृत रूप से 5 थाट, दो-दो विकृत रूपों (रे-ग, रे-मं, रे-ध, रे-नि, ग-मं, ग-ध, ग-नि, मं-ध, मं-नि और ध-नि) के प्रयोग से 10 थाट, तीन-तीन विकृत रूपों (रे-ग-मं, रे-ग-ध, रे-ग-नि, रे-मं-ध, रे-मं-नि, रे-ध-नि, ग-मं-ध, ग-मं-नि ग-ध-नि और मं-ध-नि) से पुनः 10 थाट, चार-चार विकृत स्वरों (रे-ग-मं-ध, रे-ग-मं-नि, रे-ग-ध-नि, रे-मं-ध-नि और ग-मं-ध-नि) के प्रयोग से 5 थाट और पाँचों विकृत स्वरों के प्रयोग से एक थाट प्राप्त होगा। इन प्रकार इनकी कुल संख्या (1+5+10+10+5+1=) 32 हुई।

भरतकाल से लेकर आज तक भारतीय-संगीत में कम से कम दो श्रुति के स्वरों को संगीतोपयोगी माना गया है। ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति में गान्धार-निषाद दो श्रुति के स्वर माने गए हैं जिनका गणितीय मान $^{16}/_{15}$ होता है। 'सेवर्ट-प्रणाली' में इन स्वरों को 28 सेवर्ट माना जाता है। 'हेल्महोज़' ने भी यूरोपीय और यूनानी संगीत में छोटे से छोटा अन्तराल $^{16}/_{15}$ स्वीकार किया गया है जो अर्ध-स्वर है।

षड्ज और ऋषभ का अन्तराल चार श्रुति का है। पश्चिम में जिसे 'मेजर-टोन' कहा जाता है।यही भिन्नांक में $^{9}/_{8}$ या सेवर्ट में 51 घटक है जिसके दो भाग करने पर 'सा, रे, रे' में 0, 28, 23 का अन्तराल होता है अब यदि कोमल-ऋषभ और शुद्ध-ऋषभ का प्रयोग किसी एक ही मेल या थाट में किया जाएगा तो इन दोनों का अन्तराल 23 सेवर्ट या ($^{9}/_{8}$ - $^{16}/_{15}$=) $^{135}/_{128}$ का प्रयोग करना होगा*। $^{135}/_{128}$ का अन्तराल वैज्ञानिकता की दृष्टि से दोषपूर्ण है यही स्थिति पंचम, कोमल-धैवत, धैवत की भी है।

* (किसी बड़े स्वरान्तराल में से छोटे अन्तराल को घटाने का लिए छोटे अन्तराल से 'भाग' तथा जोड़ने के लिए 'गुणा' करना होता है।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन श्रुति वाले स्वर का भिन्नांक $^{10}/_{9}$ या 46 सेवर्ट है। दोनों गा़न्धार के प्रयोग से इनका अन्तराल ($^{10}/_{9}$-$^{16}/_{15}$ =) $^{25}/_{24}$ या 46 में से 28 घटाने पर 18 सेवर्ट बचेगा (ध्व.सं.,पृ.- 235), यही स्थिति कोमल नि और शुद्ध नि में भी है। $^{25}/_{24}$ तो और भी छोटा अन्तराल है अतः यह और अधिक दोषपूर्ण है।

कर्नाटकी-संगीत में ऐसे छोटे अन्तराल का प्रयोग हो सकता है पर हिन्दुस्तानी-संगीत के लिए तो कम से कम $^{16}/_{15}$ अन्तराल वाले स्वरों का ही प्रयोग मान्य है। दूसरे शब्दों में कहें तो रे-ध के शुद्ध और विकृत रूपों में 135/128 या 23 सेवर्ट का अन्तराल है। ग-नि के शुद्ध और विकृत रूपों में 25/24 या 18 सेवर्ट का अन्तराल होने के कारण इनका प्रयोग हिन्दुस्तानी संगीत में एक साथ नहीं हो सकता अतः यहाँ थाटों की संख्या 72 के स्थान पर केवल 32 ही हो सकती है।

2- थाट में प्रयुक्त सभी स्वरों का षड्ज-मध्यम या षड्ज-पंचम संवाद किसी स्वर से होना आवश्यक है। भारतीय-संगीत का प्राण संवाद है। यदि किसी थाट में किसी स्वर का संवादी-स्वर नहीं है तो वह थाट नहीं हो सकता। यहाँ यदि हारमोनियम की सहायता ले ली जाए तो बात को समझने में सुविधा होगी।

यदि षड्ज-मध्यम संवाद का परीक्षण करना हो तो सा-म, रे॒-मं, रे-प आदि में से किसी स्वर-युग्म को साथ-साथ दबा कर देखें तो पता चलेगा कि ध्वनि कर्ण-मधुर है। यही सा-म संवाद है। सा-प, रे॒-ध॒, रे-ध, ग॒-नि॒ या ग-नि में से किसी युग्म को दबा कर देखें तो भी संवाद की अनुभूति होगी। षड्ज-मध्यम संवाद के लिए मध्य की चार पटरियों को छोड़ना होगा। षड्ज-पंचम संवाद के लिए छह पटरियों को मध्य में छोड़ना होगा। पटरियों के मध्य चार या छह के अतिरिक्त यदि कोई भी संख्या होगी तो हमें संवाद प्राप्त नहीं होगा। इसी प्रकार दस थाटों में से प्रत्येक का परीक्षण किया जा सकता है।

बिलावल, भैरव, काफ़ी और भैरवी में पूर्वांग के प्रत्येक स्वर के साथ उत्तरांग के स्वर से 'षड्ज-पंचम संवाद' है। खमाज व आसावरी में 'षड्ज-मध्यम संवाद' होता है। तीव्र-मध्यम वाले चारों थाटों में किन्हीं दो स्वरों में 'षड्ज-मध्यम संवाद' व किन्हीं दो स्वरों में 'षड्ज-पंचम संवाद' होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि 32 में से प्रत्येक थाट के स्वरों को संवाद की कसौटी पर कस कर देखा जाए तो पता चलेगा कि दस के अतिरिक्त ऐसे दो थाट और भी हैं जिनक प्रत्येक स्वर का संवादी स्वर उस थाट में प्राप्त है।

(i) सभी विकृत स्वरों वाले थाट में सभी स्वरों का संवाद 'सा-म' या 'सा-प' भाव से होता हे। यानी तोड़ी में शुद्ध-निषाद के स्थान पर यदि कोमल-निषाद का प्रयोग किया जाए या भैरवी में शुद्ध-मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम का प्रयोग किया जाए तो संवाद वाला थाट प्राप्त होगा।

(ii) कोमल-गान्धार, कोमल धैवत और तीव्र-मध्यम और शेष शुद्ध स्वरों वाला थाट भी संवादी स्वरों वाला मेल हो सकता है अतः बत्तीस में से बारह ऐसे थाट हो सकते हैं जिनके सभी स्वरों का संवादी स्वर प्रत्येक मेल में उपलब्ध हैं।

3- तीव्र-मध्यम के साथ शुद्ध-निषाद एक साथ थाट में प्रयोग होना चाहिए। साथ ही तीव्र म के साथ संवाद करता हुआ कोमल रे अथवा शुद्ध नि के साथ संवाद करता हुआ शुद्ध ग होना आवश्यक है। शुद्ध-निषाद का सम्बन्ध षड्ज से $^{15}/_{8}$ का है जो बहुत दूर का सम्बन्ध है इसलिए इस स्वर पर अधिक देर तक रुकना कठिन है। गायक या वादक जब निषाद पर रुकता है तो पंचम की सहायता से रुक पाता है। इसीलिए निषाद को प्रवेशक-स्वर कहते हैं। यही स्थिति तीव्र-मध्यम की है। ये बली स्वर नहीं माने जाते हैं। इसलिए किसी भी राग में ये दोनों वादी स्वर नहीं कहे गए हैं। दुर्बल-स्वर होने के कारण इन दोनों को एक और स्वर के संवाद के सहारे की आवश्यकता होती है। अतः शुद्ध-निषाद का तीव्र-मध्यम के साथ तो संवाद है ही, साथ ही निषाद का शुद्ध-गान्धार के साथ भी संवाद करना होगा। कल्याण, मारवा, पूर्वी में यही संवादी स्वर हैं। तोड़ी के लिए शुद्ध-गान्धार के अभाव में तीव्र-मध्यम से संवाद करने वाला कोमल-ऋषभ उपलब्ध है। इसलिए तोड़ी को भी थाट मान लिया गया। कहने का तात्पर्य यह है कि तीव्र-मध्यम, शुद्ध-निषाद के साथ-साथ निषाद-गान्धार संवादी होने से तीव्र-मध्यम और शुद्ध-निषाद की शक्ति में वृद्धि हो जाती है। तोड़ी में तीव्र मध्यम-शुद्ध निषाद व तीव्र मध्यम-कोमल ऋषभ में संवाद है जिससे तोड़ी के संवाद प्रधान हो जाने से इसे एक थाट माना गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार आरम्भ के तीन नियमों के पालन से बहत्तर मेल बन सकते हैं। चौथे नियम के पालन से बत्तीस, पाँचवें नियम के पालन से संख्या घटकर बारह रह जाती है और छठे नियम के पालन से मेलों की कुल संख्या मात्र दस रह जाती है यही दस थाट ध्वनि-विज्ञान के नियमानुसार पूर्णरूप से शुद्ध एवं वैज्ञानिक है। जिनमें कम से कम $^{16}/_{15}$ स्वरान्तराल का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक स्वर का संवादी स्वर उसी थाट में प्राप्त है और दुर्बल-प्रवेशक (ध्व.सं.,पृ.- 238-239) स्वरों को दो-दो संवाद प्राप्त हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि ध्वनि और विज्ञान के कड़े नियमों पर कल्याण, बिलावल आदि दस थाट ही खरे उतरते हैं।

यमक का नियमः- दस थाटों पर यदि यमक की दृष्टि से विचार किया जाए तो एक अन्य प्रकार से भी इन दस थाटों की वैज्ञानिकता सिद्ध होती है।

यमक का अर्थ है 'दो बार आवृत्ति'। चार स्वरों के समूह को चतुष्क कहते हैं। पूर्वांग के चतुष्क के साथ उत्तरांग के चतुष्क का संवाद होना आवश्यक है। बिलावल, भैरव, काफ़ी और भैरवी में 'सा, रे, ग, म' का संवाद 'प, ध, नि, सां' से है। दोनों यमकों में एक स्वर का व्यवधान है। इसलिए इन चारों थाटों में भिन्न-यमक मानना होगा यानी दोनों यमकों के मध्य एक स्वर का अन्तर है। पहला चतुष्क मध्यम पर समाप्त होता है और दूसरा चतुष्क पंचम से आरम्भ होता है।

षड्ज-मध्यम संवाद वाले खमाज और आसावरी में दोनों चतुष्कों में अन्तर नहीं है। पहला चतुष्क मध्यम पर समाप्त होता है और दूसरा चतुष्क मध्यम से ही आरम्भ हो जाता है इसलिए इसे बिन्दु-यमक कहा जाएगा। षड्ज-पंचम संवाद वाले को वियुक्तांग और षड्ज-मध्यम संवाद वाले को युक्तांग भी कहा जाता है। अर्थात् यदि दोनों अंग या चतुष्क जुड़े हुए हैं तो बिन्दु-यमक और यदि दोनों में एक स्वर का व्यवधान है तो वियुक्तांग या भिन्न-यमक हुए।

तीव्र-मध्यम वाले चारों थाटों में यमक ढूँढ़ना अपेक्षाकृत कठिन है क्योंकि इनका आरम्भ-स्थान अलग-अलग है। अर्थात् इनमें यमक का क्षेत्र खिसक गया है। इसलिए इसे 'अपसृत यमक' कहा गया है। कल्याण का 'रे ग म॑ प' का संवाद 'प ध नि सां' से है। इसमें सा-प, रे-ध, ग-नि में षड्ज-पंचम संवाद है और म॑-नि में षड्ज-मध्यम संवाद है। 'रे, ग, म॑, प' चतुष्क की पुनरावृत्ति 'प, ध, नि, सां' से है अतः बिन्दु-यमक हुआ। पूर्वी में मन्द्र-निषाद से आरम्भ कर के सा-प, रे॒-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध, ग-नि में षड्ज-पंचम संवाद है और मं-नि में षड्ज-मध्यम संवाद है। 'नि़ सा रे ग' का 'मं प ध नि' से भिन्न-यमक है, क्योंकि गान्धार पर पहला चतुष्क समाप्त होता है और दूसरा चतुष्क तीव्र मध्यम से आरम्भ होता है। दोनों में एक स्वर का अन्तर होने से वियुक्तांग हुआ। तोड़ी में सा-प, रे-ध में षड्ज-पंचम संवाद है। ग-ध, मं-नि में षड्ज-मध्यम संवाद है। तोड़ी के 'ग मं प ध' चतुष्क का 'ध नि सां रें' बिन्दु-यमक है।

मारवा में यमक ज्ञात करना अपेक्षाकृत और भी कठिन है फिर भी यदि यत्न किया जाए तो मारवा में भी यमक मिल जाएगा। पहले तो संवाद देखा जाए। नि़-मं में षड्ज-पंचम संवाद है। रे-मं, ग-ध, मं -नि, प-सां मे षड्ज-मध्यम संवाद है। इसका यमक खोजने के लिए षड्ज को छोड़ना होगा। 'नि़ रे ग मं' का यमक 'ग मं ध नि' में षड्ज-मध्यम संवाद से देखा जा सकता है। यह न तो भिन्न-यमक है और न ही बिन्दु-यमक। ये दोनों यमक एक दूसरे की सीमा पर अतिक्रमण करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इसे 'अपसृत-यमक' कहना होगा, क्योंकि यमक खिसक कर नीचे आ गया है। मारवा थाट के रागों में अधिकांशतः_पंचम वर्जित होता है और इस थाट के जिन रागों में पंचम लगता भी है तो वह दुर्बल-स्वर होता है। यमक का नियम निभाने के लिए षड्ज को भी छोड़ना पड़ा है। यूँ तो राग मारवा में कुछ विद्वान षड्ज को अधिक से अधिक कम करने की कोशिश करते हैं पर जो भी हो मारवा जैसा क्लिष्ट राग भी शास्त्रीय-संगीत के 'यमक-संवाद' आदि नियमों में पूरा उतर रहा है। अतः स्पष्ट है कि इन नियमों की सार्थकता सरल रागों में अधिक सुगमता से सिद्ध हो जाती है।

एक बिन्दु पर और विचार करना आवश्यक है। जिन रागों में सरल संवाद होता है उनका रस भी समान होता है। जिनके पूर्वांग और उत्तरांग में समानता नही है। जैसे :- अहीर भैरव के पूर्वांग में 'भैरव' है और उत्तरांग में 'काफ़ी'। जो कि समान नहीं है। अतः गले और कानों दोनों को ही पूर्वांग की तुलना में एकरसता का अनुभव नहीं होता है। इसी तरह चारुकेशी में 'सा, रे, ग, म' बिलावल का तथा 'प, ध, नि, सां' भैरवी का है।

आज ऐसे ही विपरीत पूर्वांग और उत्तरांग वाले राग ही अधिक गाए-बजाए जाते हैं पर ऐसे रागों में भाव के स्थान पर बुद्धि का कौशल ही अधिक देखने को मिलता है। सम्भवतः इन्हीं कारणों से आज का भारतीय-शास्त्रीय-संगीत रंजकता से दूर हटता जा रहा है। फिर भी भरत से लेकर आज तक संवाद के नियमों को निभाता हुआ हमारा शास्त्रीय-संगीत विश्व में सर्वश्रेष्ठ मानने योग्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्राम अथवा सप्तक बनाने की विधि

धरती पर मानव का जन्म सम्भवतः सभी भौगोलिक क्षेत्रों में प्रायः एक ही युग में हुआ होगा किन्तु उनमें सभ्यता के अङ्कुर भिन्न-भिन्न युगों में प्रस्फुटित हुए और वर्तमान की अत्यन्त विकसित सामाजिक संरचना को प्राप्त करने में भी अलग-अलग देश-काल की भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ उत्तरदायी हैं। यह प्रकृति के चिरन्तन और सार्वभौमिक होने का प्रमाण है कि अलग-अलग भूखण्डों में स्थापित सभ्यताओं में मानव की अन्य प्रवृत्तियों के ही समानान्तर संगीत के विकास की शृंखला भी आगे बढ़ी। शाश्वत मानवीय गुणों के अनुरूप संगीत के 'शुद्ध सप्तक (Scale)' भी अलग-अलग परिस्थितियों में बने और उनका आधार भी अलग-अलग ही रहा किन्तु जिस प्रकार मौलिक अनुभूतियाँ पूरे विश्व की एक ही है ठीक उसी तरह प्रत्येक प्रकार से प्राप्त संगीत के स्वरों में भी एक आधारभूत साम्य प्राप्त होता है।

संगीत के ग्राम या शुद्ध सप्तक की रचना चाहे किसी भी विधि से हुई हो परन्तु उनके स्वरों में कहीं न कहीं स्वाभाविक तादात्म्य दिखाई पड़ता है जबकि सञ्चार और परिवहन के साधनों के विकसित न होने के कारण उन सभ्यताओं का तब पारस्परिक सम्बन्ध भी सुदृढ़ नहीं था। अतः कहा जा सकता है कि संगीत भी प्रकृति का मानव को प्रदत्त एक ऐसा अनुपम उपहार है जो सर्वव्यापी है और सम्भवतः इसीलिए सभी ग्रामों के सात-स्वर आपस में अत्यन्त निकट से सम्बन्धित दृष्टिगोचर होते हैं।

शुद्ध सप्तक या ग्राम-रचना-विधि :- इस विधि से यह स्पष्ट होता है कि सप्तक के सात स्वर जिन्हें शुद्ध-स्वर कहा जाता है, उनकी स्थिति या ऊँचाई किस रीति से निर्धारित की गई है और फिर किस तरह विकृत स्वरों को प्राप्त किया गया है।

निम्न तीन विधियों से ग्राम या स्केल के स्वरों की प्राप्ति की जाती है:-

(1) प्राकृतिक (Natural Scale) या स्वयम्भू स्वरों द्वारा,

(2) चक्रिक विधि (Cyclic System) द्वारा और

(3) सङ्क्रमिक विधि द्वारा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1- प्राकृतिक ग्राम (NATURAL SCALE)- ध्वनि उत्पादक माध्यग के कम्पित होने पर स्वर या नाद की उत्पत्ति होती है। ध्वनि-विज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार माध्यम के साथ, दो खण्ड, तीन खण्ड आदि अनेक खण्डों में स्वतः कम्पित होता है। जिससे एक गुना, दो गुना और क्रमशः इसी प्रकार तीन, चार गुना आन्दोलन स्वतः उत्पन्न होते हैं। इन्हीं आन्दोलनों से जो स्वर उत्पन्न होते हैं उन्हें 'स्वयम्भू-स्वर' कहते हैं। ये स्वर आवर्तकों पर आधारित होते हैं अतः सुरीले होते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षियों आदि के कण्ठ में ये समान रूप से पाए जाते हैं और सुनने पर कानों को मधुर लगते हैं इसीलिए इन स्वरों को 'प्राकृतिक-स्वर' कहा जाता है।

आधार-स्वर या षड्ज की जो आन्दोलन-संख्या होती है उसकी दुगुनी आवृत्ति का दूसरा आवर्तक होता है तार-षड्ज। तीसरे आवर्तक और दूसरे आवर्तक का पारस्परिक सम्बन्ध $^3/_2$ का होता है और षड्ज-पंचम का सम्बन्ध भी $^3/_2$ का ही होता है इसलिए तीसरे आवर्तक से पंचम प्राप्त हुआ। इसी प्रकार चौथे व तीसरे आवर्तक का अन्तराल $^4/_3$ का है जिससे मध्यम मिला, पाँचवें और चौथे आवर्तकों का अन्तराल $^5/_4$ का है जिससे शुद्ध-गान्धार और इसी प्रकार छठे और पाँचवें आवर्तकों के अन्तराल $^6/_5$ से कोमल-गान्धार प्राप्त होता है। यहाँ तक तो संवादी स्वर मिलते हैं इससे आगे नौवें और आठवें आवर्तकों से जो गुरु-स्वर का अन्तराल है, से शुद्ध-ऋषभ प्राप्त होता है। दसवें और नौवें आवर्तकों से लघु-स्वर जो कि तीन श्रुति का ऋषभ है, प्राप्त होता है। यदि तानपूरा मध्यम में मिला हो तो त्रिश्रुतिक ऋषभ $^{10}/_9$ अन्तराल का लगता है। बागेश्वरी, रागेश्वरी आदि रागों में इसी ऋषभ का प्रयोग होता है। सोलहवें और पन्द्रहवें आवर्तकों से $^{16}/_{15}$ का अर्ध-स्वर प्राप्त होता है जो कोमल-ऋषभ है। पाँचवें और तीसरे आवर्तकों से शुद्ध-धैवत, आठवें और पाँचवें आवर्तकों से कोमल-धैवत, नौवें और पाँचवें आवर्तकों से कोमल-निषाद् तथा पन्द्रहवें और आठवें आवर्तकों से शुद्ध-निषाद प्राप्त होता है। इस प्रकार कुल ग्यारह स्वर एक सप्तक में मिल जाते हैं, केवल तीव्र-मध्यम नहीं प्राप्त होता है।

इस ग्राम में अनेक विशेषताओं के साथ-साथ कुछ त्रुटियाँ भी हैं। कोमल-ऋषभ और शुद्ध-निषाद ये दो स्वर अधिक ऊँचे होने के कारण केवल गणित के आधार पर मान लिए गए हैं क्योंकि ऊँचे आंशिकों (आवर्तकों) की तीव्रता तो नियमतः घटती जाती है और 15, 16 संख्यक आंशिक तो बहुत ही कम तीव्रता के हुए। यदि ये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आंशिक तीव्र होंगे तो सिद्धान्ततः इनमें कटुता आनी चाहिए। यदि इन स्वरों को निकाल दें तो स्वरों की संख्या कम हो जाएगी। इसके अतिरिक्त सात, ग्यारह व तेरह क्रम के आवर्तकों के स्वरों को लिया ही नहीं गया है। वैसे भारतीय रागों की विशेषता मानी जाती है कि तोड़ी राग में सातवें आवर्तक से उत्पन्न होने वाला $^7/_6$ अन्तराल या (240 x $^7/_6$ =) 280 आन्दोलन का कोमल-गान्धार प्रयोग किया जाता है।

2. चक्रिक-प्रक्रिया (CYCLIC SYSTEM):- इस विधि में षड्ज-पंचम और षड्ज- मध्यम संवाद से सप्तक के शुद्ध-विकृत स्वरों को प्राप्त किया जाता है। षड्ज-पंचम संवाद और षड्ज-मध्यम संवाद सर्वमान्य हैं। षड्ज-पंचम संवाद या सा-प संवाद जिसे 'साइकिल आफ फ़िफ़्थ' कहा जाता है इसमें पहले षड्ज से पंचम लेते हैं फिर पंचम को षड्ज मानकर उसका पंचम प्राप्त करते हैं जो वास्तव में ऋषभ होता है। इसी प्रकार ऋषभ को षड्ज मानकर उसका पंचम प्राप्त करते हैं जो धैवत होता है, पुनः धैवत से गान्धार और गांधार से निषाद को प्राप्त किया जाता है। इस श्रृंखला को आगे बढ़ाते जाएँ तो निषाद से तीव्र-मध्यम, तीव्र-मध्यम से कोमल-ऋषभ, कोमल-ऋषभ से कोमल-धैवत, कोमल-धैवत से कोमल-गान्धार, कोमल-गान्धार से कोमल-निषाद, कोमल-निषाद से शुद्ध-मध्यम और इसी प्रकार शुद्ध-मध्यम को षड्ज मानकर उसका पंचम तार-षड्ज प्राप्त होता है।

षड्ज-मध्यम संवाद 'साइकिल आफ फोर्थ' कहलाता है। इसमें पहले षड्ज से मध्यम लेते हैं फिर मध्यम को षड्ज मानकर उसका मध्यम प्राप्त करते हैं जो कोमल-निषाद होता है इसी प्रकार कोमल-निषाद से कोमल- गान्धार, कोमल-गांधार से कोमल-धैवत, कोमल-धैवत से कोमल-ऋषभ, कोमल-ऋषभ से तीव्र-मध्यम, तीव्र-मध्यम से शुद्ध-निषाद, शुद्ध-निषाद से शुद्ध-गान्धार, शुद्ध-गांधार से शुद्ध-धैवत, शुद्ध-धैवत से शुद्ध-ऋषभ, शुद्ध-ऋषभ से पंचम और इसी प्रकार पंचम को षड्ज मानकर इसका मध्यम प्राप्त करते हैं जो तार-षड्ज होता है।

इस प्रकार इस चक्रिक-प्रक्रिया को बारह बार करने से शुद्ध व विकृत स्वरों की प्राप्ति हो जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चक्रिक-प्रक्रिया से स्वरों को प्राप्त करने की तीन विधियाँ दी जा रही हैं जिससे इस तथ्य को समझने में सुविधा होगीः-

(1) हारमोनियम की सहायता से,

(2) गणित के माध्यम से और

(3) सेवर्ट विधि से।

1-हारमोनियम की सहायता सेः- षड्ज और मध्यम के मध्य कोमल-ऋषभ, शुद्ध-ऋषभ, कोमल-गान्धार व शुद्ध-गान्धार ये चार स्वर होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि किन्हीं दो स्वरों के मध्य यदि हारमोनियम की चार पटरियाँ छोड़ दी जाएँ तो उन दो स्वरों में सा-म संवाद होगा। इसी प्रकार षड्ज-पंचम के मध्य-शुद्ध मध्यम व तीव्र-मध्यम ये दो स्वर और बढ़ जाने के कारण छह पटरियाँ होंगी। इस विधि से किसी भी स्वर को षड्ज मानकर उसका पंचम खोजा जा सकता है। स्वरों को प्राप्त करने की एक विधि और हो सकती हैः- कागज़ पर मध्य-षड्ज से तार-षड्ज तक तेरह स्वर क्रम से इस प्रकार लिख लेंः- षड्ज, कोमल-ऋषभ, शुद्ध-ऋषभ, कोमल-गान्धार, शुद्ध-गान्धार, शुद्ध- मध्यम, तीव्र-मध्यम, पंचम, कोमल-धैवत, शुद्ध-धैवत, कोमल-निषाद, शुद्ध-निषाद और तार-षड्ज (सा <u>रे</u> रे <u>ग</u> ग म मं प <u>ध</u> ध <u>नि</u> नि सां)। अब किन्हीं दो स्वरों के मध्य यदि चार स्वर छोड़ें तो सा-म संवाद और यदि छह स्वर छोड़ें तो 'सा-प' संवाद का स्वर ढूँढा जा सकता है।

2- गणित के माध्यम सेः- सा-प संवाद में $3/2$ का अन्तराल होता है इसलिए पंचम को षड्ज मानकर उसका पंचम निकालने के लिए $3/2 \times 3/2$ करना होगा जो $9/4$ होता है जिससे तार-ऋषभ प्राप्त होता है अब इसको एक सप्तक उतारने के लिए $9/4$ को 2 से भाग करना होगा जिससे $9/8$ मिलता है जो मध्य-सप्तक का शुद्ध ऋषभ है। अब इस ऋषभ को षड्ज मानकर उसका पंचम प्राप्त करने के लिए $9/8$ को $3/2$ से गुणा करना होगा जिससे $27/16$ प्राप्त हुआ जो धैवत है। पुनः इस धैवत को षड्ज मानने पर उसका पंचम प्राप्त करने के लिए $27/16 \times 3/2$ किया जिससे $81/32$ मिला जो तार-गान्धार है अब इसे मध्य-सप्तक में करने के लिए 2 से भाग देना होगा अर्थात् ($81/32 \div 2 =$) $81/64$ प्राप्त हुआ जो मध्य-सप्तक का शुद्ध-गान्धार है। इसी प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शृंखला को क्रमशः बारह बार बढ़ाते जाने पर शेष सभी स्वर प्राप्त होंगे और बारहवीं बार लगभग तार षड्ज प्राप्त हो जाएगा।

सा–म संवाद का गणितीय मान $^4/_3$ अन्तराल का होता है अतः मध्यम को षड्ज मानकर उसका मध्यम ($^4/_3 \times {^4/_3} =$) $^{16}/_9$ होगा जो कोमल निषाद हुआ अब कोमल निषाद को षड्ज मानकर उसका मध्यम प्राप्त करने के लिए $^4/_3$ से गुणा करना होगा जिससे ($^{16}/_9 \times {^4/_3} =$) $^{64}/_{27}$ मिलेगा जो तार सप्तक का कोमल गांधार है इसको मध्य सप्तक में करने के लिए 2 से भाग करना होगा जिससे ($^{64}/_{27} \div 2 =$) $^{64}/_{54}$ प्राप्त होगा जो मध्य सप्तक का कोमल गांधार है इसी प्रकार सा–म संवाद से शेष सभी स्वर प्राप्त किए जा सकेंगे और बारहवीं बार लगभग तार षड्ज की प्राप्ति होगी।

3- सेवर्ट विधिः– सेवर्ट–पद्धति में मध्य षड्ज और तार षड्ज का अन्तराल 301 घटक होता है अर्थात् एक सप्तक 301 सेवर्ट का हुआ। सा–प संवाद के लिए अन्तराल 176 और सा–म संवाद का अन्तराल 125 होता है। चक्रिक-प्रक्रिया में सा–प संवाद (Cycle of fifth) के लिए षड्ज में 176 जोड़ना होगा अतः जब षड्ज 'शून्य' है तो पंचम 176 होगा और अब पंचम को षड्ज मानने पर उसका पंचम (176 + 176 =) 352 हो जाएगा, यह संख्या चूँकि 301 से अधिक है अतः ये ऋषभ तार सप्तक का होगा, इसको मध्य सप्तक का करने के लिए इसमें से 301 घटाते हैं जिससे (352- 301=) 51 प्राप्त हुआ जो मध्य सप्तक का ऋषभ हुआ। अब इस ऋषभ को षड्ज मानते हुए उसका पंचम प्राप्त करने के लिए इसमें 176 जोड़ते हैं तो (51+176 =) 227 मिलता है जो शुद्ध धैवत है, अब इसे षड्ज मानकर इसका पंचम प्राप्त करने के लिए 176 जोड़ना होगा जिससे (227+176 =) 403 होता है जो तार सप्तक का गान्धार है इसलिए इसमें से भी 301 घटाकर मध्य सप्तक का शुद्ध गान्धार प्राप्त किया जाएगा जो (403 - 301 =) 102 सेवर्ट का होगा। अब इस गान्धार को षड्ज मानते हुए इसका पंचम प्राप्त करते हैं जो 278 अन्तराल का होगा, यह स्वर शुद्ध निषाद हुआ। इस निषाद का पंचम 153 सेवर्ट का होगा जो तीव्र मध्यम है, अब इसका पंचम प्राप्त करते हैं जो 28 सेवर्ट का है जो कोमल ऋषभ होगा, पुनः इसका पंचम 204 सेवर्ट का होगा जो कोमल धैवत है इसी प्रकार कोमल धैवत को षड्ज मानकर इसका पंचम प्राप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते है जो 79 सेवर्ट का कोमल गान्धार है। इस कोमल गान्धार का पंचम 255 होगा जो कोमल निषाद है, इसका पंचम 130 सेवर्ट का शुद्ध मध्यम है और इसी तरह इसका भी पंचम प्राप्त करते हैं तो तार षड्ज प्राप्त होता है जो 306 सेवर्ट का है, यद्यपि यह आदर्श-तार षड्ज से 5 सेवर्ट चढ़ा हुआ है जोकि 301 सेवर्ट का होता है।

सा-म संवाद जो कि (Cycle of forth) कहलाता है, के 125 सेवर्ट होते हैं अतः षड्ज-मध्यम संवाद के लिए चक्रिक-प्रक्रिया में 125 जोड़ना होगा। षड्ज जब 'शून्य' होगा तो इसका मध्यम 125 होगा अब इस मध्यम को षड्ज मानने पर इसमें 125 जोड़ते हैं और इसका मध्यम प्राप्त करते हैं जो 250 सेवर्ट का कोमल निषाद है अब इसको षड्ज मानकर इसमें 125 जोड़ते हैं जिससे 375 प्राप्त होगा। चूँकि यह 301 से अधिक है इसलिए यह तार सप्तक का कोमल गान्धार होगा, इसको मध्य सप्तक में लाने के लिए (375 - 301 =) 74 प्राप्त करना होगा जो कि मध्य सप्तक का कोमल गान्धार है। पुनः इसको षड्ज मानते हैं और इसमें 125 जोड़ते हैं तो 199 प्राप्त होता है जो कोमल धैवत है इसी प्रकार इसको षड्ज माने और इसमें 125 जोड़ें तो 324 प्राप्त होगा यह भी 301 से अधिक है और तार सप्तक का कोमल ऋषभ है अतः इसको भी मध्य सप्तक में लाने के लिए इसमें 301 घटाकर (324-301=) 23 प्राप्त करते हैं जो मध्य सप्तक का कोमल ऋषभ है। इसी तरह कोमल ऋषभ को षड्ज मानें तो उसका मध्यम 148 का होगा जो तीव्र मध्यम है, इस तीव मध्यम को षड्ज मानकर इसका मध्यम प्राप्त करें तो 273 सेवर्ट का शुद्ध निषाद प्राप्त होगा और इसको षड्ज मानकर इसका मध्यम 97 सेवर्ट का शुद्ध गान्धार होगा। इसको षड्ज मानकर इसका मध्यम प्राप्त करें जो 222 सेवर्ट का शुद्ध धैवत है। इसका भी मध्यम प्राप्त करते हैं जो 46 सेवर्ट का ऋषभ होता है, पुनः इसका मध्यम 171 का है जो पंचम है और इस पंचम को षड्ज मानकर इसमें 125 जोड़ते हैं तो इसका मध्यम तार षड्ज होता है जो 296 सेवर्ट का है जो कि वास्तविक तार-षड्ज 301 से 5 सेवर्ट कम है।

अतः इस प्रक्रिया से सा-प और सा-म संवाद से प्राप्त स्वरों को देखने से ज्ञात होता है कि सा-प संवाद से मिलने वाले सभी बारह स्वर सा-म संवाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से प्राप्त स्वरों से 5 सेवर्ट चढ़े हुए या दूसरे शब्दों में सा-म संवाद से मिलने वाले सभी स्वर सा-प संवाद से मिलने वाले स्वरों से 5 सेवर्ट उतरे हुए हैं अतः कुल मिलाकर इस प्रक्रिया से 24 स्वर प्राप्त होते हैं जो निम्न है:-

स्वर	सा	रे	रे	ग	ग	म	मं	प	ध	ध	नि	नि	सां
सा-प संवाद	0	28	51	79	102	130	153	176	204	227	255	278	306
सा-म संवाद	0	23	46	74	97	125	148	171	199	222	250	273	296

मध्यम और पंचम ये दो स्वर संवाद पर आधारित सर्वमान्य स्वर हैं, षड्ज-पंचम संवाद में शुद्ध-मध्यम 125 सेवर्ट नहीं मिलता बल्कि 130 सेवर्ट का प्राप्त होता है इसके विपरीत षड्ज-मध्यम संवाद में वास्तविक पंचम नहीं मिलता जो 176 की जगह 171 का प्राप्त होता है।

जहाँ भी स्वर तार-सप्तक में प्राप्त हो रहा हो, उस स्वर में 176 जोड़ने के स्थान पर अवरोह क्रम में 125 घटाने पर वही स्वर मध्य-सप्तक में प्राप्त हो जाएगा। जैसे:- षड्ज-पंचम संवाद में 176 जोड़कर पंचम प्राप्त होता है। पंचम को षड्ज मानकर उसका पंचम प्राप्त करने के लिए 176 जोड़ने के स्थान पर अवरोह-क्रम से 125 घटाकर ऋषभ प्राप्त होता है जो 51 सेवर्ट का होगा, ऋषभ को षड्ज मानकर इसमें 176 जोड़ने पर 227 सेवर्ट का धैवत प्राप्त होता है। अब धैवत को षड्ज मानकर अवरोह-क्रम में 125 घटाने से गान्धार 102 सेवर्ट का प्राप्त होगा। तार-सप्तक के स्वरों को मध्य-सप्तक में करने के लिए उन स्वरों के अन्तराल में से 301 घटाना पड़ता है परन्तु इस रीति से उस लम्बी प्रक्रिया से बचा जा सकता है।

चक्रिक-प्रक्रिया से प्राप्त इन 24 स्वरों को यदि सीधी रेखा में रखकर देखें तो ये इस प्रकार होंगे:-

सेवर्ट में अन्तराल	0	5	23	28	46	51	74	79	97	102	125	130	148	153
पारस्परिक अन्तराल	5	18	5	18	5	23	5	18	5	23	5	18	5	
सेवर्ट में अन्तराल	153	171	176	199	204	222	227	250	255	273	278	296	301	
पारस्परिक अन्तराल	18	5	23	5	18	5	23	5	18	5	18	5		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस सारिणी को देखने से ज्ञात होता है कि 5, 18 और 23 सेवर्ट के अन्तराल ही प्राप्त होते हैं। यही श्रुतियों के तीनों अन्तराल सारणा-चतुष्टयी करते समय भी प्राप्त होते हैं जिन्हें 'कोमा' (5 सेवर्ट), 'लघु अर्ध स्वर' (18 सेवर्ट) और 'लीमा' (23 सेवर्ट) कहते हैं।

षड्ज-पंचम संवाद से स्वर पाँच सेवर्ट चढ़े होते हैं और अन्त में तार-सप्तक भी पाँच सेवर्ट चढ़ा प्राप्त होता है, इसे गणित में $^{81}/_{80}$ का अन्तराल कहते हैं जो कि 'कोमा' कहलाता है। यदि अधिक शुद्धता से जोड़ा जाए तो 5.88 का अन्तर प्राप्त होता है जो कि गुरु-स्वर में से लघु-स्वर को घटाने पर ($^{9}/_{8} \times {}^{9}/_{10} =$) $^{81}/_{80}$ से कुछ बड़ा है। $^{81}/_{80}$ का कोमा 5.4 होता है।

5.88 'पायथागोरस का कोमा' और 5.4 का कोमा 'डायसिस' कहलाता है।

चीन में इस चक्रिक-प्रक्रिया को और आगे बढ़ाकर साठ स्वर प्राप्त किए जाते हैं क्योंकि तार-षड्ज पाँच सेवर्ट ऊँचा प्राप्त होता है। इस प्रकार दो बार पुनः बारह स्वर प्राप्त करने पर तार-षड्ज दस सेवर्ट ऊँचा हो जाएगा। इसी प्रकार पाँच बार सभी बारह स्वरों को प्राप्त करने पर एक 5 x 5=25 सेवर्ट का अर्ध-स्वर प्राप्त हो जाएगा अतः चीन में सभी आवृत्तियों के साठ स्वरों का प्रयोग किया जाता है। सच्चे-स्वरों को प्राप्त करने के लिए विशेष प्रकार के पाइपों का इस्तेमाल किया जाता है जिन्हें 'ल्यू' कहते हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि चक्रिक-प्रक्रिया निरन्तर सर्पिल की भाँति चलती है और इसका कभी समापन नहीं होता।

3- सङ्क्रमिक-प्रक्रियाः-इस प्रक्रिया से द्विस्वरक-ग्राम (Ditonic scale), अर्ध-स्वरक ग्राम (Cromatic scale) और श्रुतिमूलक-ग्राम (Enharmonic scale) प्राप्त किए जाते हैं।

द्विस्वरक ग्राम या डायटोनिक स्केलः- मध्य-षड्ज व तार-षड्ज में जो संवाद होता है उससे कुछ ही कम स्तर का संवाद षड्ज-पंचम और षड्ज-मध्यम में होता है अतः मध्य-षड्ज और तार-षड्ज के बीच, मध्यम व पंचम को संवाद के आधार पर स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार मध्य-षड्ज, मध्यम, पंचम और तार-षड्ज आसानी से मिल जाते हैं। षड्ज-मध्यम में $^{4}/_{3}$ या 125 सेवर्ट का, मध्यम-पंचम में $^{9}/_{8}$ या 51 सेवर्ट का और पंचम-तार षड्ज में $^{4}/_{3}$ या 125 सेवर्ट का अन्तराल होता है जो आगे सारिणी में स्पष्ट है:-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर	सा म प सां
अन्तराल भिन्नांक में	$^4/_3$ $^9/_8$ $^4/_3$
अन्तराल सेवर्ट में	125 51 125

इसमें मध्यम-पंचम का छोटा अन्तराल 51 सेवर्ट है। अब चूँकि षड्ज- मध यम का अन्तराल जो 125 है, इस अन्तराल 51 से दुगुने से भी अधिक है इसलिए इसको षड्ज-मध्यम में से दो बार घटाते हैं जिससे ऋषभ और गान्धार प्राप्त होता है और इसी प्रकार पंचम और तार षड्ज के मध्य दो बार रखने पर धैवत और निषाद की प्राप्ति होती है जिनका पारस्परिक अन्तराल निम्न सारिणी से स्पष्ट है:–

स्वर	सा रे ग म प ध नि सां
अन्तराल भिन्नांक में	$^9/_8$ $^9/_8$ $^{256}/_{243}$ $^9/_8$ $^9/_8$ $^9/_8$ $^{256}/_{243}$
अन्तराल सेवर्ट में 51	51 23 51 51 51 23

डायटोनिक-स्केल या द्विस्वरक-ग्राम में दो प्रकार के अन्तराल मिले जो $^9/_8$ या 51 सेवर्ट और $^{256}/_{243}$ या 23 सेवर्ट के हैं। इस छोटे अन्तराल $^{256}/_{243}$ को 'लीमा' कहते है जिसके 23 सेवर्ट होते हैं। इस अन्तराल को पुनः $9/8$ में से घटाने पर एक नवीन अन्तराल की प्राप्ति होती है जिसे $^{2187}/_{2048}$ का 'एपोटोन' कहते हैं, यह 28 सेवर्ट का होता है। यह अर्धस्वर $^{16}/_{15}$ के लगभग बराबर है। वस्तुतः एपोटोन के 28.6 सेवर्ट और अर्धस्वर के 28 सेवर्ट होते हैं। इस अर्धस्वर के अन्तराल के प्राप्त होने पर इसको मध्यम के $^4/_3$ या 125 सेवर्ट में से घटाते हैं तो $^5/_4$ या 97 सेवर्ट का गान्धार प्राप्त हो जाएगा।

अर्धस्वर (23 सेवर्ट) को बड़े अन्तराल में जोड़ने से पाँच अन्य स्वर मिल जाएँगे जिन्हें मिलाकर (7+5) बारह स्वरों की प्राप्ति हो जाएगी। यदि इन्हीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरालों को गुरु-स्वरों (51 सेवर्ट) में से घटाया जाए तो पाँच और स्वर मिलेंगे अतः कुल (12+5) सत्तरह स्वर हो गए। ये स्वर फ़ारसी संगीत में काम आते हैं।

अर्ध-स्वरक-ग्राम या क्रोमेटिक-स्केलः- मध्य-षड्ज व तार-षड्ज में जो संवाद होता है उससे कुछ ही कम स्तर का संवाद षड्ज-पंचम और षड्ज-मध्यम में होता है अतः मध्य-षड्ज और तार-षड्ज के बीच, मध्यम व पंचम को संवाद के आध ार पर स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार मध्य-षड्ज, मध्यम, पंचम और तार-षड्ज आसानी से मिल जाते हैं। षड्ज-मध्यम के अन्तराल में से षड्ज से संवाद करता हुआ कोमल-गांधार ($^6/_5$ या 79 सेवर्ट) प्राप्त कर उसे ऋषभ कहेंगे शेष बचे (125-79)=46 सेवर्ट के लघु-स्वर को दो भागों में बाँट कर अर्धस्वर पर शुद्ध ग की प्राप्ति होती है। हिन्दुस्तानी संगीत के अनुसार ये स्वर क्रमशः सा <u>ग</u> ग म होते हैं। इसी प्रकार पंचम व तार-षड्ज में पंचम से संवाद करता हुआ कोमल-निषाद ($^6/_5$ या 79 सेवर्ट प =176+79=255) प्राप्त करते हैं जिसे धैवत का नाम दिया जाएगा। शेष बचे (301-255)=46 सेवर्ट के अन्तराल को दो भागों में बांट कर अर्ध-स्वर पर शुद्ध-निषाद की प्राप्ति होती है। हिन्दुस्तानी संगीत के अनुसार ये स्वर क्रमशः प <u>नि</u> नि सां होते हैं। यह अर्धस्वरक ग्राम या क्रोमेटिक स्केल दक्षिणी-संगीत में प्रयोग होता है।

सारिणी (अर्धस्वरक-ग्राम)

स्वर	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
हिन्दुस्तानी स्वर	सा	<u>ग</u>	ग	म	प	<u>नि</u>	नि	सां
सेवर्ट में मान	0	79	97	125	176	255	273	301
पारस्परिक अन्तराल		79	18	28	51	79	18	28

श्रुतिमूलक ग्राम या इनहार्मोनिक स्केलः- सा-म-प और सां को संवाद के आधार पर स्थापित करके षड्ज से संवाद करता हुआ $^5/_4$ या 97 सेवर्ट का शुद्ध गान्धार जिसे ऋषभ कहेंगे, स्थापित कर सा-म में से शेष बचे (125-97=)28 सेवर्ट को 14-14 के दो भागों में बाँट कर तीसरे स्वर गान्धार को (97+14=111)रखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है। इसी प्रकार पंचम व तार-षड्ज के मध्य के अन्तराल में पंचम से संवाद करते हुए शुद्ध-निषाद को (176+97=273) पर स्थापित किया जाता है, जिसे धैवत कहेंगे, शेष बचे (301-273)=28 सेवर्ट को भी दो भागों में बाँट कर तीसरे स्वर निषाद (273+14)=287 पर स्थापित करना होता है। इनहार्मोनिक स्केल या श्रुतिमूलक ग्राम में अर्ध-स्वर (द्विश्रुतिक) के अन्तराल को भी दो भागों में बाँटने पर वह श्रुति के समान हो जाते है। इसीलिए इसे श्रुतिमूलक या इनहार्मोनिक स्केल कहा जाता है।

सारिणी (श्रुतिमूलक-ग्राम)

स्वर	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
हिन्दुस्तानी स्वर	सा	ग	गं	म	प	नि	निं	सां
सेवर्ट में मान	0	97	111	125	176	273	287	301
पारस्परिक अन्तराल		97	14	14	51	97	14	14

इस प्रकार सङ्क्रमिक-ग्राम की ये तीन जातियाँ हुईः- (1) डायटोनिक, (2) क्रोमेटिक और (3) इनहार्मोनिक। इनके अन्तरालों के क्रम को बदलकर अनेक प्रकार के ग्राम या स्केल तैयार किए जाते हैं।

सङ्क्रमिक-प्रक्रिया द्वारा छोटे अन्तरालों को जोड़ या घटा कर भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्तराल मिलते जाते हैं अतः कहा जा सकता है कि सङ्क्रमिक-प्रक्रिया बहुत ही व्यापक है। भारतीय, अरबी, फ़ारसी-ग्राम इसी प्रक्रिया से बने हैं।

सम-साधृत ग्राम या टेम्पर्ड स्केल (TEMPERED SCALE):- हारमोनियम, पियानो आदि समान स्वरों वाले पाश्चात्य वाद्य सम-साधृत या टेम्पर्ड स्केल के होते हैं। ऐसे वाद्यों के सभी स्वर बेसुरे होते हैं फिर भी संगत में सुविधाजनक होने के कारण सम्पूर्ण विश्व में लोकप्रिय हैं।

टेम्पर्ड स्केल में मध्य षड्ज से तार षड्ज के अन्तराल को बारह बराबर भागों में विभाजित किया जाता है। इस प्रकार ऐसे वाद्यों में जितना अन्तराल षड्ज और ऋषभ के मध्य होता है उतना ही अन्तराल ऋषभ और गान्धार के मध्य होता

* गान्धार तथा निषाद अपने स्थान से ऊँचे है और मध्यम तथा षड्ज से क्रमशः नीचे हैं अतः केवल समझने के लिए गान्धार और निषाद को तीव्र चिह्न (गं, निं) से इंगित किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है जबकि भारतीय शास्त्रीय-संगीत में बिलावल के शुद्ध स्वरों में षड्ज और ऋषभ का अन्तराल चार श्रुतियों का है और ऋषभ तथा गान्धार का अन्तराल तीन श्रुतियों का है पर हारमोनियम जैसे टेम्पर्ड स्केल वाले वाद्यों में तो षड्ज-ऋषभ और ऋषभ-गान्धार समान अन्तराल के ही हैं।

सेवर्ट-विधि में मध्य-षड्ज व तार षड्ज का अन्तराल 301 सेवर्ट होता है। उसके 25.1 के बारह बराबर भाग कर लिए जाते हैं। (0.2) की कमी को कोमल गान्ध ार और शुद्ध गान्धार तथा कोमल निषाद और शुद्ध निषाद में नहीं लिया जाता, इस प्रकार सब बराबर के अन्तराल वाले स्वर हो जाते हैं।

सेण्ट-पद्धति का तो विकास ही सम्भवतः टेम्पर्ड स्केल की समस्या के समाधान हेतु किया गया होगा। इस सेण्ट पद्धति में मध्य षड्ज व तार षड्ज के अन्तराल को 1200 भागों में विभाजित किया जाता है। टेम्पर्ड स्केल के सभी स्वर 100-100 सेण्ट के होते हैं ।

शास्त्रीय-संगीत में संगत करने के लिए सबसे उपयुक्त वाद्य सारंगी माना जाता है। गायक जिस स्वर से गाता है, सारंगी-वादक उसे उसी स्वर में मिला लेता है और गायक के कण्ठ से मिला कर संगत करता है। दक्षिण में वायलिन से संगत की जाती है। ऐसे सभी वाद्यों से संगत सर्वोत्तम होती है जिनमें पर्दे नहीं होते किन्तु सितार, इसराज आदि पर्दे वाले वाद्यों से भी संगत हो सकती है क्योंकि वादक, गायक के स्वर से अपने वाद्य को मिला लेता है पर समान स्वरों वाले वाद्यों से संगत में स्वयम्भू या प्राकृतिक-ग्राम के स्वर न मिलने के कारण टेम्पर्ड स्केल वाले वाद्यों से नियमतः संगत नहीं होनी चाहिए। बीसवीं शताब्दी के मध्य तक भारतीय शास्त्रीय-संगीत में हारमोनियम से संगत करवाना नितान्त अवैध माना जाता था, इसमें भारतीय-संगीत की विशेषता मींड, सूत, गमक आदि बिल्कुल सम्भव नहीं है। कुछ रागों के स्वर अति-कोमल होते हैं जैसे तोड़ी, दरबारी का गान्धार, पूरिया का ऋषभ आदि। ऐसे स्वर चूँकि हारमोनियम में नहीं हैं अतः अनुभवी संगीतज्ञ हारमोनियम से संगत करते समय या तो ऐसे स्वरों को बजाते ही नहीं हैं अथवा बहुत ही मन्द ध्वनि (Low volume) में बजाते हैं जिससे कि गायक और हारमोनियम के स्वरों का अन्तर श्रोताओं को न खटके और राग के प्रभाव में विकृति न उत्पन्न हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुविधा की दृष्टि से वर्तमान में अधिकतर मूर्धन्य गायक हारमोनियम से ही संगत करवाते देखे जा सकते हैं।

सम-साधृत ग्राम अर्थात् टेम्पर्ड-स्केल के वाद्यों में सुविधा यह है कि किसी भी पटरी से गायक का स्वर मिला नहीं कि संगत आरम्भ हो जाती है। वैसे भी हारमोनियम उन संगीत रसिकों के लिए एक सबल सहायक के रूप में है जिन्हें प्राकृतिक रूप से संगीत-युक्त कण्ठ नहीं प्राप्त है। हारमोनियम के समान-स्वर ऐसे लोगों के लिए एक प्रकार के प्रशिक्षक के रूप में काम आते हैं। हारमोनियम में गीत का स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाता है किन्तु तानपूरे में वह गुप्त या परोक्ष रहता है अतः हारमोनियम को साकार ब्रह्म और तानपूरे को निराकार ब्रह्म की संज्ञा दी जा सकती हैं। इस वाद्य में अनेक सुविधाएँ है:- जैसे इसे मिलाने की समस्या नहीं होती, इस वाद्य को बजाना सुविधाजनक है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने ले जाने में वाद्य के बेसुरा होने या टूट-फूट की सम्भावना भी अपेक्षाकृत कम होती है। इस वाद्य को सीखना भी आसान है। हो सकता है कि कोई व्यक्ति पारंगत न हो सके किन्तु निष्ठा और समर्पण के साथ अभ्यास करने से काम चलाऊ हारमोनियम तो सीख ही सकता है। यही कारण है कि सारंगी आदि वाद्यों की अपेक्षा हारमोनियम वादक हर स्थान पर सुविधा से उपलब्ध हो जाते हैं। लोक-संगीत या उप शास्त्रीय-संगीत के लिए तो हारमोनियम अत्यन्त सहायक है। यही कुछ कारण हैं कि संगत के लिए अनुपयुक्त माने जाने के उपरान्त भी हारमोनियम वर्तमान समय के सर्वाधिक उपयुक्त वाद्य के रूप में प्रचलित हो गया है।

सा के अतिरिक्त हारमोनियम या टेम्पर्ड स्केल वाले वाद्यों के सभी स्वर बेसुरे होते है। बेसुरे स्वरों का अर्थ है अपने निश्चित स्थान से ऊँचे या नीचे स्वर। सामान्यतः बहुत अनुभव होने के बावजूद भी हारमोनियम के कुछ ही स्वरों को सुनकर अनुभव किया जा सकता है कि अमुक स्वर ऊँचे है या नीचे, सभी स्वरों को नहीं, इसके दो कारण है प्रथम यह कि स्वरों में अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर होता है। दूसरे हमारे कान होरमोनियम को सुन-सुनकर बेसुरा सुनने के आदी हो गए है। जापान के शास्त्रीय संगीत में अभी भी हारमोनियम स्वीकार नहीं किया गया यहाँ पर गणित के माध्यम से हारमोनियम तथा प्राकृतिक ग्राम (Natural Scale) के स्वरों को तुलनात्मक रूप से सारणी में दिया जा रहा है:-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर	हारमोनियम के स्वर (सेवर्ट में)	षड्ज से अन्तराल	प्राकृतिक-ग्राम के स्वर	प्राकृतिक-ग्राम के स्वरों से अन्तर
स	0	0	0	समान
<u>रे</u>	25.1	25.1	28	नीचा
रे	25.1	50.2	51	नीचा
<u>ग</u>	25.1	75.3	79	नीचा
ग	25	100.3	97	चढ़ा
म	25.1	125.4	125	चढ़ा
मं	25.1	150.5	148	चढ़ा
प	25.1	175.6	176	नीचा
<u>ध</u>	25.1	200.7	204	नीचा
ध	25.1	225.8	222	चढ़ा
<u>नि</u>	25.1	250.9	255	नीचा
नि	25	275.9	273	चढ़ा
सां	25.1	301	301	समान

इस सारिणी को देखने से यह स्पष्ट है कि कोमल रे प्राकृतिक ग्राम में 28 और टेम्पर्ड स्केल में 25.1 पर है अतः यह उतरा हुआ है। इसी प्रकार शुद्ध रे प्राकृतिक ग्राम में 51 और टेम्पर्ड स्केल में 50.2, कोमल ग प्राकृतिक ग्राम में 79 और टेम्पर्ड स्केल में 75.3, प प्राकृतिक ग्राम में 176 और टेम्पर्ड स्केल में 175.6, कोमल ध 204 और टेम्पर्ड स्केल में 200.7 और नि प्राकृतिक ग्राम में 255 और टेम्पर्ड स्केल में 250.9 पर होने के कारण उतरे हुए हैं।

इसके विपरीत ग प्राकृतिक ग्राम में 97 और टेम्पर्ड स्केल में 100.3 पर होने के कारण चढ़ा हुआ है इसी तरह म प्राकृतिक ग्राम में 125 और टेम्पर्ड स्केल में 125.4, तीव्र म प्राकृतिक ग्राम 148 और टेम्पर्ड स्केल में 150.5, ध प्राकृतिक ग्राम में 222 और टेम्पर्ड स्केल में 225.8 पर और नि प्राकृतिक ग्राम में 273 और टेम्पर्ड स्केल में 275.9 पर होने के कारण चढ़े हुए हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हारमोनियम जो कि टेम्पर्ड स्केल का वाद्य है सा के अतिरिक्त शेष सभी स्वर अपने उचित स्थान से या तो ऊँचे है या नीचे अतः ये बेसुरे होते हैं। फिर भी बजाने सीखने रख-रखाव में सरलता के कारण ये अधिक लोकप्रिय हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीय अध्याय
संगीतरत्नाकर

संगीतरत्नाकरः– संगीत रत्नाकर भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्राचीन ग्राम-मूर्च्छना प्रणाली से सम्बन्धित "संगीतराज" के अतिरिक्त का अन्तिम आधार ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल सन् 1210 से 1217 ई0 है। इसके रचयिता आचार्य शार्गदेव हैं। ये संगीत के साथ-साथ आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान थे और पेशे से अपने राज्य के लेखाकार (Chief Accountant) थे। इनके पिता का नाम सोढल था, शार्गदेव के दादा भास्कर काश्मीर के मूल निवासी थे जो सम्भवतः विदेशी जातियों के आक्रमण से बचने के लिए (दक्षिण भारत) में देवगिरी वर्तमान दौलताबाद (जैत्रपद) में जाकर बस गए। में इन्हें संगीत-विद्या को पुष्पित-पल्लवित करने का अनुकूल वातावरण प्राप्त हुआ।

वातावरणः– भारतीय संस्कृति, साहित्य एवं संगीत पर चिरकाल से विदेशी आक्रमणकारियों के प्रहार होते रहे हैं, परन्तु भारत की जलवायु में विपरीत परिस्थितियों से तालमेल करते हुए सुर-ताल का साम्राज्य स्थापित करके अपने मूल स्वरूप को विद्यमान रखने की अभूतपूर्व क्षमता है। इस परिप्रेक्ष्य में जब भारतीय-संस्कृति एवं संगीत पर विदेशियों का आक्रमण हो रहा था उस समय संगीत, साहित्य एवं संस्कृति को बचाने के लिए लक्षण एवं आधार-ग्रन्थों की रचनाएँ हुईं, जिनमें मम्मट रचित साहित्यिक ग्रन्थ 'काव्य प्रकाश' एवं संगीत के क्षेत्र में 'संगीत रत्नाकर' का स्थान सर्वोपरि है।

विषय-वस्तुः– 'संगीतरत्नाकर' में (1) स्वर, (2) राग, (3) प्रकीर्णक, (4) प्रबन्ध, (5) ताल, (6) वाद्य और (7) नृत्य। ये सात अध्याय हैं, इनका वर्णन इस प्रकार है–

(1)स्वराध्यायः– स्वराध्याय को आठ प्रकरणों में विभक्त किया गया है। जिलके नाम इस प्रकार हैं–पदार्थ संग्रह, पिण्डोत्पत्ति, नाद स्थान, श्रुति, स्वर आदि, ग्राम-मूर्च्छना, साधारण-प्रकरण, वर्ण-अलंकार प्रकरण, जाति प्रकरण, गीति प्रकरण।

1.पदार्थ संग्रह– पदार्थ संग्रह नामक खण्ड के प्रारम्भिक 14 श्लोकों में लेखक ने अपना एवं अपने आश्रयदाता का परिचय दिया है। तत्पश्चात् उन्तालीस पूर्वाचार्यों के नामों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उल्लेख है जिनके ग्रन्थों का मन्थन करके शार्गदेव ने 'संगीत-रत्नाकर' की रचना की। इन आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं:-

क्रम संख्या		आचार्यों के नाम	क्रम संख्या		आचार्यों के नाम
1	-	सदाशिव	21	-	आञ्जनेय
2	-	शिवा	22	-	मातृगुप्त
3	-	ब्रह्मा	23	-	रावण
4	-	भरत	24	-	नन्दिकेश्वर
5	-	कश्यप	25	-	बिन्दुराज
6	-	मतंगमुनि	26	-	क्षेत्रराज
7	-	याष्टिक	27	-	राहल
8	-	दुर्गाशक्ति	28	-	रुद्रट
9	-	शार्दूल	29	-	नान्यभूपाल
10	-	कोहल	30	-	भोज
11	-	विशाखिल	31	-	परमर्दी
12	-	दत्तिल	32	-	सोमेश
13	-	कम्बल	33	-	जगदेकमल्ल
14	-	अश्वतर	34	-	अभिनवगुप्त
15	-	वायु	35	-	कीर्तिधर
16	-	विश्वावसु	36	-	लोल्लट
17	-	रम्भा	37	-	उद्भव
18	-	अर्जुन	38	-	शङ्कुक
19	-	नारद	39	-	स्वातिर्गण
20	-	तुम्बुरू			

इसके बाद संगीत की परिभाषा :- 'गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीतमुच्यते' देकर संगीत के दो भेद 'मार्गी' और 'देशी' कहे गए हैं। संगीत का गुणगान करते हुए कहा गया है कि देव, दानव, यक्ष, किन्नर, गान्धर्व तथा मानव ही नहीं अपितु विषधर साँप भी संगीत के वश में आ जाता है, संगीत के प्रभाव से रोता हुआ बालक हँसने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगता है और मृग भी अपने प्राणों को बहेलिए को सौंप देता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति में संगीत एकमात्र साधन कहा गया है।

प्रथम प्रकरण के अन्तिम अट्ठारह श्लोकों में लगता है और मृग भी अपने प्राणों को संक्षेप में बहेलिए को सौंप देता है।

2.पिण्डोत्पत्तिः– संगीत नाद पर आधारित है। नाद बिना शरीर के सम्भव नहीं। अतः इस ग्रन्थ में 'पिण्ड' यानी शरीर की उत्त्पत्ति का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस प्रकरण को देखने से सिद्ध होता है कि आचार्य शार्ङ्गदेव आयुर्वेद के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध, आत्मा का शरीर में विलय और गर्भ के नौ-मास में कब किन-किन अंगों का विकास होता है, कौन से गुण बच्चे को माँ से मिलते हैं तथा कौन से गुण पिता से, शरीर में कितनी हड्डियाँ हैं, कितनी नसें हैं और कौन सी नस कहाँ से कहाँ तक जाती हैं आदि-आदि का पूर्ण विवरण दिया गया है। यहाँ पर ग्रन्थ में वर्णित शरीरस्थ-चक्रों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा। शरीर में कुल दस चक्र होते हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं:–

नाम	स्थान	दल
आधार चक्र	गुदा व लिंग के मध्य स्थित	चार दलों वाला
स्वाधिष्ठांन चक्र	लिंग के मूल में स्थित	छह दलों वाला
मणिपूरक चक्र	नाभि में स्थित	दस दलों वाला
अनाहत चक्र	हृदय में स्थित	बारह दलों वाला
विशुद्धि चक्र	कण्ठ में स्थित	सोलह दलों वाला
ललना चक्र	गले व कण्ठ के मध्य स्थित (घाटी में)	बारहदलों वाला
आज्ञा चक्र	भृकुटि में स्थित	तीन दलों वाला
मन चक्र	भृकुटि में स्थित	छह दलों वाला
सोम चक्र	भृकुटि में स्थित	सोलह दलों वाला
सुधा चक्र	मस्तिष्क (ब्रह्म-रन्ध्र)	सहस्र दलों वाला

अलग अलग चक्रों में दलों की संख्या भिन्न-भिन्न बताई गई हैं। जैसे किस चक्र का कौन सा दल यदि विकसित होगा तो व्यक्ति संगीत में विकास करेगा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और यदि अमुक चक्र का अमुक दल विकसित नहीं होगा तो वह संगीत के क्षेत्र में विकास नहीं कर सकेगा। उदाहरणार्थः- हृदय में स्थित अनाहत चक्र के बारह दल हैं। जिसके पहले आठवें, ग्यारहवें और बारहवें दल पर; विशुद्धि चक्र के सोलह दलों में से आठवें से पन्द्रहवें दल पर और ललना चक्र के बारह दलों में से दसवें और ग्यारहवें दल पर जीव स्थित होता है तो संगीत में सिद्धि प्राप्त होती हैं। ठीक इसके विपरीत अनाहत चक्र के चौथे, छठे और दसवें दल पर; विशुद्धि चक्र के सोलहवें दल पर और ललना चक्र के पहले, चौथे और पाँचवें पर जब जीव स्थित होता है तब संगीत के विकास की सम्भावना बिल्कुल नहीं के बराबर होती है। निम्नलिखित श्लोक इस कथन को प्रमाणित करते हैं:-

अनाहतदले पूर्वेऽष्टमे चैकादशे तथा।
द्वादशे च स्थितो जीवो गीतादेः सिद्धिमृच्छति।।
चतुर्थषष्टदशमैर्दलैर्गीतादि नश्यति।
विशुद्धेरष्टमादीनि दलान्यष्टौ श्रितानि तु।।
दद्युर्गीतादिसंसिद्धिं षोडूशं तद्विनाशकम्।
दशमैकादशे पत्रे ललनायाँ तु सिद्धिदे।।
नाशकं प्रथमं तुर्यं पंचमं च दलं विदुः।[1]

3.नाद स्थान, श्रुति, स्वर आदि :- नाद, स्थान, श्रुति, स्वर-जाति, कुल देवता, ऋषि, द्वीप, छन्द, और रस आदि प्रकरण इस अध्याय के प्रमुख विषय हैं।

नाद की व्यापकताः- सम्पूर्ण विश्व नाद पर ही आधरित है, जैसे-आत्मा जब बोलने की इच्छा व्यक्त करती है तब वह शरीर में स्थित अग्नि को प्रेरित करती है, अग्नि ब्रह्म-ग्रन्थि में स्थित वायु को प्रेरित करती है, अग्नि और वायु के संयोग से नाद उत्पन्न होता है जो नाभि, हृदय, कण्ठ, मूर्धा और मुख से होता हुआ स्वर और शब्द के रूप में प्रकट होता है। नाद के पाँच प्रकार हैं:-(1) अति सूक्ष्म, (2) सूक्ष्म, (3) पुष्ट, (4) अपुष्ट और (5) कृत्रिम।

स्थानः- व्यवहार में हृदय से मन्द्र, कण्ठ से मध्य और मूर्धा से तार स्थान (सप्तक) के स्वर माने जाते हैं।

---

1. सं.र.-1- पृ.- 56

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रुतिः- श्रुतियाँ बाईस होती हैं। हमारे शरीर में बाईस-बाईस नाड़ियाँ जो हृदय, कण्ठ और मूर्धा में होती हैं, उनसे वायु टकराती हुई बाईस श्रुतियों को उप्पन्न करती हैं। सारणा-चतुष्टयी द्वारा श्रुतियों को नवीन विधि से संगीत-रत्नाकर नें समझाया गया है। भरत और मतंग-मुनि आदि ने चल व अचल दोनों वीणाओं में सात-सात तार लगाए थे पर शार्ङ्गदेव ने बाईस-बाईस तार लगाकर सारणा-चतुष्टयी-विधि सम्पन्न की हैं। भरतादि ने षड्ज-मध्यम संवाद के लिए नौ श्रुति और षड्ज-पंचम संवाद के लिए तेरह श्रुतियों के अन्तर का विधान किया है, वहीं शार्ङ्गदेव ने आठ व बारह श्रुतियों का अन्तर माना है, अर्थात् शार्ङ्गदेव के अनुसार जिन स्वरों पर संवादी-स्वर स्थित हैं उनको छोड़कर दोनों के मध्य में श्रुतियों की गणना करनी हैं जैसे षड्ज चार पर है तथा तेरहवीं श्रुति पर मध्यम है। चार से तेरह के मध्य आठ श्रुतियाँ हैं इसी प्रकार सा-प संवाद में षड्ज चौथी और पंचम सत्रहवीं श्रुति पर है अतः षड्ज और पंचम के मध्य पाँच से सोलह तक बारह श्रुतियाँ ही हैं। भरतादि सत्रहवीं श्रुति को भी गिनते हैं इसलिए षड्ज-पंचम संवाद में भरतादि को तेरह श्रुतियों का अन्तर मानना पड़ा।

स्वरः- षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद सात स्वर है जिनको व्यवहार में सा, रे, ग, म, प, ध, नि संज्ञाएँ दी गई हैं। स्वर की परिभाषा देते हुए शार्ङ्गदेव का कथन है कि – 'श्रुत्यनन्तर भावी, स्निग्ध, श्रोताओं के चित्त का स्वयं रञ्जन करने वाला नाद, स्वर कहलाता है।' चौथी, सातवीं, नौवीं, तेरहवीं, सत्रहवीं, बीसवीं और बाइसवीं श्रुतियों पर सा, रे, ग, प, ध, नी शुद्ध स्वर स्थापित (स्थित) हैं। संगीतरत्नाकर में शांर्गदेव ने बारह विकृत स्वर माने हैं जो इस प्रकार हैः-

(1) तीसरी पर च्युत्-षड्ज।
(2) चौथी पर अच्युत्-षड्ज।
(3) सातवीं पर विकृत-ऋषभ।
(4) दसवीं पर साधारण-गान्धार।
(5) ग्यारहवीं पर अन्तर-गान्धार।
(6) बारहवीं पर च्युत्-मध्यम।
(7) तेरहवीं पर अच्युत-मध्यम।
(8) सोलहवीं पर मध्यमग्रामिक-पंचम।
(9) सोलहवीं पर ही च्युत्-मध्यम के प्रयोग के समय कैशिक-पञ्चम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(10) तथा बीसवीं पर विकृत-धैवत (मध्यम-ग्राम में)।

(11) प्रथम श्रुति पर कैशिक-निषाद।

(12) दूसरी श्रुति पर काकली-निषाद।

श्रुतियाँ	शुद्ध-स्वर	विकृत-स्वर
1		कैशिक-नि
2		काकली-नि
3		च्युत-सा
4	सा	अच्युत-सा
5		
6		
7	रे	विकृत-रे
8		
9	ग	
10		साधारण-ग
11		अन्तर-ग
12		च्युत-म
13	म	अच्युत-म
14		
15		
16		मध्यमग्रामिक-प, कैशिक-प
17	प	
18		
19		
20	ध	विकृत-ध
21		
22	नि	

श्रुतियों के तीव्रा, कुमुद्वती आदि नाम देकर इनकों दीप्ता, आयता आदि पाँच जातियों में विभक्त किया गया है। वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी की परिभाषा देकर इनकी तुलना क्रमशः राजा, मन्त्री, सेवक और शत्रु से की गई है। सा, रे, ग आदि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सातों स्वरों के रंग, रस, छन्द, द्वीप और देवता भी बताए गए हैं। स्वरों का सम्बन्ध मोर, चातक आदि पशु-पक्षियों से जोड़ा गया है। स्वरों की जातियाँ वंश आदि भी दिए गए हैं। जो सारिणी में प्रस्तुत है :-

सारिणी[1]

स्वर	पशुपक्षी कुल	वर्ण	रंग	द्वीप	ऋषि	देवता	छन्द	रस	
षड्ज	मोर	देव	ब्राह्मण	रक्त	जम्बू	अग्नि	अग्नि	अनुष्टुप	वीर, अद्भुत
ऋषभ	चातक	ऋषि	क्षत्रिय	पिञ्जर	शाक	ब्रह्मा	ब्रह्मा	गायत्री	तथा रौद्र
गान्धार	बकरा	देव	वैश्य	स्वर्ण	कुश	चन्द्रमा	सरस्वती	त्रिष्टुप	करूण
मध्यम	क्रौंच	देव	ब्राह्मण	श्वेत	क्रौंच	विष्णु	महादेव	वृहती	हास्य
पंचम	कोयल	पितृ	ब्राह्मण	श्याम	शाल्मली	नारद	विष्णु	पंक्ति	तथा श्रृंगार
धैवत	मेंढक	ऋषि	क्षत्रिय	पीत	श्वेत	तुम्बुरु	गणेश	उष्णिक्	वीभत्स व भयानक
निषाद	हाथी	असुर	वैश्य	मिश्रित	पुष्कर	तुम्बुरु	सूर्य	जगती	करुण

4.ग्राम-मूर्च्छनाः- ग्राम की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि- 'ग्रामः स्वरसमूहः स्यानमूर्च्छनाऽऽदेः समाश्रयः।'

अर्थात्, स्वरों का वह समूह जो मूर्च्छनाओं का आश्रय हो[2] ग्राम कहलाता है। पृथ्वी पर 'षड्ज व 'मध्यम' दो ग्राम कहे गए हैं।

सातों स्वरों में षड्ज-स्वर का स्थान प्रथम है और उसके दो संवादी मध्यम और पंचम होने के कारण षड्ज-ग्राम मुख्य हैं, मध्यम स्वर अविलोपी है यानी किसी जाति या मूर्च्छना-तान में इसका लोप नहीं किया जा सकता, इसलिए दूसरे ग्राम को मध्यम-ग्राम की संज्ञा दी गई है। शार्ङ्गदेव ने संगीत-रत्नाकर में नारद के मत से गान्धार-ग्राम का भी वर्णन किया है। जो कि स्वर्ग में है। तीनों ग्रामों की इक्कीस मूर्च्छनाएँ हैं। षड्ज ग्राम की मूर्च्छनाओं के नाम उत्तरमन्द्रा, रजनी आदि दिए गए हैं। दोनों षड्ज और मध्यम ग्रामों की चौदह मूर्च्छनाओं के विकृत स्वरों के प्रयोग से चार-चार भेद किए गए हैं जिससें (4x14=)56 भेद बनते हैं। उसके बाद स्वर-प्रस्तार, खण्ड मेरु विधि का उल्लेख किया गया है जिससे प्रत्येक मूर्च्छना के 5040 स्वर प्रस्तार बनते हैं। 5040 को 56 से गुणा करने पर 282240 कूट-तान कही गई हैं। इतना ही नहीं इनके साथ छह, पाँच, चार, तीन, दो और एक स्वर के कुल 317930 भेद बताए गए हैं [3]।

(1) सं.रं.-1 (हिन्दी अनुवाद), पृ.- 37 (2) सं.रं.-1, पृ.- 99 (3) सं.रं.-1, पृ.- 127

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खण्ड-मेरुः- इस विधि में बताया गया है कि निश्चित स्वरों के अधिकतम कितने प्रस्तार हो सकते हैं जिनमें न तो कोई पुनरोक्ति होगी और न ही कोई स्वर प्रस्तार छूटेगा। खण्ड-मेरु-विधि द्वारा किस प्रस्तार की कौन सी संख्या है या किस संख्या का कौन सा प्रस्तार होगा, उदाहरण के लिए 5040 स्वर प्रस्तारों में से 3432 क्रम का प्रस्तार क्या होगा यह नष्ट है और सा म प नि ध ग रे किस संख्या का प्रस्तार है यह अद्गिदष्ट है। इसे को देखने से शार्ङ्गदेव का गणित जैसे विषय पर कितना नियन्त्रण था। यह भी ज्ञात होता है। संगीत-रत्नाकर में षाडव और औडुव की चौरासी तानें दी गई हैं, जो यज्ञ के उपयोग की हैं। इस विषय पर लेखक की अन्य पुस्तक संगीतः विज्ञान एपं गणित में विस्तार से चर्चा की गई है।

5.साधारण-प्रकरणः- इसमें स्वर-साधारण और जाति-साथारण बताई गई हैं साधारण का अर्थ हैः- 'विकृत'। तीसरे प्रकरण में तो विकृत-स्वर बारह बताए गए हैं। फिर भी इस संक्षिप्त प्रकरण में स्वर के साथ-साथ जाति-साधारण भी बताई गई हैं।

6.वर्ण-अलंकार प्रकरणः- इस प्रकरण में वर्ण की परिभाषा, उसके चार प्रकारः- स्थायी, आरोही, अवरोही और सञ्चारी कहे गए हैं। स्थायी वर्ण के 7 आरोही के 12, अवरोही के 12, सेचारी के 25 तथा 7 अन्य (7+12+12+25+7)= 63 अलंकार कहे गए है। आज भी विद्यार्थियों को संगीत का ज्ञान कराते समय अलंकारों का अभ्यास (शिक्षण) कराया जाता है। शार्ङ्गदेव के अलंकार तो लगभग वर्तमान वाले ही हैं, पर आज हम इन अलंकारों को वर्णों के भेद से नहीं पहचानते हैं।

7.जाति-प्रकरणः- वर्तमान रागों की जननी जातियाँ थी। इस प्रकरण में अट्ठारह जातियों का विस्तृत वर्णन है जिनमें सात शुद्ध और ग्यारह संसर्गजा यानी दो या दो से अधिक जातियों के मिश्रण से मिलकर बनी हुई जातियों का वर्णन है। शुद्ध जातियों में- षड्ज से षाड्जी, ऋषभ से आर्षभी आदि सातों स्वरों के नाम वाली जातियाँ थीं। षड्ज-मध्यम, गान्धार-पंचमी आदि दो-दो जातियों के मिश्रण से बनी थीं, ऐसी तीन या चार जातियों से भी मिलकर बनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जातियाँ दी गई हैं। अट्ठारह जातियों में से सात षड्ज-ग्राम की और ग्यारह मध्यम-ग्राम की जातियाँ थीं।

(प्रस्तुत पुस्तक में जाति-गान पर अलग से लिखा गया है।)

8. गीति-प्रकरणः- शुद्ध जातियों से उत्पन्न सात कपाल दिए गए हैं। उसके बाद कम्बल दिए गए हैं। अन्त में मागधी, अर्धमागधी, सम्भाविता और पृथुला-गीतियाँ दी गई हैं। अधिक दीर्घ अक्षर वाली सम्भाविता और अधिक लघु-अक्षर वाली पृथुला-गीति कही गई है- 'भक्त्या देवं रुद्रं वन्दे' यह सम्भाविता गीति है। 'सुरनत हर पद युगलं प्रणमत्' यह पृथुला-गीति हुई। उदाहरण से स्पष्ट है:-

सम्भाविताः-

ध	म	म	रे	ग	रे	ग	सा	सा	नि	ध	सा	नि	ध	नि	म	म
भ		क्त्या			दे		वं		रु		द्रं		व			न्दे

पृथुलाः-

म	ग	रे	ग	सा	धनि	ध	ध	ध	सा	ध	नि	प	निधप	म	म
सु	र	न	त	ह	र	प	द	यु	ग	लं		प्र	ण	म	त

राग विवेकाध्यायः- इस अध्याय में दो सौ चौसठ रागों के नामों का उल्लेख किया गया है। सर्वप्रथम पाँच प्रकार के ग्राम-राग हैं जो गीतियों पर आधारित हैं। इन गीतियों के नाम इस प्रकार हैं:- शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, बेसरा और साधारणी।

ग्राम-राग और देशी-रागः- ग्राम-राग और देशी-राग में ग्राम-राग के अन्तर्गत 30 ग्राम-राग, 8 उपराग, 20 राग, 96 भाषा, 20 विभाषा और 4 अन्तरभाषा हैं। भाषा, विभाषा और अन्तरभाषा इनको पन्द्रह जनक भाषाओं में वर्गीकृत किया गया है। दूसरे प्रकरण में रागाङ्ग, भाषाङ्ग, क्रियाङ्ग, और उपाङ्ग कहे गए हैं। इसके भी पूर्व प्रसिद्ध और अधुना प्रसिद्ध ये दो वर्ग बनाए गए हैं जिनका विवरण इस प्रकार है। पूर्व प्रसिद्ध रागों में 8 रागाङ्ग, 11 भाषाङ्ग, 12 क्रियाङ्ग और 3 उपाङ्ग रागों का नाम दिया गया है। जिनका कुल योग (34) है। अधुनाप्रसिद्ध रागों में 13 रागाङ्ग, 9 भाषाङ्ग, 27 क्रियाङ्ग और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

3 उपांग रागों का उल्लेख है जिनकी कुल संख्या 52 है। आगे सारिणी में सभी दस वर्गों के रागों का विवरण दिया जा रहा है:–

राग	संख्या	
ग्रामराग	30	
उपराग	8	
राग	20	
भाषा	96	
विभाषा	20	
अन्तरभाषा	4	योग = 178

रागाङ्ग	पूर्व प्रसिद्ध	8	21
	अधुना प्रसिद्ध	13	
भाषाङ्ग	पूर्व प्रसिद्ध	11	20
	अधुना प्रसिद्ध	9	
क्रियाङ्ग	पूर्व प्रसिद्ध	12	15
	अधुना प्रसिद्ध	3	
उपाङ्ग	पूर्व प्रसिद्ध	3	30
	अधुना प्रसिद्ध	27	
		योग	= 86
		कुल राग	(178 + 86 =) 264

यही रागों के दस वर्ग हैं। जिन्हें हम आज दशविध रागवर्गीकरण के नाम से जानते हैं। शार्ङ्गदेव ने संगीत-रत्नाकर में लगभग आधे रागों का स्वर-विस्तार कुछ रागों की तालबद्ध आक्षिप्तिका और करण आदि का भी उल्लेख किया है।

इसमें ग्रामराग और उपराग के पश्चात् राग शीर्षक के अन्तर्गत बीस राग कहे गए हैं जिनमें श्री, भैरव, मेघ आदि राग वर्तमान में भी उपलब्ध हैं। पन्द्रह भाषा जनक रागों में हिन्दोल और भिन्न-षड्ज हैं जो आज भी प्रचार में हैं। अधुना-प्रसिद्ध रागों में बिलावल, कामोद, छायानट, भैरवी, मल्हार आदि देखे जा सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकीर्णकाध्याय (Mislaneous):- इस अध्याय में उन पारिभाषिक शब्दों को रखा गया है जो किसी अन्य अध्याय में नहीं वर्णित किए जा सकते थे। जैसे- वाग्गेयकार गायक के गुण-दोष, शब्द (आवाज़) के गुण-दोष, गमक के पन्द्रह प्रकार, 96 स्थाय भेद, आलप्ति, वृन्दगान आदि ग्यारह परिभाषिक शब्दों को इस अध्याय में दिया गया है।

आवाज़ के गुण-दोषः- संगीत-रत्नाकर में आवाज़ के गुण-दोष को आयुर्वेद के धातुओं से समझाया गया है कि वात, पित्त, कफ़ और सन्निपात इन चार धातुओं के सन्तुलन से शरीर स्वस्थ रहता है। इनके असन्तुलन से ही रोग पैदा होते हैं। कफ़ प्रधान व्यक्ति की आवाज़ सुरीली, मधुर व सुकुमार कही गई है। पित्त प्रधान वालों की आवाज़ गम्भीर तथा तीनों सप्तकों मे सहजता से जाने वाली, एवं वात् प्रधान वालों की आवाज़ ऊँचे स्वर वाली, खोखली, कठोर व मोटी बताई गई है। वैज्ञानिक आवाज़ के गुण-दोष के कारणों पर आज भी शोध कर रहे हैं। आवाज़ मधुर और कटु होने के कारणों पर यदि शार्ङ्गदेव के शब्द-भेद से मिलान करके समझा जाए तो सम्भव है कि किसी अनुकूल परिणाम पर पँहुचा जा सके। स्थाय-भेद वाला बिन्दु भी आज चर्चा से बाहर है। राग की सबसे छोटी मूल इकाई स्वर है, उससे बड़ी इकाई कुछ या कई स्वरों से मिल कर बनने वाले स्वरगुच्छ की संज्ञा स्थाय है। सं. र. में स्थायों के मुख्य वर्ग दो हैं- प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध, इनके पुनः दो-दो भेद किए है- असंकीर्ण और संकीर्ण। इस तरह 4 प्रकार के स्थाय हुए-प्रसिद्ध असंकीर्ण 10, प्रसिद्ध संकीर्ण 33, अप्रसिद्ध असंकीर्ण 20 और अप्रसिद्ध संकीर्ण 33 कुल 96। इनके अतिरिक्त गमको के मिश्रण से 36 मिश्र स्थाय शार्ङ्गदेव ने संगीत रत्नाकर में दिये हैं। यद्यपि आजकल इस विषय में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है।

वृन्दगानः- वृन्दगान पर भी संगीत-रत्नाकर के निर्देशों का लाभ लिया जा सकता है। वर्तमान में वृन्दगान और वृन्दवादन का प्रचार बढ़ रहा है। वृन्दगान में हम पाश्चात्यों का अनुकरण कर रहे हैं। संगीत-रत्नाकर में वृन्दगान (समूह-गान) पर विचार प्रस्तुत किए गए हैं। यदि हम इनका लाभ उठा कर नवीनता के साथ प्राचीनता का समन्वय कर दें तो सम्भव है कि एक आकर्षक उपलब्धि प्राप्त हो।

प्रबन्धाध्यायः- संगीत-रत्नाकर के इस अध्याय में प्रबन्ध का वर्णन है। प्रबन्ध यानी बन्दिश, जिसे वस्तु या रूपक भी कहा गया है। किसी भी बन्दिश के गेय भाग को धातु और पद (गीत) भाग को अंग कहा गया है। छह अंगों से लेकर दो अंगों वाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रबन्ध की पाँचः– मेदिनी, आनन्दिनी, दीपनी, भावनी और तारावली जातियाँ दी गई हैं। दो धातु वाले, तीन धातु वाले या चार धातु वाले प्रबन्धों के तीन भेद दिए गए हैं। शार्ङ्गदेव ने प्रबन्धों के तीन वर्ग बनाए हैंः– सूड, आलिक्रम, विप्रकीर्ण।।

सूड के अन्तर्गत आठ भेद हैंः– एला, करण, ढेंकी वर्तनी, झोंबड, लम्भ, रासक और एकताली।

आलिक्रम के प्रबन्ध में चौबीस प्रकार कहे गए हैं साथ ही सूड के आठ प्रकारों को मिलाकर बत्तीस संख्या भी दी गई है।

आलिक्रम के कुछ नाम इस प्रकार हैं– वर्ण, वर्ण-स्वर, गद्य, कैवाड, तुरग लीला, गज लीला, स्वरार्थ प्रबन्ध। आज भी वैचित्र्य के लिए स्वरार्थ प्रबन्ध गाया जाता है। इसमें सात स्वरों के अक्षरों की मात्राओं को आवश्यकतानुसार परिवर्तित करके अर्थपूर्ण गीत बनाकर गाया जाता है। जैसे–

'गगरी सिर पर धरी'

इसमें ग, ग, रे, सा, रे, प, रे, ध, रे स्वरों को गाना होगा अर्थात् स्वरलिपि में इसी प्रकार लिखा जाएगा।

छत्तीस प्रकार के विप्रकीर्ण-प्रबन्धों का उल्लेख संगीत-रत्नाकर में है। सात सालग-प्रबन्ध भी चतुर्थ वर्ग में दिए गए हैं। मोटे तौर पर अक्षर-भेद से, मात्रा भेद से, धातु भेद से, किस पंक्ति को दो बार गाना है, किसे एक बार गाना है? किन दो भागों का स्वरांश एकसा होगा इत्यादि अनेक प्रकार के भेद से प्रबन्धों के हज़ारों प्रबन्ध बताए गए हैं। वर्तमान संगीत में प्रबन्धों के प्रकारों की ओर सबसे कम ध्यान दिया जाता है। प्राचीन संगीत के प्रबन्धों में कितनी छोटी-छोटी बातों के भेद से अन्तर आ जाता था, आज हम उसकी ओर सोच ही नहीं पाते हैं। प्रबन्धों से ही आगे चलकर ध्रुपद-शैली का विकास हुआ।

तालाध्यायः– इस अध्याय के मार्गताल और देशीताल ये दो भाग किए गए हैं। मार्गताल पाँच कहे गए हैंः– (1) चच्चत्पुट, (2) चाचपुट, (3) षटपितापुत्रक, (इसके दो और भी नाम हैं– पञ्चपाणि और उत्तर), (4) उद्‌घट्ट और (5) सम्पक्वेष्टाक। इनके एकक्ल, द्विकल और चतुष्कल का सम्बन्ध क्रमशः चित्र, वार्तिक और दक्षिण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मार्ग से जोड़ा गया है। चौदह गीतकों का विस्तृत वर्णन दिया गया है। जिनके नाम इस प्रकार हैं–

शुद्ध गीत

गीतक		प्रकरण	
1. मद्रक	2. अपरान्तक	1. छन्दक	2. आसारित
3. उल्लोप्यक	4. प्रकरी	3. वर्धमान	4. पाणिक
5. औवेणक	6. रोविन्दक	5. ऋक्	6. गाथा
7. उत्तर (शुद्धगीत के चौदह भेदों का सामान्य नाम भी गीतक है)		7. साम (पूर्वलिखित सात भेद तथा प्रस्तुत चौदह भेदों का सामान्य नाम भी प्रकरण है)	

ये चौदह शुद्धगीतक गान्धर्व के अन्तर्गत कहे गए हैं। संगीत-राज में इन्हें 'गीतरत्नकोश' के प्रबन्धोल्लास के अन्तर्गत स्वतन्त्र रूप से 'गीतक परीक्षण' में रखा गया है। कुम्भा के अनुसार यद्यपि इन गीतकों में ताल प्रमुख है तथापि स्वर-ताल-पद से बँधे होने के कारण इन्हें प्रबन्धोल्लास में अलग गीतक-परीक्षण में रखा है जबकि शाङ्गदेव ने तालाध्याय में मार्गतालों के अन्तर्गत गीतकों को स्थान दिया है।

तालाध्याय का लगभग आधा भाग गीतकों के वर्णन को दिया गया है। अब प्रश्न यह उठता है कि गीतकों को तालाध्याय में क्यों रखा गया ? इसका उत्तर यह है कि गाने से अधिक ताल का विधान इन गीतकों में है अतः इन्हें तालाध्याय में ही रखना पड़ा।

तालाध्याय के दूसरे भाग में देशी-तालों का वर्णन है। इसमें शाङ्गदेव ने एक सौ बीस तालों का मात्रा और विभाग सहित विधान किया है। तालों के कम से कम द्रुत (आधी) और अधिक से अधिक प्लुत (तीन मात्रा) के विभाग हैं चार मात्राओं के विभाग वाली तालें भी दी गई है पर ऐसे विभागों को काकपद नहीं कहा गया, ब्लकि चार अंक से दिखाया गया है। अन्तिम दो तालें शाङ्गदेव ने अपने नाम से दी हैं। एक सौ उन्नीस क्रम पर 'निःशंक' नाम की ताल है और एक सौ बीस क्रम पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'शार्गदेव' नामक ताल है। यह क्रमशः तालें ग्यारह-पन्द्रह मात्राओं की हैं। यहाँ दोनों तालों को विभाग सहित दिया जा रहा है–

निःशंक–	लघु	गुरु	गुरु	प्लुत	गुरु	गुरु	गुरु	लघु	
	।	ऽ	ऽ	ऽ́	ऽ	ऽ	ऽ	।	= 15मात्राएँ

शार्गदेव ताल–	द्रुत	द्रुत	गुरु	प्लुत	गुरु	गुरु	लघु	
	0	0	ऽ	ऽ́	ऽ	ऽ	।	= 11मात्राएँ

इन एक-सौ-बीस तालों के अतिरिक्त भी अनेक तालें प्रचार में हो सकती हैं पर उनका वर्णन न करके ताल के प्रस्तार दिए हैं जिनके माध्यम से अधिकतम तालों का निर्माण किया जा सकता है। प्रस्तार का अर्थ है अधिकतम फैलाव यानी किसी बड़े अंग जैसे- गुरु या प्लुत के कितने प्रस्तार बन सकते हैं इस पर शार्ङ्गदेव का चिन्तन शोध का विषय है। उदाहरण के लिए प्लुत के उन्नीस प्रस्तार बनते हैं। इनमें कितने द्रुत से आरम्भ होंगे, कुल कितने द्रुत, लघु या गुरु आएँगे, उनका क्रम क्या होगा, अमुक प्रस्तार की कौन सी संख्या होगी या अमुक संख्या का कौन सा प्रस्तार होगा इत्यादि यह 'नष्ट' और 'उद्दिष्ट' विधि से जाना जाता है। कुल उन्नीस प्रत्यय दिए गए हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं– (1) प्रस्तार, (2) संख्या, (3) नष्ट, (4) उद्दिष्ट, (5) पाताल, (6) द्रुतमेरु, (7) लघुमेरु, (8) गुरुमेरु, (9) प्लुतमेरु, (10) संयोगमेरु, (11) खण्डप्रस्तार। आगे चारों मेरुओं के नष्ट व उद्दिष्ट समझाए गए हैं।

तालाध्याय को यदि चार भागों में विभक्त करके देखें तो एक से लेकर बावन (1 से 52) तक के श्लोकों में ताल के वर्तमान दस प्राण व पाँच मार्गताल कहे गए हैं। श्लोक संख्या 53 से 235 तक गीतक, 236 से 311 तक देशी तालें और 312 से 408 यानी अन्त तक ताल-प्रस्तार दिए गए हैं।

वाद्याध्यायः– वाद्याध्याय के अन्तर्गत वाद्य के चार भेद बताए गए हैं– (1) तत-वाद्य, (2) सुषिर-वाद्य, (3) अवनद्ध-वाद्य और (4) घनवाद्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत-वाद्यः- इसके अन्तर्गत ये वर्णित है-

(1) तत-वाद्य के सामान्य लक्षण।

(2) श्रुति और स्वर के भेद से वीणाओं के दो प्रकार।

(3) एक-तन्त्री वीणा के लक्षण।

(4) नकुल आदि पाँच वीणाओं के लक्षण।

(5) आलापिनी के लक्षण।

(6) किन्नरी के तीन भेद-वृहदी, मध्यमा और लघ्वी।

(7) पिनाकी वीणा के लक्षण।

(8) निःशंक वीणा के लक्षण।

(9) वीणा वादक के गुण-दोष।

सुषिर-वाद्यः- सुषिर के अन्तर्गत बाँसुरी (वंशी) के लक्षण एवं उसके भेद, बाँसुरी में स्वरों की उत्पत्ति, वीणा की तरह बाँसुरी में भी धातु का वर्णन एवं फूँक मारने के गुण व दोष आदि दिए गए हैं। अन्य सुषिर-वाद्यों के नाम व उनके लक्षण पाव, पाविका, मुरली, मधुकरी, काहला, तुण्डकिनी, चुक्का, श्रृंग और शंख वर्णित हैं।

आनद्ध या अवनद्ध वाद्यः- अवनद्ध-वाद्य के अन्तर्गत पटवाद्य के मार्ग और देशी भेद से दो रूपों का वर्णन है। पट के वर्ण (अक्षर), मतान्तर से पाटों का भेद, नाग-बन्ध आदि के 35 हस्त पाटों का निरूपण, नन्दिकेश्वर द्वारा कहे गए पाटाक्षर (हस्तपाट), 21 हुडुक-वाद्य के पाट, मार्दलिक के गुण एवं दोष और मार्दलिक के भेद, घट, ढक्का, डमरू, दुन्दुभि, तुम्बकी, भेरी आदि का उल्लेख है।

अवनद्ध-वाद्यों में प्रयुक्त होनेवाली लकड़ी और चमड़े के गुण-दोष दिए गए हैं।

घनवाद्यः- घनवाद्य के अन्तर्गत ताल के लक्षण देकर निम्न छह वाद्यों का वर्णन किया गया है- घण्टा, क्षुद्रघण्टा, जयघण्टा, काम्रा, शुक्ति, पट्ट बताए हैं तथा अन्त में घनवाद्य एवं वादक के गुण-दोष दिए गए हैं।

नृत्याध्यायः- पण्डित शार्गदेव ने नृत्य का विशद विवेचन किया है। नृत्याध्याय के अन्तर्गत निम्न बिन्दुओं पर विचार किया गया है- नाट्य की उत्पत्ति, अभिनय के भेद, नृत्य एवं नृत्त का लक्षण, आगिंक अभिनय के भेदों में:- सिर के चौदह, हाथ के सरसठ, वक्ष के पाँच, पार्श्व के पाँच, कटि के पाँच एवं चरण के तेरह भेदों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार अन्य सभी अंगों के भी अलग-अलग मुद्राओं का विस्तृत वर्णन किया है। जैसे-ग्रीवा के नौ, बाहु के बावन, दृष्टि के छत्तीस भेद आदि।

हमारा विषय नृत्य नहीं है। अतः यहाँ मूल ग्रन्थ संगीत-रत्नाकर के नृत्याध्याय की विषय-सूची के आधार पर परिचय मात्र दिया गया है। आचार्य शार्ङ्गदेव ने संगीत-रत्नाकर नामक विशाल ग्रन्थ इतने विश्वास से लिखा है कि उसमें कही भी सन्देह नहीं है इसलिए शार्ङ्गदेव अपने आपको निःशंक कहते हैं। उन्होंने संगीत सम्बन्धी ज्ञान ऐसा प्रस्तुत किया कि यह ग्रन्थ परवर्ती ग्रन्थकारों का आधार ग्रन्थ बन गया। आज भी संगीत सम्बन्धी ग्रन्थ बिना संगीत-रत्नाकर की सहायता के लिखा ही नहीं जा सकता। अभी तो रत्नाकर का ग्राम-मूर्च्छना वाला भाग समझा जाना शेष है इसीलिए संगीत-रत्नाकर के रागों को गाया नहीं जा सकता।

आचार्य बृहस्पति ने कुछ जातियों को लक्षणों के आधार पर तैयार करके आकाशवाणी से गवाया था। डॉ. प्रेमलता शर्मा ने भी प्राचीन संगीत को समझने में समय लगाया और गीतकों को गवाया। हमें एक नवीन सूत्र समझ में आ रहा है कि संगीत-रत्नाकर में रागों के वर्णन में अनेक रागों की ऋतुएँ बताई गई हैं जिनमें से सब तो नहीं लेकिन वर्षा-ऋतु के राग तो हमारे विचार से आधुनिक मल्हार जैसे ही रहे होंगे। संगीत-रत्नाकर का 'षड्ज-ग्राम' और 'टक्क-राग' वर्षा-ऋतु के राग हैं। इस ग्रन्थ पर यदि विद्वान समर्पित भाव से समय लगाए तो सम्भवतः रत्नाकर के स्वरों का ज्ञान हो सकेगा जिससे हमारी विशाल संगीत-धरोहर जो बन्द ख़ज़ाने में पड़ी है, से संगीत जगत धन्य हो सकेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर-मेल-कलानिधि

लेखक परिचय :- स्वर मेल कलानिधि का रचना काल सन् 1550 ई0 है और इसके लेखक रामामात्य है, रामामात्य (राम + अमात्य = रामामात्य) विजयनगर के महामंत्री थे, ये कृष्णदेव राय के दामाद तथा रामकृष्ण कवि के अनुसार कल्लिनाथ के दौहित्र (धेवते) थे। रामामात्य के पिता शाल्वतिम्म राज्य के महामंत्री थे, इसीलिए स्वरमेल कलानिधि के प्रत्येक अध्याय के अन्त में रामामात्य को तिम्म अमात्य का पुत्र कहा गया है। कृष्णदेव राय के बाद उनका भाई शासक बना। उसकी मृत्यु के पश्चात् सदाशिव 1542 ई0 में विजयनगर का शासक बना। सदाशिव तो नाममात्र का शासक था, रामामात्य ही अनुभवी एवं विद्वान होने के कारण राज्य का सारा शासन कार्य करते थे। रामामात्य ने पड़ोसी मुस्लिम शासकों से सम्बन्ध बढ़ाये 1565 ई0 में दक्षिण के मुस्लिम शासकों ने संगठित होकर निज़ामशाह के नेतृत्व में विजयनगर पर आक्रमण किया, एवं निज़ाम ने रामामात्य का वध किया उस समय रामामात्य की आयु 97 वर्ष भी (मु.भा.स.पृ.-42-45)।

स्वर मेल कलानिधि दक्षिणी संगीत पद्धति का सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में पाँच प्रकरण हैं:- (1) उपोधघात, (2) स्वर, (3) वीणा, (4) मेल और (5) राग-प्रकरण

1. उपोधघात-प्रकरणः- इस अध्याय में सम्पूर्ण ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय दिया गया है जैसे कि स्वर-प्रकरण में संगीत की प्रशंसा, गान्धर्व और गान का भेद, स्थान (सप्तक), श्रुति, शुद्ध-विकृत स्वर आदि। वीणा-प्रकरण में वीणा को मिलाने, उस पर शुद्ध व विकृत स्वर निकालने के विषय में वर्णित किया गया है। मेल प्रकरण में गायकों के बीस और वैणिकों के पन्द्रह मेलों का वर्णन है। राग-प्रकरण में रागों के तीन वर्ग बनाए गए हैं जिनमें उत्तम के बीस, मध्यम के पन्द्रह और अधम के तेंतीस राग गिनाए हैं।

2. स्वर-प्रकरणः- इस प्रकरण में सर्वप्रथम संगीत की प्रशंसा की गई है यथा रोता हुआ बालक संगीत सुनते ही हँसने लगता है, मृग संगीत के प्रभाववश अपने प्राणों को बहेलिए के हाथ में दे देता है, कालानाग भी संगीत के वश में आकर अपने आपको समर्पित कर क्रोध मुक्त हो जाता है आदि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनादि काल से जो संगीत प्रचार में है वह गान्धर्व है जिसकी रचना ब्रह्मा ने की है और जिसका उद्देश्य आत्म-कल्याण है वह गान्धर्व है इसके विपरीत गान वाग्गेयकार द्वारा रचा गया है जिसका उद्देश्य जन मनोरञ्जन है। जब आत्मा को बोलने की इच्छा होती है तब वह मन को, मन देहस्थ अग्नि को और अग्नि वायु को प्रेरित करती है तब ब्रह्म-ग्रन्थि स्थित वायु क्रमशः ऊपर चढ़ती हुई नाभि, हृदय, कण्ठ, मूर्धा और मुख इन स्थानों से पाँच प्रकार के नाद (ध्वनि) उत्पन्न करती हैं।

नाद के पाँच भेद हैं:–अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, अपुष्ट, पुष्ट और कृत्रिम। जिसमें हृदय कण्ठ व मूर्धा में 22 नाड़ियों से टकराकर 22 श्रुतियों की उत्पत्ति का उल्लेख है तत्पश्चात् स्वर की परिभाषा दी गई है, कहा गया है कि स्वर स्निग्ध और स्वयं आनन्द देने वाला नाद होता है। प्राचीन ग्रन्थकारों की भाँति रामामात्य ने 4, 7, 9, 13, 17, 20 और 22 क्रम की श्रुतियों पर अपने शुद्ध स्वर सा, रे, ग, म, प, ध और नि स्वीकार किए हैं जिसे मुखारी नाम दिया जो उत्तरी-संगीत में सा, रे॒ रे म प ध॒ ध होते हैं। विकृत स्वरों के विषय में संगीत रत्नाकर के 12 विकृत स्वरों में से केवल 7 विकृत स्वर रामामात्य ने स्वीकार किए हैं। शार्गदेव के अच्युत-षड्ज, विकृत ऋषभ, अच्युत मध्यम, कैशिक पंचम और विकृत धैवत को रामामात्य ने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि ये अपनी श्रुति को नहीं छोड़ते यानी इनकी अलग ध्वनि नहीं है। शेष 7 विकृत स्वरों में से 3 के नवीन संयुक्त नाम च्युत षड्ज को च्युत षड्ज-निषाद, च्युत मध्यम को च्युत मध्यम-गान्धार और मध्यम ग्रामिक पंचम को च्युत पंचम-मध्यम नाम दिए हैं। शेष चार प्राचीन नामों को ही स्वीकार किया है जो कि साधारण गान्धार, अन्तर गान्धार, कैशिक निषाद व काकली निषाद हैं। तीन स्वरों, जिनके संयुक्त नाम हैं के विषय में ग्रन्थ में कहा गया है कि च्युत षड्ज-निषाद, निषाद का च्युत मध्यम-गान्धार, गान्धार का और च्युत पंचम- मध्यम, मध्यम का चढ़ा हुआ रूप है तथा चूँकि च्युत षड्ज-निषाद, निषाद का चढ़ा हुआ रूप है तथा षड्ज के क्षेत्र में है अतः उसका नाम दोनों के संयोग से च्युत षड्ज-निषाद रखा गया। इसी प्रकार च्युत मध्यम-गान्धार और च्युत पंचम-मध्यम को भी स्वरमेल कलानिधि में स्पष्ट किया गया है। इनके अतिरिक्त व्यवहार में चार स्वरों के दो-दो नाम हैं जब शुद्ध गान्धार तथा साधारण गान्धार को ऋषभ कहेंगे तब क्रमशः उन्हें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंचश्रुतिक तथा षट्श्रुतिक ऋषभ कहा जाएगा, इसी तरह जब शुद्ध निषाद तथा कैशिक निषाद को धैवत कहेंगे तब पंचश्रुतिक तथा षट्श्रुतिक धैवत कहा जाएगा। इन्हें अलग नाम तो दिया गया है पर इनकी अलग ध्वनि नहीं है इसलिए इनकी गणना विकृत स्वरों में अलग से नहीं की गई। आगे रामामात्य के शुद्ध-विकृत स्वर सारिणी में स्पष्ट हैं:

श्रुति संख्या	शुद्ध-स्वर	विकृत-स्वर	झूठेविकृत-स्वर	हिन्दुस्मानी स्वर
1		कैशिक-निषाद	षट्श्रुतिक-धैवत	
2		काकली-निषाद		
3		च्युत-षड्ज-निषाद		
4	षड्ज			सा
5				
6				
7	ऋषभ			रे
8				
9	गान्धार		पञ्चश्रुतिक-ऋषभ	रे
10		साधारण-गान्धार	षट्श्रुतिक-ऋषभ	ग
11		अन्तर-गान्धार		ग
12		च्युत-मध्यम-गान्धार		
13	मध्यम			म
14				
15				
16		च्युत-पंचम-मध्यम		म॑
17	पंचम			प
18				
19				
20	धैवत			ध
21				
22	निषाद		पञ्चश्रुतिक-धैवत	ध
1		कैशिक निषाद		नि
2		काकली निषाद		नि
3		च्युत षड्ज निषाद		
4				सा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

3. वीणा प्रकरणः- वीणा पर चार तारों को क्रमशः प्रथम को अनुमन्द्र-षड्ज में जिसे उत्तर में अतिमन्द्र कहा जाता है, मिलाने का निर्देश है। दूसरे को अनुनन्द पंचम में, तीसरे को मन्द्र षड्ज में और चौथे तार को मन्द्र मध्यम में मिलाने के लिए कहा गया है। तत्पश्चात् छह परदों पर क्रमशः स्वर बताए गए हैं। खुले तार पर अनुमन्द्र-षड्ज, प्रथम पर्दे पर शुद्ध-ऋषभ, दूसरे पर्दे पर शुद्ध गान्धार, तीसरे पर साध ाारण गान्धार, चौथे पर च्युत मध्यम-गान्धार, पाँचवें पर मध्यम और छठे पर्दे पर च्युत पंचम-मध्यम बताए हैं। इस प्रकार शेष तारों पर भी इसी क्रमानुसार स्वरों को दिया गया है, जो सारिणी (हि.सं.प.तुल.अ.,पृ.-92) से स्पष्ट हैः-

सारिणी

चतुर्थ तार मन्द्र-मध्यम	तृतीय तार मन्द्र-षड्ज	द्वितीय तार अतिमन्द्र-पंचम	प्रथम तार अतिमन्द्र-षड्ज	
शुद्ध म़	शुद्ध सा़	शुद्ध प़	शुद्ध सा़	मेरु या ब्रिज
च्युत प़-म़	शुद्ध रे़	शुद्ध ध़	शुद्ध रे़	प्रथम सारी
शुद्ध प़	शुद्ध ग़	शुद्ध नि़	शुद्ध ग़	द्वितीय सारी
शुद्ध ध़	साधारण ग़	कैशिक नि़	साधारण ग़	तृतीय सारी
शुद्ध नि़	च्युत म़-ग़	च्युत सा़-नि़	च्युत म़-ग़	चतुर्थ सारी
कैशिक नि़	शुद्ध म़	शुद्ध सा़	शुद्ध म़	पंचम सारी
च्युत सा़-नि़	च्युत प़-म़	शुद्ध रे़	च्युत प़-म़	षष्ठी सारी

4. मेल-प्रकरण- इस प्रकरण में गायकों के बीस और वैणिकों (वीणा-वादक) के 15 मेल कहे गए हैं। निम्न सारिणी में 15 के बाद के मेलों में च्युत-षड्ज-निषाद और च्युत-मध्यम-गान्धार के स्थान पर काकली-निषाद और अन्तर-गान्धार हैं। उत्तर-संगीत की दृष्टि से ये दोनों स्वर शुद्ध-निषाद और शुद्ध-गान्धार ही हैं। रामामात्य अन्तर और काकली नाम कम प्रयोग करना चाहते हैं, क्योंकि शार्ङ्गदेव ने अन्तर और काकली स्वरों का अल्प मात्रा में प्रयोग करने का निर्देश दिया है, इसलिए स्वरमेल कलानिधि में इन स्वरों का कम प्रयोग किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आगे हिन्दुस्तानी स्वरों के साथ रामामात्य के बीस मेल निम्न सारिणी में दिए गए हैं (हि. सं.प.तुल.अ.,पृ.-93):–

मेल–नाम	मेलगत–स्वर							हिन्दुस्तानी–स्वर
	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	
1. मुखारी	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	सा रे रे म प ध ध सां
2. मालवगौल	शुद्ध	शुद्ध	च्युत म-ग	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	च्युतसा-नि	सा रे ग म प ध नि सां
3. श्री	शुद्ध	पं.श्रु.	साधा.	शुद्ध	शुद्ध	पं.श्रु.	कैशिक	सा रे ग म प ध नि सा
4. सारंगनाट	शुद्ध	पं.श्रु.	च्युत म-ग	शुद्ध	शुद्ध	पं.श्रु.	च्युत सा-नि	सा रे ग म प ध नि सां
5. हिन्दोल	शुद्ध	पं.श्रु.	साधा.	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	कैशिक	सा रे ग म प ध नि सां
6.शुद्धरामक्रिया	शुद्ध	शुद्ध	च्युत म-ग	च्युत प-म	शुद्ध	शुद्ध	च्युत सा-नि	सा रे ग मं प ध नि सां
7. देशाक्षी	शुद्ध	ष.श्रु.	च्युत म-ग	शुद्ध म	शुद्ध	पं.श्रु.	च्युतसा-नि	सा ग ग म प ध नि सां
8. कन्नडगौल	शुद्ध	ष.श्रु.	च्युत म-ग	शुद्ध म	शुद्ध	पं.श्रु.	कैशिक	सा ग ग म प ध नि सां
9. शुद्धनाट	शुद्ध	ष.श्रु.	च्युत म-ग	शुद्ध म	शुद्ध	ष.श्रु.	च्युत सा-नि	सा ग ग म प नि नि सां
10.आहीरी	शुद्ध	पं.श्रु.	साधा.	शुद्ध म	शुद्ध	शुद्ध	च्युत सा-नि	सा रे ग म प ध नि सां
11.नादरामक्री	शुद्ध	शुद्ध	साधा.	शुद्ध म	शुद्ध	शुद्ध	च्युत सा-नि	सा रे ग म प ध नि सां
12.शुद्धवराली	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	च्युत प-म	शुद्ध	शुद्ध	च्युत सा-नि	सा रे रे मं प ध नि सां
13.रीतिगौड	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	पं.श्रु.	कैशिक	सा रे रे म प ध नि सां
14.वसन्तभैरवी	शुद्ध	शुद्ध	च्युतम-ग	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	कैशिक	सा रे ग म प ध नि सां
15.केदारगौड	शुद्ध	पं.श्रु.	च्युतम-ग	शुद्ध	शुद्ध	पं.श्रु.	च्युत सा-नि	सा रे ग म प ध नि सां
16.हेजुज्जी	शुद्ध	शुद्ध	अन्तर	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	काकली	सा रे ग म प ध नि सां
17.सामवराली	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	काकली	सा रे रे म प ध नि सां
18.रेवगुप्ति	शुद्ध	शुद्ध	अन्तर	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	सा रे ग म प ध ध सां
19.सामन्त	शुद्ध	ष.श्रु.	अन्तर	शुद्ध	शुद्ध	ष.श्रु.	काकली	सा ग ग म प नि नि सां
20.कांभोजी	शुद्ध	पं.श्रु.	अन्तर	शुद्ध	शुद्ध	पं.श्रु.	काकली	सा रे ग म प ध नि सां

(शब्द संक्षेपः–साधा.=साधारण, ष.श्रु.=षट्श्रुतिक, पं.श्रु.=पञ्चश्रुतिक)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आगे सारिणी में रामामात्य के बीस मेलों में रागों को वर्गीकृत करके दर्शाया गया है (हि.सं.प.तुल.अ.,पृ.-94) :-

सारिणी

क्रम	मेल नाम	जन्य राग
1.	मुखारी	1. मुखारी
2.	मालवगौड	1. मालवगौड 2. ललिता 3. वौली 4. सौराष्ट्र 5. गुर्जरी 6. मेचवौली 7. फलमञ्जरी 8. गुण्डक्री 9. सिन्धुरामक्री 10. छायागौल 141. कुरञ्जी 12. कन्नड बंगाल 13. मंगल कैशिक 14. मलहरी
3.	श्री	1. श्रीराग 2. भैरवी 3. गौली 4. धन्यासी 5. शुद्धभैरवी 6. बेलावली 7. मालवश्री 8. शंकराभरण 9. आंधाली 10. देवगान्धार 11. मध्यमादि
4.	सारंगनाट	1. सारंगनाट 2. सावेरी 3. सालंगभैरवी 4. नटनारायणी 5. शुद्धवसन्त 6. पूर्वगौड 7. कुन्तलवराली 8. भिन्नषड्ज 9. नारायणी
5.	हिन्दोल	1. हिन्दोल 2. मार्गहिन्दोल 3. भूपाल
6.	शुद्धरामक्री	1. शुद्धरामक्री 2. वौली 3. आर्द्रदेशी 4. दीपक
7.	देशाक्षी	1. देशाक्षी
8.	कन्नड गौल	1. कन्नडगौल 2. घण्टारव 3. शुद्धबंगाल 4. छायानट 5. तुरुष्कतोडी 6. नागध्वनि 7. देवक्रिया
9.	शुद्धनाट	1. शुद्धनाट
10.	आहीरी	1. आहीरी
11.	नादरामक्री	1. नादरामक्री
12.	शुद्धवराली	1. शुद्धवराली
13.	गौल	1. गौल
14.	वसन्तभैरवी	1. वसन्तभैरवी
15.	केदारगौल	1. केदारगौल 2. नारायणगौल
16.	हेजुज्जी	1. हेजुज्जी
17.	सामवराली	1. सामवराली
18.	रेवगुप्ति	1. रेवगुप्ति
19.	सामन्त	1. सामन्त
20.	कांभोजी	1. कांभोजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5. राग-प्रकरणः- स्वर मेल कलानिधि के इस प्रकरण में रागों के उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन वर्ग किए गए हैं:- बीस राग उत्तम, पन्द्रह राग मध्यम और तेंतीस राग अधम माने हैं। बीस उत्तम राग जो कि मेल नाम वाले आश्रय राग हैं इनमें आलाप, गीत व प्रबन्ध हो सकते हैं और उल्लेख है कि ये संकीर्ण नहीं हैं जिससे इनमें स्वर विस्तार की सम्भावना अधिक है। पन्द्रह मध्यम रागों में आलाप के विस्तार की सम्भावना अपेक्षाकृत कम है और वे अधिक प्रयोग में नहीं हैं इसलिए ऐसे रागों को मध्यम वर्ग में रखा गया है। तेंतीस राग अधम वर्ग के हैं जो पूरी तरह संकीर्ण हैं। रागों में संरचनागत भ्रम होने के कारण ये अधम कहलाते हैं। ऐसे रागों में प्रबन्ध नहीं होते, इसका भी स्वर मेल कलानिधि में वर्णन है।

रामामात्य द्वारा सभी रागों का वर्णन करते समय प्रत्येक राग का ग्रह, अंश, न्यास दिया गया है। जो स्वर राग में नहीं लगते उनका भी वर्णन है। अधिकतर रागों के गाने का समय भी दिया गया है। अन्त में शक् संवत् 1472 की श्रावण-साधारण-मास में शुक्ल-पक्ष की दसवीं तिथि देकर ग्रन्थ का समापन कर दिया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्दण्डी प्रकाशिका

कर्नाटकी संगीत का यह सर्वोत्तम ग्रन्थ माना जाता है। इसकी रचना सन् 1635 ई. में व्यंकटमखी ने की थी। संगीत के मुख्य चार आधार माने जाते थे जिन्हें दण्ड कहा जाता था। इस ग्रन्थ में उन चार दण्डों पर विधिवत प्रकाश डाला गया है, इसीलिए पं. व्यंकटमखी ने इसका नाम चतुर्दण्डी प्रकाशिका रखा। वे चार दण्ड निम्न थे- आलाप, ठाय (स्थाय),गीत व प्रबन्ध। गोपाल नायक के एक ध्रुपद में कहा गया है- "चारों दांड बाँध लाए" अर्थात् गोपाल नायक को इन चारों दण्डों पर पूर्ण अधिकार था। 72 मेलों और विकृत स्वरों की अधिकतम संख्या की स्पष्ट मान्यता के कारण चतुर्दण्डी प्रकाशिका विद्वज्जनों के मध्य प्रारम्भ से ही सम्मान पाता रहा है। पं. भातखण्डे जी भी चतुर्दण्डी-प्रकाशिका से बहुत प्रभावित थे। जिस प्रकार इस ग्रन्थ के माध्यम से दक्षिणी संगीत व्यवस्थित हुआ है उसी प्रकार पं. भातखण्डे जी उत्तरी-संगीत को भी व्यवस्थित करना चाहते थे। भातखण्डे जी ने थाट-राग वर्गीकरण और सप्तक में 12 स्वरों (सात शुद्ध और पाँच विकृत) की मान्यता व्यंकटमखी से ही प्राप्त की है।

विषय-वस्तुः- इस ग्रन्थ में दस अध्याय या प्रकरण इस प्रकार हैं:-

(1) वीणा, (2) श्रुति, (3) स्वर, (4) मेल, (5) राग, (6) आलाप, (7) ठाय, (8) गीत, (9) प्रबन्ध और (10) ताल-प्रकरण। (चतु0प्र0,पृ-1,श्लो.-6)

1- वीणा प्रकरणः- वीणाएँ तीन प्रकार की कही गई हैं:-

(1) शुद्धमेल-वीणा, (2) मध्यमेल-वीणा, (3) रघुनाथेन्द्र मेल-वीणा।

वीणा पर चार तार लगाने का विधान किया है। शुद्ध मेल वीणा में बाईं ओर से प्रथम तार मन्द्र-षड्ज, दूसरा मन्द्र-पञ्चम, तीसरा मध्य-षड्ज और चौथा मध्य-मध्यम में मिलाने का निर्देश है। इन चारों तारों के अतिरिक्त तीन और तार पार्श्व में कहे गए हैं जिनको क्रमशः तार-षड्ज, मध्य-पञ्चम और मध्य-षड्ज में मिलाने का विधान दिया है।

तारों के नीचे सितार की भाँति पर्दों का वर्णन है, जिन्हें पर्व कहा है। छह पर्दो के विषय में कहा गया है कि प्रथम तन्त्री के अनुसार पहला पर्दा शुद्ध ऋषभ, कहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया है कि प्रथम तन्त्री के अनुसार पहला पर्दा शुद्ध ऋषभ, दूसरा शुद्ध गांधार, तीसरा साधारण-गान्धार, चौथा अन्तर-गन्धार, पाँचवाँ शुद्ध गध्यम और छठा पर्दा वराली-मध्यम के लिए है। इसी प्रकार दूसरे, तीसरे व चौथे तारों पर जो-जो स्वर क्रम से बनते हैं, बताए गए हैं। मध्य सप्तक में पर्दों के स्वरों का विधान भी विस्तृत रूप से दिया गया है। इसी प्रकार मध्यमेल वीणा तथा रघुनाथेन्द्र मेल वीणा का भी वर्णन है।

2- श्रुति प्रकरणः- सर्वप्रथम श्रुति और स्वर के भेद का स्पष्टीकरण किया गया है। स्वर्ण और उससे बने आभूषणों में जो अन्तर है, वही श्रुति और स्वर में कहा गया है। प्राचीन ग्रन्थकार भरतादि के अनुसार व्यंकटमखी ने बाइस श्रुतियाँ स्वीकार की हैं। बाइस श्रुतियों में स्वरों का विभाजन करते हुए कहा है कि षड्ज से तीसरी श्रुति पर शुद्ध ऋषभ, इससे दूसरी श्रुति पर शुद्ध गान्धार, शुद्ध गान्धार से मध्यम की चार श्रुतियाँ हैं, जिनमें से प्रथम पर साधारण गान्धार, इससे दूसरी श्रुति पर अन्तर गान्धार और इससे एक श्रुति पर शुद्ध मध्यम कहा है। शुद्ध मध्यम से चार श्रुति का पंचम विद्वानों ने माना है, जिनमें से तीसरी श्रुति पर वराली मध्यम, वराली मध्यम से एक श्रुति पर पंचम, पंचम से तीसरी श्रुति पर शुद्ध धैवत, शुद्ध धैवत से दूसरी श्रुति पर शुद्ध निषाद है। षड्ज चार श्रुति का कहा गया है, जिसमें पहली श्रुति पर कैशिक निषाद, इससे दूसरी श्रुति पर काकली निषाद और इससे एक श्रुति पर स्वयं षड्ज विद्यमान है।

इस प्रकार व्यंकटमखी ने चतुर्दण्डी-प्रकाशिका में शुद्ध व विकृत 12 स्वरों को 22 श्रुतियों मे विभक्त किया है।

3- स्वर प्रकरणः- यह अध्याय व्यंकटमखी का सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। व्यंकटमखी ने स्वर प्रकरण में मुखारी राग के स्वरों को शुद्ध माना है। जिसके स्वर हिन्दुस्तानी संगीत के अनुसार सा <u>रे</u> रे म प <u>ध</u> ध सां होता है। उसका श्रुति विभाजन करते हुए कहा है :—

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्ज मध्यम पंचमाः।। 2।।
द्वे-द्वे निषादगान्धारो त्रिस्त्री ऋषभधैवतौ। (च.प्र.,पृ.-22)

अर्थात् षड्ज, मध्यम, पञ्चम की चार-चार; गान्धार, निषाद की दो-दो एवं ऋषभ, धैवत की तीन-तीन श्रुतियाँ हैं। सात शुद्ध व पाँच विकृत स्वर ग्रन्थकार ने माने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। लेखक का कथन है कि संगीत-रत्नाकर में 12 विकृत स्वर माने गए हैं। रामामात्य और सोमनाथ जो कि चतुर्दण्डी प्रकाशिका के पूर्व के ग्रन्थकार हैं, का नाम लिए बिना चुतर्दण्डी में कहा गया है कि कुछ लोग सात विकृत स्वर मानते हैं पर चतुर्दण्डी प्रकाशिका में कुल पाँच ही विकृत स्वर माने गए हैं। जिनके नाम हैं:– (1) साधारण गान्धार, (2) अन्तर गान्धार, (3) वराली मध्यम, (4) कैशिक निषाद और (5) काकली निषाद।

शुद्ध-गान्धार नौवीं श्रुति से एक श्रुति ऊँचा होकर दसवीं श्रुति पर साधारण गान्धार हो जाता है और वही दो श्रुति और ऊँचा होकर बारहवीं श्रुति पर अन्तर गान्धार कहलाता है, गान्धार के ये दो विकृत-रूप हुए। मध्यम का एक विकृत-रूप है जो कि पंचम की तीसरी श्रुति पर तथा शुद्ध-मध्यम से तीन श्रुति ऊँचा है एवं आरम्भ से सोलहवीं श्रुति पर है, इसे इन्होंने एक नया नाम वराली मध्यम दिया। इसी श्रुति पर रामामात्य ने 'च्युत-पंचम-मध्यम' व सोमनाथ ने 'मृदु-पंचम' कहा है। शुद्ध निषाद जो कि बाइसवीं श्रुति पर है, उससे आगे प्रथम श्रुति पर वह कैशिक निषाद और तीसरी श्रुति पर काकली निषाद कहलाता है। वराली मध्यम के अतिरिक्त साधारण गान्धार, अन्तर गान्धार, कैशिक निषाद और काकली निषाद इन चार विकृत स्वरों के नाम तो प्राचीन ही हैं। सबसे पहले चतुर्दण्डी में ही कुल पाँच विकृत स्वर दृढ़ता पूर्वक माने गए हैं जबकि उस समय के अन्य ग्रन्थकार इस विषय पर एकमत नहीं थे। इन पाँच विकृत स्वरों के अतिरिक्त चार नाम और दिए गए हैं जो किसी नवीन ध्वनि (स्वर) को तो नहीं दिखाते परन्तु वे विकृत-स्वर भिन्न-भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं। जैसे शुद्ध गान्धार के स्थान या श्रुति पर जब राग-श्री में ऋषभ का प्रयोग किया जाएगा तो उसे पञ्चश्रुतिक ऋषभ कहा जाएगा। यही ऋषभ जब एक श्रुति और अधिक ऊँचा होकर राग-नाट में प्रयुक्त होगा तो उसे षट्श्रुतिक ऋषभ माना जाएगा। ठीक इसी प्रकार शुद्ध निषाद की श्रुति पर जब धैवत गाया या बजाया जाएगा तो राग शंकराभरण में उसे पञ्चश्रुति धैवत और जब कैशिक निषाद की श्रुति पर धैवत होगा तो राग-नाट में उसे षट्श्रुतिक धैवत कहा जाएगा। इस प्रकार बारह स्वरों पर चतुर्दण्डी प्रकाशिका में सोलह नाम माने गए हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यंकटमखी के स्वर

(क) श्रुतियों के अनुसारः-

क्रम	श्रुतियाँ	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर	झूठे स्वर
1.	तीव्रा		कैशिक-नि	षटश्रुतिक-ध
2.				कुमद्वती
3.	मन्दा		काकली-नि	
4.	छन्दोवती	सा		
5.	दयावती			
6.	रञ्जनी			
7.	रक्तिका	रे		
8.	रौद्री			
9.	क्रोधा	ग		पञ्चश्रुतिक-रे
10.	वज्रिका		साधारण-ग	षटश्रुतिक-रे
11.	प्रसारिणी			
12.	प्रीति		अन्तर-ग	
13.	मार्जनी	म		
14.	क्षिति			
15.	रक्ता			
16.	सन्दीपनी		वराली-म	
17.	आलापिनी	प		
18.	मदन्ती			
19.	रोहिणी			
20.	रम्या	ध		
21.	उग्रा			
22	क्षोभिणी	नि		पञ्चश्रुतिक-ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ख) हिन्दुस्तानी स्वरों के अनुसारः–

क्रम	हिन्दुस्तानी स्वर	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर	झूठे स्वर
1.	सा	सा		
2.	रे	रे		
3.	रे	ग		पञ्चश्रुतिक–रे
4.	ग		साधारण–ग	षट्श्रुतिक–रे
5.	ग		अन्तर–ग	
6.	म	म		
7.	मं		वराली–म	
8.	प	प		
9.	ध	ध		
10.	ध	नि		पञ्चश्रुतिक–ध
11.	नि		कैशिक–नि	षट्श्रुतिक–ध
12.	नि		काकली–नि	
13.	सां	सां		

4- मेल-प्रकरण :- इस प्रकरण में व्यंकटमखी ने एक सप्तक में 72 मेल दिए हैं। इन्हीं 72 मेलों के कारण यह ग्रन्थ अधिक ख्याति प्राप्त कर सका है। पं0 भातखण्डे जी ने भी इन्हीं 72 मेलों में से उत्तरी-संगीत-पद्धति के लिए उपयुक्त दस थाट स्वीकार किए हैं। आगे इन 72 मेलों को बनाने की विधि दी जा रही हैः–

	पूर्वांग	उत्तरांग
1-	सा रे रे म	प ध ध सां
2-	सा रे ग म	प ध नि सां
3-	सा रे ग म	प ध नि सां
4-	सा रे ग म	प ध नि सां
5-	सा रे ग म	प ध नि सां
6-	सा ग ग म	प नि नि सां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वांग के प्रत्येक अर्धमेल के साथ उत्तरांग के सभी छहों अर्धमेलों को क्रमानुसार मिलाने पर छह पूर्णमेल तैयार होंगे। इसी प्रकार क्रमशः दूसरे, तीसरे, चौथे आदि के प्रत्येक पूर्वांग के साथ उत्तराङ्ग के सभी अर्धमेलों को बारी-बारी जोड़ने से (6 x 6=)36 पूर्णमेल तैयार हो जाएँगे। इन सभी मेलों में 'शुद्ध-मध्यम' है, अब यदि 'शुद्ध-मध्यम' के स्थान पर 'तीव्र-मध्यम' कर दिया जाए तो पुनः 36 और नवीन मेल तैयार हो जाएँगे। अतः इस प्रकार कुल (36 + 36 =) 72 मेल तैयार हो सकेंगे।

हिन्दुस्तानी संगीत की दृष्टि से पूर्वांग के प्रथम-क्रम में गान्धार नहीं है और छठे क्रम में ऋषभ नहीं है। इसी प्रकार उत्तरांग के प्रथम-क्रम में निषाद नहीं है और छठे क्रम में धैवत नहीं है। इस शंका का समाधान यह है कि पं. व्यंकटमखी के 12 स्वर हमारे 12 स्वरों के समान नहीं थे। व्यंकटमखी ने थाट को सम्पूर्ण करने हेतु कुछ स्वरों के काल्पनिक नाम दिए थे जो इस प्रकार हैं (च.प्र.,पृ.-40 श्लो.52, 53) –

हिन्दुस्तानी पूर्वार्द्ध स्वर-नाम	व्यंकटमखी के काल्पनिक-नाम
1-सा रे रे म	1-सा र ग म
2-सा रे ग म	2-सा र गि म
3-सा रे ग म	3-सा र गु म
4-सा रे ग म	4-सा रि गि म
5-सा रे ग म	5-सा रि गु म
6-सा ग ग म	6-सा रु गु म

हिन्दुस्तानी उत्तरार्द्ध स्वर नाम	व्यंकटमखी के काल्पनिक नाम
1-प ध ध सां	1-प ध न सां
2-प ध नि सां	2-प ध नि सां
3-प ध नि सां	3-प ध नु सां
4-प ध नि सां	4-प धि नि सां
5-प ध नि सां	5-प धि नु सां
6-प नि नि सां	6-प धु नु सां

इस प्रकार व्यंकटमखी ने स्वरों को कल्पित स्वर-नामों की संज्ञाएँ देकर अपने मेल (थाट) को स्थापित किया तथा गणितीय सहायता से 72 मेलों (थाटों) की रचना की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रे, ग, ध, नि स्वरों में अ, इ, उ मात्राओं का विभिन्न क्रमों में प्रयोग किया गया है। 'अ' का प्रयोग शुद्ध स्वर के लिए, 'इ' का शुद्ध से ऊपर वाले या पहले विकृत स्वरों के लिए तथा और ऊपर वाले यानी दूसरे विकृत स्वरों के लिए 'उ' का प्रयोग हुआ। थाट में स्वर क्रमानुसार रखे जाते हैं, अर्थात् ऊँचे स्वर के बाद कोई नीचा स्वर नहीं आ सकता है। अ-इ-उ भी क्रमशः एक दूसरे से बड़े हैं, अतः कहीं भी बड़े स्वर के बाद छोटे स्वर का प्रयोग नहीं हो सकता है। यदि ऐसा किया जाए तो थाट के स्वरों का क्रम भंग हो जाएगा। जैसे- सा रु ग म, सा रु गि म आदि नहीं हो सकता है क्योंकि 'रु' का अर्थ है रे (ऋषभ) का तीसरा रूप (कोमल गान्धार) और ग का अर्थ है ग (गान्धार) का पहला रूप (शुद्ध ऋषभ), अतः सा रु ग म का अर्थ सा ग रे म हो जाएगा और यह क्रम थाट के अनुसार अशुद्ध है। इसी तरह सा रु गि म भी नहीं हो सकता है क्योंकि 'रु' और 'गि' दोनों ही कोमल गान्धार के द्योतक हैं। मात्रा भेद से स्वरों के शुद्ध-विकृत रूप का ज्ञान कराने की विधि का निर्माण करके व्यंकटमखी ने पाठकों के लिए विषय को सुगम बना दिया ।

5- राग-प्रकरणः- जिस प्रकार उत्तर में अधिकतम 32 थाट हो सकते हैं पर प्रयोग में केवल 10 थाट ही आते हैं उसी प्रकार व्यंकटमखी ने 72 में से केवल 19 मेलों में ही तत्कालीन प्रचलित रागों को वर्गीकृत किया है। आगे सारिणी में जन्य-रागों सहित 19 मेल दिए जा रहे हैं:-

मेलों के स्वर

क्रम	मेल-नाम	स्वर							जन्य-राग
1	मुखारी	सा	शुद्ध-रे	शुद्ध-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	शुद्ध-ध	शुद्ध-नि मुखारी	
	(हि0-स्वर)	सा	रे	रे	म	प	ध	ध	
2	साम्वराली	सा	शुद्ध-रे	साधा-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	शुद्ध-ध	काक-नि	सामवराली
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	
3	भूपाल	सा	शुद्ध-रे	साधा-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	शुद्ध-ध	कैशि-नि	भूपाल,
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	भिन्न-षड्ज
4	हेजुज्जी	सा	शुद्ध-रे	अन्त-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	शुद्ध-ध	शुद्ध-नि	हेजुज्जी,
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	म	प	ध	ध	रेवगुप्ति
5	वसन्तभैरवी	सा	शुद्ध-रे	अन्त-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	शुद्ध-ध	कैशि-नि	वसन्तभैरवी
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

6	गौल	सा	शुद्ध रे	अन्त-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	शुद्ध-ध	काक-नि	गौल, गुण्डक्रिया,
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सालंगनाट
7	भैरवी	सा	पञ्च-रे	साधा-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	शुद्ध-ध	कैशि-नि	भैरवी
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	
8	आहीरी	सा	पञ्च-रे	साधा-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	शुद्ध-ध	काक-नि	आहीरी
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	
9	श्री	सा	पञ्च-रे	साधा-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	पञ्च-ध	कैशि-नि	श्री, सालंगभैरवी,
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	धन्यासी
10	कांभोजी	सा	पञ्च-रे	अन्त-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	पञ्च-ध	कैशि-नि	कांभेजी, केदारगोल
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	नारायणगोड
11	शंकराभरण	सा	पञ्च-रे	अन्त-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	पञ्च-ध	काक-नि	शंकराभरण, साम
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	आरभी, नागध्वनि
12	सामन्त	सा	पञ्च-रे	अन्त-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	षट-ध	काक-नि	सामन्त
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	म	प	नि	नि	
13	देशाक्षी	सा	षट-रे	अन्त-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	पञ्च-ध	काक-नि	देशाक्षी
	(हि0-स्वर)	सा	ग	ग	म	प	ध	नि	
14	नाट	सा	षट-रे	अन्त-ग	शुद्ध-म	शुद्ध-प	षट-ध	काक-नि	नाट
	(हि0-स्वर)	सा	ग	ग	म	प	नि	नि	
15	शुद्धवराली	सा	शुद्ध-रे	शुद्ध-ग	वरा-म	शुद्ध-प	शुद्ध-ध	काक-नि	शुद्धवराली
	(हि0-स्वर)	सा	रे	रे	मं	प	ध	नि	
16	पन्तुवराली	सा	शुद्ध-रे	साधा-ग	वरा-म	शुद्ध-प	शुद्ध-ध	काक-नि	पन्तुवराली
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	मं	प	ध	नि	
17	शुद्धरामक्री	सा	शुद्ध-रे	अन्त-ग	वरा-म	शुद्ध-प	शुद्ध-ध	काक-नि	शुद्धरामक्री
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	मं	प	ध	नि	
18	सिंहरव	सा	पञ्च-रे	साधा-ग	वरा-म	शुद्ध-प	पञ्च-ध	कैशि-नि	सिंहरव
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	मं	प	ध	नि	
19	कल्याणी	सा	पञ्च-रे	अन्त-ग	वरा-म	शुद्ध-प	पञ्च-ध	काक-नि	कल्याणी
	(हि0-स्वर)	सा	रे	ग	मं	प	ध	नि	

शब्द संक्षेपः– हि0=हिन्दुस्तानी, साधा=साधारण, अन्त=अन्तर, वरा=वराली, काक=काकली, कैशि=कैशिक, पञ्च=पञ्चश्रुतिक, षट=षटश्रुतिक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

6- आलाप-प्रकरण :- इस अध्याय में राग विस्तार में आने वाले शब्दों पर विचार किया गया है, जैसेः– आलाप, तान, करण, आक्षिप्तिका, वर्धनी, विदारी, मुक्तायि आदि। सम्पूर्ण, षाड़व और औड़व जातियों के स्वरों की संख्या के विषय में परम्परा से हट कर सात, छह और पाँच स्वर के स्थान पर सर्म्पूण के लिए आठ, षाड़व के लिए सात और औड़व के लिए छह स्वरों का उल्लेख चतुर्दण्डी प्रकाशिका में किया गया है। इसको सामान्यतः यही कहा जा सकता है कि तार-षड्ज की भी व्यंकटमखी ने जातियों के स्वरों में गणना की है। जबकि शार्गदेव आदि प्राचीन ग्रन्थकार इसकी पुष्टि नहीं करते।

7- ठाय (स्थाय) प्रकरणः- इस अध्याय में कुल सात श्लोक होने के कारण यह चतुर्दण्डी प्रकाशिका का सबसे संक्षिप्त अध्याय कहा जा सकता है। 'ठाय' का अर्थ है 'स्थाय'। राग का विस्तार करते समय भिन्न-भिन्न स्वरों को स्थायी मानकर किसी कल्पित स्थायी स्वर से चार स्वर आरोह में तथा चार ही स्वर अवरोह में प्रयोग करते समय चार-चार तानें बनाना ठाय (स्थाय) कहलाता था। व्यंकटमखी अपने गुरु 'तानप्पाचार्य शेखर' का उल्लेख कर के 'यडुप-ठाय' को 'मकरिणी-ठाय' भी प्रचार में बताते हैं, ऐसा चतुर्दण्डी प्रकाशिका में वर्णित है (च0प्र0,पृ0-68)।

8- गीत-प्रकरणः- व्यंकटमखी ने संगीत में वर्णित प्रबन्धों के दो भाग करके गीत और प्रबन्ध नामक दो अध्याय बना दिए हैं। प्रबन्धों के सालग सूड, जो कि सूड के दो प्रकार कहे गए हैं उनमें से सालग को अलग कर दिया जिसे गीत-प्रकरण कहा गया है। छायालग नाम का रूपान्तर ही सालग है। इस अध्याय में सात प्रकार के गीत गिनाए गए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं:– (1) ध्रुव, (2) मट्ठ, (3) प्रतिमट्ठ, (4) निसारुक, (5) अट्टताल, (6) रास और (7) एकताली। इन सब गीत-प्रकारों का विस्तृत वर्णन किया गया है। संगीत रत्नाकर में भी सालग के अन्तर्गत यही सात नाम दिए गए है पर चतुर्दण्डी-प्रकाशिका में इन नामों में सूक्ष्म अन्तर है। जैसे-मट्ठ और प्रतिमट्ठ को संगीत-रत्नाकर में क्रमशः मण्ठ और प्रतिमण्ठ तथा अट्टताल को अड्डताल कहा गया है।

9- प्रबन्ध प्रकरणः- प्रबन्ध के छह अंग दिए गए हैं, जो इस प्रकार हैं:– स्वर, बिरुद, पद, तेनक (तेन), पाट और ताल। चतुर्दण्डी-प्रकाशिका में इन छहों अंगों का विवरण संगीत रत्नाकर वाला ही है। नई बात यह है कि व्यंकटमखी ने मेदिनी आदि पाँचों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जातियों में आने वाले प्रबन्धों की संख्या दी है जो संगीत रत्नाकर में नहीं दी गई है जैसेः– मेदिनी जाति जिसके छह अंग हैं, के श्रीरंग, श्रीविलास आदि सात प्रबन्ध कहे हैं; पाँच अंग वाली आनन्दिनी जाति के पञ्चतालेश्वर, वर्ण, स्वर आदि दस प्रबन्ध और चार अंगों वाली दीपनी जाति के सुदर्शन, कन्दुक आदि पाँच प्रबन्ध कहे हैं। भावनी जाति के कैवाड, कलहंस आदि सोलह प्रबन्ध कहे हैं तथा तारावली के एला, ढेंकी आदि बाइस प्रबन्ध गिनाए हैं।

10- ताल प्रकरणः– चतुर्दण्डी प्रकाशिका के अभी तक दो प्रकाशन हुए हैं। पहले प्रकाशन में पाँच, दूसरे प्रकाशन में नौ अध्यायों को प्रकाशित किया गया, किन्तु पुस्तक के आरम्भ में वीणा प्रकरण के पाँचवें-छठे श्लोक में स्वयं व्यंकटमखी ने पुस्तक के दस प्रकरणों का उल्लेख किया हैः–

प्रबन्धानां प्रकरणं तालप्रकरणं ततः।।
दशप्रकरणोपेता कृतिर्विद्वद लङ्कृति।।

ताल प्रकरण का विवरण प्राप्त नहीं है, अतः हम उसका वर्णन यहाँ नहीं कर सके।

निष्कर्षः– चतुर्दण्डी प्रकाशिका के लेखक पं0 व्यंकटमखी का संगीत के क्षेत्र में निम्न योगदान विशेष महत्व रखता हैः– (1) लक्ष्य के अनुसार 12 शुद्ध विकृत स्वरों की स्थापना, (2) बहत्तर मेलकर्ताओं की संख्या निश्चित करना, (3) सिंहरव नामक नवीन राग की उत्पत्ति करना (इस राग का उल्लेख संगीत पारिजात में भी प्राप्त होता है, इससे यह सिद्ध होता है कि व्यंकटमखी अहोबल से पूर्व के ग्रन्थकार हैं।), (4) मेलों में विकृत स्वरों को अ, इ, उ की मात्राओं से यथाः– र, रि, रु, ग, गि, गु से प्रदर्शित करना तथा (5) सभी पूववर्ती ग्रन्थकारों की अवहेलना करते हुए व्यंकटमखी ने अपने विकृत-स्वर, अन्तर-गान्धार और काकली-निषाद को एक श्रुति ऊँची (बारहवें और तीसरे क्रम की श्रुति पर) माना है जिससे षड्जान्तर में सात के स्थान पर आठ श्रुतियाँ हो गईं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यंकटमखी कर्नाटकी-संगीत को व्यवस्थित करने वाले महत्वपूर्ण ग्रन्थकार है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीतपारिजात

इस ग्रन्थ के लेखक पण्डित अहोबल हैं। लेखक ने अपने तथा रचना-काल के विषय में कुछ नहीं कहा है पर वर्णित सामग्री को देखते हुए काल व स्थान का किसी हद तक निर्धारण किया जा सकता है।

कालः- संगीत पारिजात के उद्धरण पं. श्रीनिवास और भावभट्ट ने दिए हैं। भावभट्ट ने श्रीनिवास को भी उद्धृत किया है। भावभट्ट का रचना-काल सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम दशक है, अतः कहा जा सकता है कि पं. अहोबल ने संगीत पारिजात की रचना सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में की होगी। अधिकतर संगीत के ग्रन्थों में संगीत पारिजात का समय सन् 1650 ई. दिया गया है। हमारे विचार से इसका रचनाकाल एक दो दशक और पहले का होना चाहिए, क्योंकि औरंगज़ेब के वेतन भोगी कर्मजारी मिर्ज़ा रोशनज़मीर ने अहोबल के संगीत पारिजात का अनुवाद 1660 ई. में किया था, किसी भी ग्रन्थ की प्रसिद्धि होने में कम से कम 25-30 वर्ष तो लगते ही हैं। विशेषकर उस युग में जब छापेख़ाने और संचार के साधन वर्तमान के समान नहीं थे।

स्थानः- यद्यपि संगीत पारिजात उत्तर भारत का ग्रन्थ है पर विषय वस्तु को ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि पं0 अहोबल उत्तर व दक्षिण दोनों पद्धतियों के जानकार थे या सम्भव है कि वे दक्षिण से आकर उत्तर में बसे हों। संगीत पारिजात (पृ-141-142) में भी मुखारी मेल (हिन्दुस्तानी सा <u>रे</u> रे म प <u>ध</u> ध सां) दक्षिण वाले स्वरों में ही मिलता है। अहोबल ने और भी कुछ रागों में कर्नाटकी संगीत की भाँति कोमल ऋषभ व शुद्ध ऋषभ एक के बाद एक का प्रयोग रागों के वर्णन में दिया है अतः कहा जा सकता है कि अहोबल पर दक्षिणी संगीत का प्रभाव था। वैसे मुख्य रूप से संगीत पारिजात में उत्तर भारत के संगीत का ही विवेचन है।

शुद्ध सप्तकः- संगीत पारिजात का शुद्ध सप्तक वर्तमान काफ़ी के समान था जिसे अहोबल ने सैन्धव कहा है। यानी वर्तमान उत्तरी संगीत के अनुसार अहोबल के शुद्ध सप्तक में गान्धार व निषाद कोमल तथा शेष सभी स्वर शुद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगते थे। इसकी पुष्टि के लिए दो तर्क दिए जा सकते हैं। प्रथम तो यह कि वह प्राचीन ग्रन्थकारों के अनुसार अपने शुद्ध स्वरों को षड्ज-ग्राम के स्वर मानते हैं जिन्हें चौथी, सातवीं, नौवीं, तेरहवीं, सत्रहवीं, बीसवीं और बाईसवीं श्रुतियों पर स्थापित किया गया है। षड्ज-ग्राम के स्वर लगभग वर्तमान काफ़ी के लगभग समान कहे जा सकते हैं। अन्तर केवल यह है कि षड्ज-ग्राम की अपेक्षा काफ़ी में ऋषभ और धैवत तीन के स्थान पर चार श्रुतियों के होते हैं, गान्धार और निषाद भी अपने स्थान से एक-एक श्रुति ऊँचे होते हैं। दूसरे तर्क के अनुसार वीणा पर स्वरों की स्थापना से तो निश्चित रूप से वर्तमान काफ़ी के ही स्वर अहोबल के शुद्ध स्वर सिद्ध होते हैं अतः कहा जा सकता है कि संगीत-पारिजात का शुद्ध सप्तक वर्तमान काफ़ी के समान था।

विकृत स्वरः- संगीत पारिजात में विकृत स्वरों की संख्या 22 मानी गयी है जो सम्भवतः किसी भी ग्रन्थकार के विकृत स्वरों की संख्या से कहीं अधिक है। संगीत-रत्नाकर (पृ.-88) में पं0 शार्ङ्गदेव ने विकृत स्वर 12 माने हैं। यह संख्या भी पर्याप्त थी पर अहोबल ने तो 22 मानकर अपने विकृत स्वर सर्वाधिक सिद्ध कर दिए। आगे संगीत पारिजात के विकृत स्वरों को दो वर्गों में विभक्त करके स्पष्ट किया जा रहा है।

1-शुद्ध अवस्था से स्वरों को ऊँचा करकेः- षड्ज-पंचम के अतिरिक्त कोई भी शुद्ध स्वर जिसे एक श्रुति ऊँचा होने पर तीव्र, दो श्रुति ऊँचा होने पर तीव्रतर, तीन श्रुति ऊँचा होने पर तीव्रतम और चार श्रुति ऊँचा होने पर अतितीव्रतम कहा जाएगा। ध्यान केवल यह रखना होगा कि जो स्वर चढ़ रहा है वह आगामी स्वर से आगे न निकल जाए। जैसे ऋषभ सातवीं श्रुति पर शुद्ध है तो आठवीं श्रुति पर तीव्र और नवीं श्रुति पर तीव्रतर ऋषभ होगा परन्तु क्योंकि नवीं श्रुति पर ही शुद्ध गान्धार है अतः अब ऋषभ तीव्रतम नहीं हो पाएगा। इस प्रकार ऋषभ के दो तीव्र विकृत रूप हुए। चूँकि नौवीं श्रुति पर शुद्ध गान्धार, दसवीं पर तीव्र, ग्यारहवीं पर तीव्रतर, बारहवीं पर तीव्रतम गान्ध ार तथा तेरहवीं श्रुति पर अतितीव्रतम गान्धार है इसलिए गान्धार के चार तीव्र विकृत रूप हुए। अब चूँकि षड्ज (4) और पंचम (17) अचल स्वर हैं अतः न तो ये स्वर किसी अन्य श्रुति पर जाएँगे और न ही इनकी श्रुति पर कोई दूसरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर आ सकता है, इसलिए मध्यम जो कि तेरहवीं श्रुति पर है, के तीन ही तीव्र विकृत रूप 14, 15, 16 श्रुतियों पर क्रमशः तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम मध्यम होंगे। अगली 17वीं श्रुति पर अचल स्वर पंचम स्थित है। धैवत के ऋषभ की भाँति दो तथा मध्यम के समान निषाद के तीन ही तीव्र विकृत रूप होंगे। इस प्रकार ऋषभ के दो, गान्धार के चार, मध्यम के तीन, धैवत के दो तथा निषाद के तीन रूपों को मिला कर शुद्ध अवस्था से ऊँचे कुल 14 तीव्र विकृत रूप हुए।

2-शुद्ध अवस्था से स्वरों को नीचा करकेः- वर्तमान में ऋषभ, गान्धार, धैवत और निषाद ये चार स्वर, शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर कोमल होते हैं। संगीत पारिजात के यही चार स्वर शुद्ध अवस्था से एक श्रुति नीचे होने पर कोमल और यही अपनी शुद्ध अवस्था से दो श्रुति नीचे होने पर पूर्व विकृत कहलाते थे। जैसे सातवीं पर अहोबल का शुद्ध ऋषभ, छठी पर कोमल ऋषभ और पाँचवीं श्रुति पर पूर्व ऋषभ है। नौवीं श्रुति पर शुद्ध गान्धार, आठवीं पर कोमल गान्धार और सातवीं पर पूर्व गान्धार है, इसी प्रकार धैवत और निषाद भी एक-एक श्रुति घटने पर कोमल और दो-दो श्रुति घटने पर पूर्व विकृत कहलाते थे अतः संगीत पारिजात में चार कोमल और चार ही पूर्व कुल आठ विकृत स्वर अपने शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर माने गये है। इस प्रकार अहोबल ने 14 तीव्र और 8 कोमल मिलाकर 22 विकृत स्वर कहे हैं और उन्होंने इनमें सात शुद्ध स्वरों को मिला कर कुल 29 स्वरों का उल्लेख संगीत पारिजात में किया है। आगे सारिणी में इन शुद्ध और विकृत स्वरों को दिया जा रहा है।

क्रम	श्रुतियों	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर					
	कोमल स्वर	के नाम	तीव्र	तीव्रतर	तीव्रतम	अतितीव्रतम	कोमल	पूर्व
1.	तीव्रा		नि					
2.	कुमुद्वती			नि				
3.	मन्दा				नि			
4.	छन्दोवती	सा						

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5.	दयावती							रे
6.	रञ्जनी						रे	
7.	रक्तिका	(रे)						(ग)
8.	रौद्री		(रे)				(ग)	
9.	क्रोधा	(ग)		(रे)				
10.	वज्रिका		ग					
11.	प्रसारिणी			ग				
12.	प्रीति				ग			
13.	मार्जनी	(म)				○		
14.	क्षिती		म					
15.	रक्ता			म				
16.	सन्दीपनी				म			
17.	आलापिनी	प						
18.	मदन्ती							ध
19.	रोहिणी						ध	
20.	रम्या	(ध)						(नि)
21.	उग्रा		(ध)				(नि)	
22.	क्षोभिणी	(नि)		(ध)				
	योग		5	5	3	1	4	4
							महायोग = 22	

इस सारिणी को देखने से ज्ञात होता है कि 7, 8, 9, 13, 20, 21, 22 श्रुतियों पर दो-दो स्वर हैं जिन्हें गोले में बन्द किया गया है, गायन-वादन करते समय इन 14 में से 7 ही स्वर प्रयोग में आएँगे। दस स्वरों की सूची स्वयं अहोबल ने दी है जिनका प्रयोग किसी राग में नहीं है। ये निम्न हैं (सं.पा.,पृष्ठ-200)-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रिञ्च पूर्वं तथा तीव्रं तीव्रतरञ्च गस्वरम्।
तीव्रतमं तथा गञ्च मञ्च तीव्रं स्वरं तथा।।
मञ्च तीव्रतमं धञ्च पूर्वाख्यं तीव्र संज्ञितम्।
तीव्रतरं निषादञ्च तीव्रतमञ्च निस्वरम्।।

अर्थात् :- (1) पूर्व ऋषभ, (2) तीव्र ऋषभ, (3) तीव्रतर गान्धार, (4) तीव्रतम गान्धार, (5) तीव्र मध्यम, (6) तीव्रतम मध्यम, (7) पूर्व धैवत, (8) तीव्र धैवत, (9) तीव्रतर निषाद और (10) तीव्रतम निषाद।

इनमें से तीव्र रे, ध जो कि 8 और 21 क्रम की श्रुतियों पर हैं दोनों स्थानों पर है, अतः (17-2=15) स्वरों का प्रयोग किसी राग में नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त वीणा पर जब अहोबल ने शुद्ध व विकृत स्वरों की स्थापना की तब भी केवल पाँच विकृत-स्वर ही बताए हैं (सं.पा.,पृ.-93, 94), अतः सात शुद्ध और पाँच विकृत कुल बारह स्वरों का ही प्रयोग वर्तमान के समान अहोबल ने भी संगीत पारिजात में किया है।

मूर्च्छना व मेलः- मूर्च्छना तो तीनों ग्रामों की सात-सात कही हैं। पर सम्पूर्ण के साथ-साथ मूर्च्छना के षाडव व औड़व भेद भी अहोबल ने कहे हैं। षड्ज-ग्राम की मूर्च्छनाओं की संख्या 18648 कही गई है जिसका विवरण इस प्रकार है- अहोबल के विकृत स्वरों की संख्या 22 है इसलिए एक विकृत स्वर के प्रयोग से 16, दो के प्रयोग से 126, तीन विकृत स्वरों के प्रयोग से 500, चार विकृत स्वरों के प्रयोग से 960 और पाँचों विकृत स्वरों के एक साथ प्रयोग से 1060 कुल 2663x7=18641 और 7 शुद्ध, इस प्रकार कुल 18648 सम्पूर्ण मूर्च्छनाओं का विस्तृत वर्णन संगीतपारिजात में किया गया है।

मूर्च्छना व मेल में अन्तर यह है कि मेल, राग में लगने वाले स्वरों को बताता है तो मूर्च्छना, राग के चलन का भी बोध कराती है। मूर्च्छना में आरोह व अवरोह का होना आवश्यक है। किसी एक मेल में समान स्वरों वाली दो मूर्च्छनाओं के आरम्भिक स्वर के अलग होने के कारण वे भिन्न-भिन्न मानी जाती हैं। आगे संगीत पारिजात के 13 मेलों के स्वर वर्तमान स्वरों के साथ दिए जा रहे हैं:-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रम	थाट का नाम	संगीत पारिजात के स्वर (विशेष विवरण)	हिन्दुस्तानी स्वर
1.	शुद्ध सप्तक	सा रे ग म प ध नि सां (वीणा पर स्थापित शुद्ध स्वर)	सा रे ग म प ध नि सां
2.	गौरी	सारे (को) ग (ती) मपध (को) नि (ती) सां (भैरव के समान)	सा रे ग म प ध नि सां
3.	मुखारी	सारे (को) ग (पू) मपध (को) नि (पू) सां (दक्षिणी शुद्ध सप्तक)	सा रे रे म प ध ध सां
4.	भैरवी	सारेगमपध (को) निसां (आसावरी थाट)	सा रे ग म प ध नि सां
5.	कल्याण	सारेग (ती) म (तीतर) पधनि (ती) सां (कल्याण थाट के समान)	सा रे ग मं प ध नि सां
6.	सारंग	सारेग (अतीतम) म (तीतर) पध (तीतर) नि (ती) (दोनों मध्यम व निषाद, गान्धार, धैवत वर्जित)	सा रे म मं प नि नि सां
7.	शंकराभरण	सारेग (ती) मपधनि (ती) सां (बिलावल थाट के समान)	सा रे ग म प ध नि सां
8.	बेलावली	सारेग (ती) मपधनि (ती) सां ((7) एवम् (8) के समान स्वर, मूर्च्छना भिन्न)	सा रे ग म प ध नि सां
9.	आभीरी	सारेगमपध (को) नि (ती) सां (राग कीरवानी (दक्षिणी))	सा रे ग म प ध नि सां
10.	श्री	सारेग (ती) मपधनिसां (खमाज मेल)	सा रे ग म प ध नि सां
11.	नाटमेल	सारे (तीतर) ग (ती) मपध (तीतर) नि (ती) (दोनों गांधार-निषाद युक्त, ऋषभ-धैवत वर्जित)	सा ग ग म प नि नि सां
12.	मालवमेल	सारे (को) ग (ती) मपध (को) नि (ती) (भैरव के समान)	सा रे ग म प ध नि सां
13.	शुद्ध वराटी	सारे (को) ग (पू) ग (तीतर) मपध (को) नि (ती) (दोनों ऋषभ युक्त)	सा रे रे ग म प ध नि सां

शब्द संक्षेपः- को=कोमल, ती=तीव्र, पू=पूर्व, तीतर=तीव्रतर, अतीतम=अतितीव्रतम।

इन तेरह मेलों के अतिरिक्त ग्यारह और स्वरान्तरों वाले रागों का वर्णन संगीत पारिजात में किया गया किन्तु उन्हें मेल नहीं कहा गया। वे ग्यारह नाम निम्नलिखित हैः-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1- बंगाली मेल (स ग म॑ प नि)
2- विभास (सा रे ग म॑ प ध नि)
3- वराटी तोड़ी (सा रे ग म॑ प ध नि)
4- नाग वराटी (सा रे ग म॑ प ध नि)
5- मेघनाद (सा रे ग प ध नि)
6- पुन्नाग वराटी (सा रे ग म॑ प ध नि)
7- शोक वराटी (सा रे रे म॑ प ध नि)
8- सालंग (सा रे ग म॑ प ध नि)
9- कुरंग (सा ग म म॑ प ध नि)
10- सौदामिनी (सा रे म म॑ प ध नि)
11- वैजयन्ती (सा रे ग म॑ प ध नि)

वीणा पर लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापनाः- पं. अहोबल ने वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों की स्थापना करके स्वरों को श्रव्य के साथ-साथ दृश्य भी बना दिया जिससे स्वरों की स्थिति में कोई संशय नहीं रहा। अहोबल के पूर्व का संगीत इसीलिए प्रचारित नहीं हो सका क्योंकि उस समय के स्वर विश्वस्त रूप से आज ज्ञात नहीं हैं।

वीणा पर अहोबल के शुद्ध स्वर संक्षेप में इस प्रकार कहे जा सकते हैं। पूरे तार के मध्य में तार सा, दोनों सा के बीच में म, पूरे तार के तीन भाग करके पहले भाग पर प, सा और प के बीच ग, सा-प के तीन भाग करके पहले भाग पर रे, प और तार सा के मध्य में ध तथा प और तार सा के तीन भाग करके प की ओर से दूसरे भाग पर नि की स्थापना गई की है।

विकृत स्वरों के बारे में अहोबल ने कहा है कि सा-रे के तीन भाग करके दूसरे भाग पर कोमल रे, सा-ध के बीच तीव्र ग, तीव्र ग और तार सा के तीन भाग करके पहले भाग पर तीव्र म, प और तार सा के तीन भाग करके पहले भाग पर कोमल ध तथा ध और तार सा के तीन भाग करके दूसरे भाग पर तीव्र नि है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीणा पर पर्दे बाँधने के लिए तार की लम्बाई के आधार पर स्वरों को स्थापित करने की विधि बताने के साथ ही अहोबल ने स्वर-संवाद पर भी बल दिया है कि इस रीति से जो स्वर उपयुक्त प्राप्त न होते हों उन्हें संवाद के आध ार पर निश्चित कर लें। वैसे भी कुशल संगीतज्ञ सितार आदि के पर्दे बाँधते समय स्वर-संवाद को ही महत्त्व देते हैं, तार की लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापना को नहीं। ध्यान देने की बात यह है कि अहोबल हो या श्रीनिवास किसी ने भी छत्तीस इंच या स्वरों की आन्दोलन संख्या सम्बन्धी चर्चा नहीं की है, यह विषय को समझाने के लिए बाद के ग्रन्थकारों ने ऐसा किया है ताकि तथ्य की जानकारी विद्यार्थियों को हो सके। आन्दोलन संख्या तो पाश्चात्यों की देन है। इससे पूर्व आन्दोलन संख्या की जानकारी यहाँ नहीं थी। अहोबल ने छत्तीस इंच के तार की लम्बाई पर न तो स्वरों को स्थापित किया है और न ही आन्दोलन संख्या दी है।

रागों का विवेचनः- संगीत-पारिजात में 122 रागों का वर्णन दिया गया है। प्रत्येक राग के स्वर, आरोह-अवरोह, ग्रह, न्यास, मूर्च्छना आदि का उल्लेख है मूर्च्छना का अर्थ, राग के स्वरकरण की प्रथम तान है, उदाहरणार्थ- यहाँ राग धनाश्री का विवरण दिया जा रहा है-

"आरोहे रि-ध-हीना स्यात् पूर्णाशुद्धस्वरैर्युता।
गान्धारस्वरपूर्वा स्याद्धनाश्रीर्मध्यमान्तका।। इति धनाश्रीः।" (सं.पा., पृ-102)

ग म प नि सां, रें सां नि ध प म, ग म प म ग रे सा,
ग म प नि प नि सां, रें सां नि सां नि ध प म। इति स्वर करणम्।

(सं.पा.,पृ.-107)

इस विवरण को देखने से ज्ञात होता है कि वर्तमान धनाश्री से पर्याप्त मात्रा में अहोबल का धनाश्री मिलता है। क्योंकि अहोबल के शुद्ध गान्धार-निषाद हमारे कोमल गान्धार-निषाद ही हैं। आरोह में ऋषभ-धैवत का प्रयोग वर्जित किया ही गया है। अन्तर केवल यह है कि भीमपलासी के स्वरों में गान्धार और पञ्चम को बढ़ाकर गाये जाने वाले वर्तमान धनाश्री राग में मध्यम अल्प है जबकि संगीत-पारिजात के धनाश्री राग को मध्यम पर न्यास करने का आदेश है। इसी प्रकार और भी अनेक राग वर्तमान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रागों से मिलते दृष्टिगोचर होते हैं अतः यह कहा जा सकता कि अहोबल के राग, वर्तमान रागों से किसी हद तक निकट हैं।

रागों का रसों से सम्बन्धः- 22 श्रुतियों में तीव्रा, कुमुद्वती, मन्दा, छन्दोवती आदि श्रुतियों के नाम कहे गए हैं। इन श्रुतियों की पाँच जातियाँ दीप्ता, आयता, मध्या, करुणा व मृदु हैं। पं. अहोबल ने इन जातियों का सम्बन्ध रागों के रसों से जोड़ा है।

दीप्ता जाति वीर, अद्भुत, और रौद्र रस के लिए; मृदु जाति शृङ्गार के लिए; आयता जाति हास्य के लिए; करुणा जाति करुण रस के लिए; मध्या जाति वीभत्स, भयानक, हास्य व शृङ्गार के लिए कही गई हैं। शृङ्गार रस में मृदु जाति संयोग-शृङ्गार के लिए और मध्या जाति वियोग-शृङ्गार के लिए हैं। इसी प्रकार आयता में थोड़ा हास्य तथा मध्या में व्यंग्य-हास्य जानना चाहिए।

किसी श्रुति पर आधारित कोई स्वर जब किसी राग में अंश, ग्रह व न्यास बनता है तब उस राग का वही रस होता है जो उस श्रुति की जाति का रस था। इस प्रकार पं. अहोबल ने रागों का रसों से सम्बन्ध श्रुतियों की जातियों से जोड़ कर जो मार्ग निकाला है यदि वह वास्तव में सही है और आज यदि इसे सिद्ध करना सम्भव हो तो रागों का रसों से सम्बन्ध, जो कटता जा रहा है उसे फिर से स्थापित किया जा सकता है। इससे संगीत जगत का बड़ा उपकार होगा।

हाथरस से प्रकाशित संगीत-पारिजात, एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण किन्तु अधूरा ग्रन्थ है। इसमें केवल स्वर और राग दो ही अध्याय हैं। बनारस-हिन्दू- विश्वविद्यालय के संगीत-शास्त्र-विभाग में डॉ. कमला नौटियाल के द्वारा संगीत-पारिजात पर एक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया है। जिसमें संगीत-पारिजात के स्वर, राग, प्रकीर्णक, प्रबन्ध, ताल और वाद्याध्याय ये छह प्रकरण हैं। इसके अतिरिक्त बीकानेर पुस्तकालय में प्राप्त संगीत-पारिजात में नृत्याध्याय भी उपलब्ध है। अतः स्पष्ट है कि संगीत-पारिजात में संगीत-रत्नाकर के समान संगीत के सातों अध्याय थे। यदि यह सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो जाए तो यह संगीत सम्बन्धी अन्य गुत्थियों को भी सुलझाने में सहायक सिद्ध होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रागतत्त्वविबोध

पं. श्रीनिवास द्वारा संस्कृत में लिखा गया यह एक छोटा सा किन्तु महत्त्वपूर्ण संगीत सम्बन्धी ग्रन्थ है। इसमें लेखक ने अपने काल व स्थान के बारे में कोई विवरण नहीं दिया है। राग तत्त्व विबोध में वीणा पर स्वरों की स्थापना आदि अनेक बिन्दु ऐसे हैं जो संगीत पारिजात से प्रभावित प्रतीत होते हैं। अतः कहा जा सकता है कि राग तत्व विबोध की रचना संगीत पारिजात के बाद की गई। भावभट्ट के ग्रन्थ अनूपसंगीत bykl] vuwlahr jRukdj vkS vuwlahrkadqk dh jpuk 17वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में हुई है और भावभट्ट ने श्रीनिवास को अनेक स्थलों पर उद्धृत किया है। इसलिए राग तत्व विबोध का समय अहोबल के बाद और भावभट्ट से पूर्व सन् 1660-70 ई. के मध्य का होना चाहिए।

पं. श्रीनिवास के शुद्ध सप्तक का नाम सैन्धव है जो कि वर्तमान काफी के समान है क्योंकि वीणा पर स्वरों की स्थापना करते समय जो शुद्ध स्वर बताए गए हैं वे वर्तमान काफ़ी के ही स्वर हैं। जिन्हें हम कोमल गान्धार-निषाद कहते हैं वे श्रीनिवास के शुद्ध गान्धार-निषाद थे। पं. श्रीनिवास ने शेष स्वर बिलावल वाले ही माने हैं। उत्तर भारत के जितने भी ग्रन्थकार हैं उनमें पुण्डरीक विट्ठल, श्रीकण्ठ और भावभट्ट के अतिरिक्त सभी (लोचन, हृदयनारायण, अहोबल, श्रीनिवास) के शुद्ध सप्तक वर्तमान काफ़ी के समान है, अतः राग तत्त्व विबोध को उत्तर भारत का ही ग्रन्थ मानना उचित होगा।

विषय-वस्तुः- पं. श्रीनिवास ने अपने ग्रन्थ में कुल आठ प्रकरण या अध्याय बनाए हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं:-

(1) प्रस्तावना	(2) श्रुति-जाति-विवेक प्रकरण
(3) स्वर	(4) ग्राम-मूर्च्छना
(5) गमक	(6) मेल-लक्षण
(7) राग	(8) श्रुति-निर्णय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आगे राग तत्त्व विबोध के इन अध्यायों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है-

1- प्रस्तावनाः- प्रस्तावना के अन्तर्गत ग्रन्थकार ने संगीत की महिमा का वर्णन करने के पश्चात् संक्षेप में पूरे ग्रन्थ की विषय-वस्तु प्रस्तुत की है।

2- श्रुति जाति प्रकरणः- श्रुतियों की पाँच जातियाँ दीप्ता, आयता, करुणा, मध्या व मृदु दी गई हैं। दीप्ता जाति की श्रुतियाँ तीव्रा, रौद्री, वज्रिका और उग्रा हैं। आयता जाति की कुमुद्वती, क्रोधा, प्रसारिणी, सन्दीपनी व रोहिणी हैं। करुणा जाति की दयावती, आलापिनी व मदन्ती हैं। मृदु जाति की मन्दा, रक्तिका, प्रीति व क्षिति हैं। मध्या जाति की छन्दोवती, रञ्जनी, मार्जनी, रक्तिका, रम्या व क्षोभिणी हैं।

3- स्वर प्रकरणः- इस अध्याय में पं. श्रीनिवास ने भी वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों की स्थापना करके स्वरों को श्रव्य के साथ-साथ दृश्य भी बना दिया, जिससे स्वरों की स्थिति में कोई संशय नहीं रहा।

वीणा पर शुद्ध स्वरों के विषय में श्रीनिवास का कथन है कि पूरे तार के दो भाग कर मध्य में तार सा, तार सा और पूर्वमेरु के मध्य अतितार सा, मध्य सा और तार सा के बीच म, मध्य सा और तार सा के तीन भाग कर दूसरे भाग पर प, सा और प के मध्य ग, सा-प के तीन भाग कर प की ओर से दूसरे भाग पर रे, प और तार सा के मध्य ध, इसका रे से सा-प संवाद होना आवश्यक है तथा प और तार सा के तीन भाग कर दूसरे भाग पर नि है।

विकृत स्वरों के विषय में राग तत्व विबोध में कहा गया है कि सा-रे के तीन भाग कर के दूसरे भाग पर कोमल रे, सा-ध के मध्य तीव्र ग, तीव्र ग और तार सा के तीन भाग करके पहले भाग पर तीव्र म (तीव्रतर म), प और तार सा के तीन भाग कर के पहले भाग पर कोमल ध इसका कोमल रे से सा-प संवाद होना आवश्यक है तथा ध और तार सा के तीन भाग कर दूसरे भाग पर तीव्र नि है।

पंचम के अतिरिक्त इन सभी शुद्ध-विकृत स्वरों की स्थापना संगीत पारिजात वाली ही है। पं. अहोबल ने पूरे तार के तीन भाग करके मेरु की ओर से प्रथम भाग पर पंचम स्थापित किया है, जबकि पं. श्रीनिवास ने मध्य सा और तार सा के तीन भाग करके मेरु कि ओर से दूसरे भाग पर प स्थापित किया है। इसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतिरिक्त श्रीनिवास ने तार षड्ज और पूर्व मेरू (Bridge) के मध्य अतितार षड्ज की स्थापना की है जो अहोबल ने नहीं की है।

4- ग्राम-मूर्च्छना-प्रकरणः- प्राचीनकाल में षड्ज, मध्यम, और गान्धार ये तीन ग्राम माने जाते थे। इनमें से केवल षड्ज ग्राम को ही राग तत्त्व विबोधकार ने माना है। इसमें मूर्च्छना की परिभाषा इस प्रकार दी हैः-

आरोहश्चावरोहश्च स्वराणां जायते यदा।
तां मूर्च्छना तदा लोक आहुर्ग्रामाश्रयां बुधाः।।

पं. श्रीनिवास ने षड्जग्राम में उत्तरमन्द्रा, रजनी आदि सात प्राचीन मूर्च्छनाएँ ही स्वीकार की हैं।

5- गमक प्रकरणः- गमक की परिभाषा देते हुए श्रीनिवास का कथन है :-

क्रिया विशेषजन्यो यस्तद्धर्मो गमको भवेत।
गमयन्ति हि तद्रक्तिम तस्मात्ते गमकाः मताः।। (रा.त.वि.66)

अर्थात् स्वर का वह धर्म जो विशेष क्रिया से उत्पन्न हो और श्रोताओं को निश्चित रूप से आनन्द की ओर ले जाए, गमक है।

तत्पश्चात् लगभग बीस गमकों का उल्लेख किया है और उन्हें वीणा पर किस प्रकार बजाया जा सकता है उसका भी विधिवत् निरूपण है। उल्लेखनीय है कि शार्गदेव की 15 गमकों में से 'तिरिप', 'स्फुरित', कम्पित', लीन', आन्दोलित' और 'प्लावित' इन 6 गमकों का सम्बन्ध स्वरों की भिन्न-भिन्न गति के कम्पन से है। श्री निवास ने राग तत्व विबोध में इन सभी गमाकों को एक माना है।

6-मेल-लक्षण-प्रकरणः- श्रीनिवास ने में मेल की परिभाषा इस प्रकार दी है-

''मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यञ्जनशक्तिमान्।
शिलष्टोच्चारणमेवात्र समुदायः प्रकीर्तितः।।

इस प्रकरण में मेलों के सम्पूर्ण, षाड़व और औड़व प्रकार भी दिए गए हैं। जैसे एक थाट से जातियों के आधार पर चार सौ चौरासी राग बनाते समय सम्पूर्ण से एक, षाड़व से छह और औड़व से पन्द्रह प्रकार बनते है। यहाँ मेलों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के प्रकार भी इसी तरह दिए गए हैं, साथ ही एक, दो, तीन, चार और पाँच विकृत स्वरों के प्रयोग जितने मेल प्रकार बन सकते हैं सबका विधिवत् उल्लेख किया गया है। उदाहरण के लिए कोमल ऋषभ वाले मेल आगे सारिणी में दिये जा रहे हैः-

जाति का नाम	स्वर	मेलों की संख्या
सम्पूर्ण	सा रे ग म प ध नि	एक
	सा रे म प ध नि	
	सा रे ग प ध नि	
षाड़व	सा रे ग म ध नि	पाँच
	सा रे ग म प नि	
	सा रे ग म प ध	
	सा रे प ध नि	
	सा रे म ध नि	
	सा रे म प नि	
	सा रे म प ध	
औड़व	सा रे ग ध नि	दस
	सा रे ग प नि	
	सा रे ग प ध	
	सा रे ग म नि	
	सा रे ग म ध	
	सा रे ग म प	

उपरोक्त सारिणी में मात्र कोमल ऋषभ वाले मेल दिखाए गए हैं। इसी प्रकार तीव्र गांधार, तीव्र मध्यम, कोमल धैवत, तीव्र निषाद के एक-एक विकृत स्वर होने पर सम्पूर्ण से एक, षाड़व से पाँच और औड़व से दस मेल कहे गए हैं। दो-दो अथवा इससे अधिक विकृत स्वरों के प्रयोग से अनेक मेल बनाने की विधि भी पं. श्रीनिवास ने अपने ग्रन्थ के इस प्रकरण में दी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

7. राग-प्रकरणः- राग तत्व विबोध के इस अध्याय में श्री निवास ने एक सौ एक रागों का वर्णन किया गया है। इसमें सभी रागों का स्वर विस्तार दिया गया है और स्वर विस्तार के चार भाग किए गए हैं- उद्ग्राह, स्थायी, सञ्चारी व मुक्तयी। प्रथम (उद्ग्राह) का अर्थ है- राग की उठान या प्रारम्भ और अन्तिम (मुक्तयी) का अर्थ है समापन। आरम्भ के राग सैंधव व राग नीलाम्बरी के तो चार-चार भाग दिए हैं किन्तु आगे के सभी रागों में सञ्चारी नहीं दिया है अर्थात् उद्ग्राह, स्थायी और मुक्तयी ही दिए हैं। जो भी हो तत्कालीन रागों पर यदि शोध किया जाए जो राग-तत्व-विबोध में दिए गए रागों के स्वर विस्तार अवश्य ही सहायक सिद्ध होंगे, क्योंकि रागों में लगने वाले स्वरों का वीणा पर स्थान निर्धारित ही है। चूँकि स्वर विस्तार उपलब्ध है अतः उस काल के रागों पर कार्य करना सम्भव है।

8. श्रुति निर्णयः- इस अध्याय में पूर्व में कहे गए बिन्दुओं को उभारा गया है जैसे बारह व आठ श्रुत्यन्तर वाले जिन स्वरों में संवाद होता है उन्हें बताया गया है साथ ही कोमल, तीव्र आदि स्वरों के प्रयोग से बनने वाली संवादी जोड़ियों को भी दिया गया है। तीन ग्रामों में से केवल षड्ज-ग्राम को ही राग तत्त्व विबोध में स्वीकार किया गया है मध्यम-ग्राम व गान्धार-ग्राम का प्रचलन नहीं है। पं. श्रीनिवास जो स्वयं हनुमान् मत के अनुयायी हैं, अपने मत की पुष्टि करते हुए कहते हैं-

"हनुमानू स्वयमप्याह न तौ ग्रामौ मताविति"

(अर्थात् स्वयं हनुमान् ने भी इन दोनों ग्रामों को नहीं कहा।)

शुद्ध और विकृत कुल बारह स्वर ही हैं इस पर बल दिया गया है। एक अन्य मत के अनुसार 22 के स्थान पर 24 श्रुतियों का भी उल्लेख किया गया है। जिसमें सा, रे, म, प, ध की चार-चार और ग, नि की दो-दो श्रुतियाँ बताई गईं हैं। इस प्रकार राग तत्त्व विबोध की विषय वस्तु पर विचार करने के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं-

1. पं. श्रीनिवास लक्ष्य की दृष्टि से असंगत प्राचीन धारणाओं का दृढ़ता से विरोध करते हैं जैसे-तीन ग्राम के स्थान पर उन्होंने मात्र षड्ज-ग्राम ही माना है।
2. एक सप्तक में कुल बारह ही शुद्ध-विकृत स्वर माने हैं जबकि अन्य समकालीन ग्रन्थों में विकृत स्वरों की संख्या अलग-अलग है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

3. राग-तत्त्व-विबोध के अनुसार मेल में सात स्वरों का होना ही आवश्यक नहीं है, छह या पाँच स्वर भी हो सकते हैं।
4. पं. श्रीनिवास ने वीणा पर स्वरों की स्थापना करके स्वर सम्बन्धी अनिश्चितता को सदा के लिए समाप्त कर दिया।
5. जब बारह ही स्वर हैं तो सबके दो-दो भाग करके क्यों न 24 श्रुतियाँ मान ली जाएँ, 22 श्रुतियों का क्या उपयोग है ऐसा भी इस ग्रन्थ में संकेत है। यद्यपि 24 श्रुतियाँ पं. श्रीनिवास ने अन्य मत से दी हैं।
6. रागों का स्वरूप देकर तो उन्होंने तत्कालीन संगीत सम्बन्धी जानकारी के लिए मार्ग ही खोल दिया है।

अतः कहा जा सकता है कि श्रीनिवास अपने समय के संगीत को दर्शाने वाले एक प्रमुख ग्रन्थकार हैं। इनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है।

मध्यकाल में वीणा पर स्वरों की स्थापना अहोबल, हृदयनारायण देव पं. श्रीनिवास आदि ने की है जिनमें विषय की स्पष्टता के कारण पं. श्रीनिवास को अपेक्षाकृत अधिक ख्याति प्राप्त हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीमल्लक्ष्य संगीतम्

श्रीमल्लक्ष्य संगीतम् पण्डित विष्णु नारायण भातृखण्डे जी का संस्कृत में रचित प्रथम आधार ग्रन्थ है। रचयिता के रूप में अपना उपनाम भातृखण्ड 'चतुरपण्डित' दिया है, इसका काल सन् 1909 ई0 है। भातखण्डे जी ने 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' नाम की टीका में अनेक स्थलों पर अपने ही ग्रन्थ (श्रीमल्लक्ष्य संगीतम्) के उद्धरण दिए हैं। आगे चलकर मराठी भाषा का यही टीका-ग्रन्थ हाथरस से हिन्दी में 'भातखण्डे संगीत-शास्त्र' नाम से चार भागों में प्रकाशित हुआ। सर्वप्रथम सन् 1916 ई. में (उ. भा.सं.सं.इति.-60) भातखण्डे जी ने यह स्वीकार किया कि श्रीमल्लक्ष्य संगीतम् उनका अपना ग्रन्थ है। तब तक इस ग्रन्थ का प्रचार व प्रसार पर्याप्त मात्रा में हो चुका था। इस घटना का उन दिनों बहुत विरोध हुआ। लेकिन भातखण्डे जी का ऐसा करने के पीछे यही तर्क था कि विद्वान् बिना भेदभाव के इस ग्रन्थ की उपयोगिता या निरुपयोगिता का आँकलन कर लें। भातखण्डे जी को सन्देह था कि कतिपय दूसरी विचारधारा के संगीत विद्वान् पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर उनके इस ग्रन्थ का कही अनावश्यक विरोध न करें, इसीलिए ही उन्होंने इस ग्रन्थ में अपना मूलनाम गुप्त रखते हुए चतुरपण्डित नाम का प्रयोग किया। हमारे देश में संस्कृत को देवभाषा माना जाता है और उसमें लिखा गया हर वाक्य पूजनीय होता है इसलिए संस्कृत में रचित इस ग्रन्थ का सम्यक प्रचार सम्भव हो सका।

लक्ष्य-संगीत का नामः- लक्ष्य व लक्षण ये दो शब्द सामान्यतः तो एक ही हैं, पहला यह कि किसी कला का जो स्वरूप प्रचार में है उस रूप से उस कला के बारे में जानना 'लक्ष्य' कहलाता है और दूसरा यह कि ग्रन्थों में किसी कला के जो लक्षण दिए हुए हैं उनके आधार पर उस कला के बारे में ज्ञान प्राप्त करना 'लक्षण' कहलाता है। भरत लक्ष्य का वर्णन करते हैं और शार्ङ्गदेव लक्षण का। जो वर्तमान में लक्ष्य है, कालान्तर में परिवर्तित होते-होते उस लक्ष्य के लक्षण मात्र रह जाते हैं और प्रचार में भिन्नता आ जाती है। प्रथम शताब्दी के आसपास भारत का नाट्यशास्त्र लक्ष्य को ध्यान में रखकर लिखा गया। तेरहवीं शताब्दी में संगीतरत्नाकर के समय तक जाति गान को जानने का माध्यम मात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्षण रह गए अतः शाङ्गदेव को उनके लक्षणों से ही सन्तोष करना पड़ा क्योंकि उस समय तक देशी-राग आदि लक्ष्य में आ चुके थे।

भातखण्डे जी लक्ष्य-लक्षण सम्मत संगीत का वर्णन करना चाहते थे उन्होंने देखा कि ग्रन्थों में रागों के लक्षण अलग हैं और प्रचार में जो लक्ष्य हैं वो अलग हैं अतः भातखण्डे जी ने लक्ष्य-लक्षण में समन्वय स्थापित करने के लिए एक ग्रन्थ की रचना की और अपने इस प्रथम ग्रन्थ का नाम 'लक्ष्यसंगीत' रखा। आदर प्रकट करने के लिए 'श्रीमत्' लगाया जिससे 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' हो गया।

विषय-वस्तुः- श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् में मुख्य रूप से स्वर और राग सम्बन्धी दो अध्याय हैं। अन्त में वाग्येयकार, गायक के गुण-दोष, सुशारीर, तत्कालीन संगीत की स्थिति और लक्ष्यसंगीत की रचना करने का उद्देश्य दिया गया है।

स्वराध्यायः- इस अध्याय में स्वर सम्बन्धी सभी बिन्दुओं श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, वर्ण, अलंकार, वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी इत्यादि पर विस्तृत विचार किया गया है। प्राचीन व मध्यकालीन सभी ग्रन्थों के स्वर सम्बन्धी विवरण उन्हीं ग्रन्थों से लिए गए हैं, परन्तु ज़हाँ कहीं भातखण्डे जी को अपने विचार देने हुए उन्हें टिप्पणी के रूप में दिए हैं। श्रुतियों के विषय में प्राचीन सारणा-चतुष्टयी द्वारा श्रुतियों की संख्या और जैसा उनकी समझ में आया उनकी माप आदि का वर्णन किया है। भरत व शार्गदेव ने माप के विषय में श्रुतियों को समान-असमान कुछ नहीं कहा। भातखण्डे जी के विचार से प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ समान थीं और मध्यकालीन ग्रन्थकारों की असमान। आगे चलकर पण्डित ओमकार नाथ ठाकुर, आचार्य बृहस्पति आदि ने प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुतियों को असमान सिद्ध किया, यद्यपि प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुतियों के माप के सम्बन्ध में अब भी मतभेद है पर चूँकि भातखण्डे जी की विचारधारा का प्रचार अधिक हुआ अतः इन्हीं का मत अनेक नवीन शोधों के उपरान्त भी प्रचार में है।

स्वरः- शुद्ध स्वर तो प्राचीनकाल से आज तक पूरी दुनिया में सात ही माने जाते हैं। विकृत स्वरों को लेकर अनेक मत हैं, जैसे भरत ने दो, शार्गदेव ने बारह, अहोबल ने बाईस, लोचन ने दस, रामामात्य ने सात और व्यंकटमखी ने केवल पाँच विकृत स्वर माने। भातखण्डे जी पर व्यंकटमखी का प्रभाव अनेक बिन्दुओं में दृष्टिगोचर होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। अतः उन्होंने लक्ष्य संगीत में सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वर मिलाकर कुल बारह स्वरों को आधार प्रदान किया तथा इस अध्याय के अन्त में आधुनिक उत्तर भारतीय संगीत की राग समय व्यवस्था का भी वर्णन किया है।

रागाध्यायः- सर्वप्रथम इस अध्याय में व्यंकटमखी के बहत्तर मेलों में से कुल दस मेलों या थाटों को स्वीकार किया गया है जिनके नाम व स्वर आगे सारिणी में एक साथ दिए जा रहे हैं:-

क्रम	थाट का नाम	स्वर
1.	कल्याण	सा रे ग म॑ प ध नि
2.	बिलावल	सा रे ग म प ध नि
3.	खमाज	सा रे ग म प ध नि॒
4.	भैरव	सा रे॒ ग म प ध॒ नि
5.	पूर्वी	सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि
6.	मारवा	सा रे॒ ग म॑ प ध नि
7.	काफी	सा रे ग॒ म प ध नि॒
8.	आसावरी	सा रे ग॒ म प ध॒ नि॒
9.	भैरवी	सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि॒
10.	तोड़ी	सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि

दस मेलों के अन्तर्गत सवा सौ रागों को वर्गीकृत किया गया है। किस थाट में कितने व कौन-कौन से राग हैं उनका उल्लेख करने के पश्चात् रागों का वर्णन है। दस थाटों में रागों की संख्या समान नहीं है। तोड़ी थाट में सबसे कम तीन राग हैं और अधिकतम अट्ठाइस राग काफी थाट में दिए गए हैं। आगे ग्रन्थ में उल्लिखित प्रत्येक थाट में जन्य राग और उनकी संख्या दी जा रही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1.	बिलावल	बिलावल, अल्हैया-बिलावल, शुक्ल-बिलावल, देवगिरी-बिलावल, यमनी-बिलावल, दुर्गा, सरपरदा, ककुभ-बिलावल, नट-बिलावल, लच्छासाख, शंकरा, देशकार, बिहाग, हेमकल्याण, मालूहा, नट, माँड, गुणकली, पहाड़ी।	19
2.	खमाज	खमाज, झिञ्झोटी, सोरठ, देस, खम्बावती, तिलंग, दुर्गा, रागेश्वरी, जयजयवन्ती, गारा, तिलककामोद।	11
3.	भैरव	भैरव, कालिंगड़ा, मेघरञ्जनी, सौराट्र, जोगिया, रामकली, प्रभात, विभास, बंगाल-भैरव, शिव-भैरव, आनन्द-भैरव, अहीर-भैरव, ललित-पंचम, गुणक्री।	14
4.	पूर्वी	पूर्वी, गौरी, रेवा, श्री, दीपक, त्रिवेणी, मालवी, टंकी, जेताश्री, वसन्त, पूरिया-धनाश्री, परज।	12
5.	मारवा	मारवा, पूरिया, ललिता, सोहनी, वरारी, जैत्र, भंखार, विभास, भटियार, साजगिरी, मालीगौरा, पंचम, ललिता-गौरी।	13
6.	काफी	धनाश्री, सैन्धवी, काफी, धानी, भीमपलासी पटदीप, पीलू, हंसकिंकणी, बागेश्वरी, बहार, सूहा, सुघराई, देवसाख, कौशिक, शहाना, नायकी-कानड़ा, मधुमाद-सारंग, शुद्ध-सारंग, वृन्दावनी, सामन्त, मियां की सारंग, बड़हंस, शुद्ध मल्हार, पटमञ्जरी, गौड़-मल्हार, मियाँ-मल्हार, मेघ-मल्हार।	28
7.	आसावरी	आसावरी, जौनपुरी, गान्धारी, देशी-खट, सिन्ध-भैरवी, कौसी-कानड़ा, अड़ाना, झीलफ, दरबारी।	10
8.	भैरवी	भैरवी, मालकौंस, विलासखानी-तोड़ी।	3
9.	तोड़ी	तोड़ी, गुर्जरी, मुल्तानी।	3

10 कल्याण -.12 प्रकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन दस-थाटों का क्रम भातखण्डे जी ने रागों के समय को ध्यान में रख कर किया है। जैसे- सर्वप्रथम शुद्ध ऋषभ, गान्धार, धैवत वाले थाट कल्याण, बिलावल और खमाज को रखा है, जिसका समय 'सात से दस' बजे है। उसके बाद कोमल ऋषभ और शुद्ध गान्धार वाले भैरव, मारवा और पूर्वी थाटों के राग हैं जो सन्धि-प्रकाश राग हैं, इनका समय 'चार से सात' है। कोमल गान्धार, कोमल निषाद वाले चार थाट काफी, आसावरी, भैरवी और अन्त में तोड़ी थाट के रागों का वर्णन किया है, जिनका समय 'दस से चार' है। यह क्रम भातखण्डे जी के सभी ग्रन्थों में है वह चाहे 'अभिनव राग मञ्जरी' हो या 'भातखण्डे संगीत शास्त्र'।

प्रत्येक थाट में आने वाले रागों को उप-विभागों में विभक्त करके विषय को अधिक सुविधाजनक बना दिया है। जैसे कल्याण और पूर्वी थाट के रागों के तीन वर्ग किए गए हैं:- तीव्र मध्यम वाले राग, बिना मध्यम वाले राग, और दोनों मध्यमों वाले राग। पूर्वांग प्रधान व उत्तरांग प्रधान राग आदि वर्ग बनाकर भी रागों को सरल करके समझाया गया है।

रागों का इतिहासः- भातखण्डे जी ने रागों का जितना विस्तृत इतिहास दिया है वह अभूतपूर्व है। रागों के उन अछूते पहलुओं पर भातखण्डे जी ने प्रकाश डाला है जिनकी ओर अधिकतर विद्वानों का ध्यान तक नहीं गया। उनके इस योगदान की सभी विद्वान एक मत से सराहना करते हैं। प्रत्येक राग का नाम सर्वप्रथम कहाँ मिलता है, वहाँ से लेकर काल क्रम से स्वरों में परिवर्तन होते-होते वर्तमान तक दिया गया है। जैसे राग भैरव, उन्होंने बताया कि इसका उल्लेख सर्वप्रथम संगीत रत्नाकर में कहाँ हुआ। उस समय के स्वर चाहे समझ में नहीं आ रहे हों तो भी वे स्वर क्या थे, यह भी भातखण्डे जी ने वर्णित किया है। उसके बाद मध्यकालीन ग्रन्थ लोचन कृत रागतरंगिणी, अहोबल कृत संगीतपरिजात, हृदय नारायणकृत हृदय प्रकाश व हृदयकौतुक, श्रीनिवास कृत राग तत्त्व विबोध आदि संस्कृत ग्रन्थों के साथ देशी भाषाओं में रचित राजा प्रताप सिंह कृत राधागोविन्द संगीतसार, कृष्णधन बनर्जी कृत गीतसूत्रसार, पन्नालाल गोस्वामी कृत नादविनोद आदि सभी उपलब्ध ग्रन्थों में जैसा विस्तार या परिचय दिया गया है, सबका भातखण्डे जी ने लक्ष्य संगीत की टीका में विस्तृत विवेचन किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्‌देश्यः- भातखण्डे जी हिन्दुस्तानी-संगीत को व्यवस्थित करना चाहते थे और दक्षिण की भाँति पूरे उत्तर भारत में संगीत में एकरूपता लाना चाहते थे। संगीत को शिक्षा का एक विषय बनाना भातखण्डे जी का उद्‌देश्य था। अतः उसके लिये शिक्षक तैयार करना (श्री.म.सं.पृ.172-173) जो आगे चलकर पूरे उत्तर भारत में संगीत की शिक्षा दे सकें, ऐसा लक्ष्य संगीत में उनका अपना ध्येय प्रस्तुत किया गया है। इस उद्‌देश्य में भातखण्डे जी पूर्ण सफल रहे ऐसा आज कहा जा सकता है। इस समय 'भातखण्डे पद्धति' को मानने वालों की पूरे उत्तर भारत में बहुलता है। रागों में एकरूपता भी हैं जबकि भातखण्डे के पूर्व काल में ऐसा नहीं था। स्वरों को लेकर अनेक मत थे पर आज बारह स्वर वाली पद्धति पूरे भारत में प्रचलित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिनव राग मंजरी

भातखण्डे जी ने संस्कृत में संगीत सम्बन्धी तीन ग्रन्थ लिखे:- (1) श्रीमल्लक्ष्य संगीतम्, (2) अभिनव रागमञ्जरी और (3) अष्टोत्तरशततालक्षणम्। लक्ष्य संगीत विस्तृत ग्रन्थ है और अभिनव-रागमञ्जरी मात्र 328 श्लोकों का ग्रन्थ है जिसे संक्षिप्त होते हुए भी भातखण्डे जी के पूरे संगीत-साहित्य का सार कहा जा सकता है। इसकी रचना सन् 1921 ई0 में हुई तब तक भातखण्डे जी ने भारतवर्ष में भ्रमण के साथ-साथ संगीत सम्मेलनों को आयोजित करके उत्तरी संगीत पद्धति को व्यवस्थित कर लिया था।

इस पुस्तक के दो अध्याय हैं:- (1) स्वराध्याय और (2) रागाध्याय

स्वराध्याय:- इस अध्याय के अन्तर्गत निम्न बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है:-.

1. **उद्देश्य** :- पूरे ग्रन्थ के विषय वस्तु की जानकारी दी गई है।

2. **संगीत** :- संगीत दो प्रकार का कहा गया है, मार्ग और देशी। मार्ग संगीत वह है जो अनादि काल से चला आ रहा है और उसका लक्ष्य आत्मा का उत्थान है। देशी-संगीत जनरूचि के अनुसार अलग-अलग प्रान्तों में प्रयुक्त होने वाला संगीत है। यह दो प्रकार का है:- (1) हिन्दुस्तानी संगीत (उत्तरी), (2) कर्नाटकी संगीत (दक्षिणी)। किन्तु इस ग्रन्थ में मात्र उत्तरी संगीत सम्बन्धी जानकारी दी गई है।

3. **नादोत्पत्तिः-** अन्य ग्रन्थों की भाँति इस ग्रन्थ में नाद की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि जब आत्मा बोलने की इच्छा करती है तो वह ब्रह्मग्रन्थि स्थित प्राणवायु को प्रेरित करती है और प्राणवायु अग्नि के संयोग से ऊपर उठती है और हृदय, कण्ठ और मुख के माध्यम से बाहर निकलती है परिणामतः नाद की उत्पत्ति हो जाती है। यह क्रमशः तीन प्रकार का होता है:- मन्द्र, मध्य और तार, जो क्रमशः एक दूसरे से दुगना ऊँचा होता है।

इनके सूक्ष्म भेदों को श्रुतियाँ कहा गया है जिनकी संख्या 22 है।

4. **श्रुतियों के नाम:-** श्रुतियों के परम्परागत बाईस नामों को ज्यों का त्यों स्वीकार किया है जो तीव्रा, कुमुद्वती, मन्दा, छन्दोवती, दयावती, रञ्जनी रक्तिका, रौद्री, क्रोधा, वज्रिका, प्रसारिणी, प्रीति, मार्जनी, क्षिति, रक्ता, सन्दीपनी, आलापिनी, मदन्ती, रोहिणी, रम्या, उग्रा, क्षोभिणी हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5. श्रुति-स्वर व्यवस्थितिः- श्रुतियों में स्वरों की व्यवस्था के विषय में प्राचीन मत का उल्लेख करते हुए उसके विपरीत-क्रम की चर्चा की गई है। प्राचीन क्रम में चौथी, सातवीं, नौवीं, तेरहवीं, सत्तरहवीं, बीसवीं और बाइसवीं श्रुतियों पर षड्ज, ऋषभ आदि स्वर स्थापित किए गए हैं लेकिन वर्तमान में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में स्वरों को विपरीत क्रम से संस्थापित करने का उल्लेख है जैसे षड्ज की चार श्रुतियाँ हैं तो पहली श्रुति पर षड्ज, पाँचवीं पर ऋषभ (ऋषभ की तीन श्रुतियों में से प्रथम पर, परन्तु आरम्भ से गिनने पर पाँचवीं), आठवीं पर गान्धार, दसवीं पर मध्यम, चौदहवीं पर पंचम, अट्ठारहवीं पर धैवत, इक्कीसवीं पर निषाद स्वर स्थापित किए गए हैं। इस प्रकार 22 श्रुतियों में स्वरों की स्थापना को लेकर एक नवीन दृष्टिकोण से प्राचीन षड्ज-ग्राम की 4,3,2,4,4,3,2 श्रुतियों की व्यवस्था को बिना परिवर्तित किये भातखण्डे जी ने स्वर की अन्तिम श्रुति के स्थान पर स्वरों को प्रथम श्रुति पर स्थापित करके बिलावल के ही स्वरों को प्राचीन आधार दिया।

6. सप्तकः- अभिनव राग मंजरी में मन्द्र, मध्य, तार तीनों सप्तकों का उल्लेख किया गया है।

7. विकृत-स्वरः- स्वर जब अपनी शुद्ध अवस्था से ऊँचा या नीचा होता है तो उसे विकृत कहा गया है। मध्यम अपनी शुद्ध अवस्था से ऊँचा हो तो उसे तीव्र-विकृत तथा ऋषभ, गान्धार, धैवत और निषाद अपनी शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर कोमल-विकृत कहे गए हैं। इस प्रकार सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वरों को मिलाकर कुल बारह स्वरों का उल्लेख है।

8. वीणा पर स्वरों की स्थापनाः- वीणा के तार की लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापना को यहाँ दिया गया है। ग्रन्थकार का मत है कि स्वर कान के साथ-साथ वीणा पर देखे भी जा सकते हैं, इसलिए वीणा पर स्वरों की स्थापना दी गई है।

शुद्ध स्वरों को इस प्रकार कहा गया है, पूरे तार के आधे में तार सा, तार सा और पूर्वमेरु के बीच अतितार सा, अन्त्यमेरु और तार सा के बीच म, मध्य और तार सा के तीन भाग कर के दूसरे भाग पर प, मध्य सा और प के तीन भाग करके प की ओर से दूसरे भाग पर रे, प और तार सा के मध्य ध इसका रे से सा-प संवाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होना आवश्यक है, सा और ध के मध्य ग तथा ग से सा-प संवाद करता हुआ नि होता है।

विकृत स्वरों के विषय में मंजरीकार का कथन है सा-रे के मध्य कोमल रे, सा-प के मध्य कोमल ग, म-प के मध्य तीव्र म, कोमल रे से सा-प संवाद करता हुआ कोमल ध तथा प और तार सा के तीन भाग कर प की ओर से दूसरे भाग पर कोमल नि स्थित है।

मञ्जरीकार के स्वरों को देखने से स्पष्ट है कि अधिकतर स्वर अहोबल और श्रीनिवास वाले ही हैं, केवल कोमल ऋषभ, तीव्र मध्यम और कोमल धैवत में अन्तर है। अहोबल और श्रीनिवास का शुद्ध गान्धार-निषाद मंजरीकार का कोमल गान्धार-निषाद है। अहोबल और श्रीनिवास का विकृत गान्धार-निषाद मंजरकीकार का शुद्ध गान्धार-निषाद है। इसलिए तीनों ग्रन्थकारों के अनुसार इन चारों स्वरों का स्थान समान है। मात्र शुद्ध व विकृत का भेद है क्योंकि अहोबल और श्रीनिवास का शुद्ध सप्तक वर्तमान काफी के समान है और मंजरीकार का शुद्ध-सप्तक बिलावल है।

मंजरीकार के अनुसार उपर्युक्त स्वर स्थापना स्वर ज्ञान न रखने वालों के लिए है। स्वरों की स्थापना तो संवाद पर ही आधारित होती है।

ग्रन्थकार के ही शब्दों में:-

स्वरज्ञानविहीनेभ्यो मार्गोऽयं दर्शितो मया।
स्वरसंवादिताज्ञानं स्वरस्थापनकारणम्।। (अभि.रा.म.,पृ.-5)

आगे जिन दो स्वरों में संवाद है उनकी जोड़ियाँ दी गई हैं। वर्तमान समय में यह ग्रन्थ वीणा पर स्वर स्थापना के कारण ही अधिक प्रसिद्ध है। अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों पं. अहोबल और पं. श्रीनिवास की तुलना में मंजरीकार का प्रस्तुतीकरण सरल व स्पष्ट है।

9. वादी-संवादी:- जो स्वर राग में प्रमुखता से प्रयुक्त होता है उसे वादी कहा है। जो उससे संवाद करता है या मिलती जुलती बात करता है अर्थात् वादी से चौथे या पाँचवें क्रम पर होने वाला स्वर संवादी होता है, पीछे-पीछे बोलने वाले स्वर को अनुवादी कहा गया है और विवादी की तुलना शत्रु से की है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

10. ग्रह न्यासः- इस ग्रन्थ में ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास का भी मंजरीकार ने वर्णन किया है।

11. वर्ण-लक्षणः- 'गान क्रियोच्यते वर्णः' अर्थात् गाने की क्रिया को वर्ण कहते हैं। वर्ण चार कहे हैं (अभि.रा.म.,पृ.-6):- (1) स्थायी, (2) आरोही, (3) अवरोही तथा (4) संचारी। एक ही स्वर का बार-बार उच्चारण करना स्थायी, किसी स्वर से ऊपर की ओर जाना आरोही तथा ऊपर से नीचे की ओर उतरना अवरोही तथा इनके मिश्रण से सञ्चारी वर्ण कहलाता है। साथ ही वर्णों के बिना गायन सम्भव नहीं है, इसका उल्लेख है।

12. अलंकारः- अलंकार की परिभाषा इस प्रकार दी गई है।

'विशिष्टवर्णसन्दर्भमलंकारम् प्रचक्षते।' (अभि.रा.म.,पृ.-6)

अर्थात् स्वरों के विशिष्ट समूह को अलंकार कहते हैं। ग्रन्थ में बीस अलंकार भी दिए गए हैं।

13. गमकः- 'स्वरस्य कम्पो गमकः' अर्थात् स्वर का कम्पन गमक होता है तत्पश्चात् शार्गदेव द्वारा वर्णित तिरिप, स्फुरित आदि पन्द्रह गमकों के नाम दिए गए हैं।

14. ग्रामः- तीनों ग्रामों षड्ज-ग्राम, मध्यम-ग्राम और गान्धार-ग्राम का उल्लेख करते हुए वर्तमान में केवल षड्ज-ग्राम ही लक्ष्य में है यह स्वीकार किया गया है।

15. मूर्च्छनाः- मूर्च्छना की यह परिभाषा दी गई हैः-

'सातों स्वरों के क्रमानुसार आरोह-अवरोह को मूर्च्छना कहते हैं जो ग्रामों पर आश्रित होती है।'

16. मेलः- मेल को मूर्च्छना का ही पर्याय बताया है। मंजरीकार के शब्दों मेंः-

मूर्च्छनाशब्दपर्यायो लक्ष्ये मेलः समाहृतः।

मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यञ्जन शक्तिमान्।। (अभि.रा.म.,पृ.-7)

बहत्तर मेलों में से उपयोगी मेल सीमित ही कहे हैं। एक मेल में अनेक राग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो सकते हैं पर रञ्जकता के आधार पर रागों की संख्या सीमित कही है। पाँच स्वरों से कम की तान तो हो सकती है राग नहीं, ऐसा मंजरीकार का मानना है।

17. राग-लक्षणः- राग की परिभाषा देते हुए कहा गया है-

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः।
रञ्जको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः।।

अर्थात् मन को आनन्दित करने वाली उस ध्वनि को राग कहते हैं जो स्वर और वर्ण से विभूषित है ऐसा विद्वज्जन कहते हैं, यह ग्रन्थ में कहा गया है।

18. जनक-मेल (मेल स्वरूप) :- बहत्तर मेलों में से उत्तरी संगीत में उपयोगी कल्याण, बिलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी और तोड़ी ये जनक मेल माने हैं साथ ही इन जनक मेलों के कोमल, तीव्र आदि स्वरों के रूपों का वर्णन है।

19. आलापः- इसके अन्तर्गत ग्रह, अंश आदि दस लक्षणों के अनुसार राग के स्वरों में धीरे-धीरे विस्तार करना आलाप है यह बताया है। आगे रागालाप और रूपकालाप, स्वस्थान नियम का वर्णन है।

20. सुगायक-दुर्गायक- इस अंश में गायकों के गुण-दोषों का वर्णन है।

21. शारीरम्:- शार्ङ्गदेव द्वारा वर्णित मधुर, स्निग्ध, घन ध्वनि को सुशारीर और कटु, रूक्ष और खोखली ध्वनि को कुशारीर कहा गया है। शरीर के साथ ही उत्पन्न होने वाली ध्वनि को शारीर कहा गया है। बिना अभ्यास से ही राग व्यक्त करने की शक्ति जिसमें है वह शरीर है यह बताया है।

रागाध्यायः-इस अध्याय में मंजरीकार ने 122 रागों को दस थाटों के अन्तर्गत अत्यन्त संक्षेप में वर्णित किया है। रागों को वर्णन करने की विधि ह्रदयनारायणदेव से प्रभावित है। जैसे-राग भूपाली का वर्णन करते हुए कहा हैः-

गरी सधौ सरी गश्च पगौ धपौ गरी च सः।
भूपाली कथ्यते लोके मनि हीना च गाँशिकाः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् गरे साध़ सारे ग, पग धप गरे सा, म-नि वर्जित, ग अंश वाला लोक में भूपाली कहलाता है।

इसी प्रकार राग भैरव का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया है:–

सगौ मपौ धपौ मगौ रिगौ मपौ मगौ रिसौ।
भैरवो नित्यपूर्णः स्याद्धैवतांँश प्रभातगः।।

अर्थात् सग मप धप मग रेग मप मग रेसा, धैवत वादी, सदा-सम्पूर्ण प्रभात में गाया जाने वाला भैरवराग है। इसी प्रकार मालकौंस के विषय में कहा गया है:–

निसौ गमौ धनी सश्र सनी धमौ गमौ गसौ।

मालकोशोऽरिपः प्रोक्तो मध्यमांशो निशीथगः।।

अर्थात् .नि सा ग म ध नि सा सा नि ध म ग म ग सा इस प्रकार रे-प रहित मालकौंस है, जो रात में गाया जाने वाला मध्यमवादि राग है।

आगे दसों थाटों के अन्तर्गत उल्लिखित प्रत्येक थाट में आने वाले राग दिए जा रहे हैं:–

1-कल्याण मेल के अन्तर्गत 13 रागः– यमन, भूपाली, शुद्ध कल्याण, चन्द्रकांत, जैतकल्याण, मालश्री, हिण्डोल, हमीर, केदार, कामोद, श्याम, छायानट, गौड़ सारंग।

2-बिलावल मेल के 18 रागः– शुद्ध-बिलावल, अल्हैया-बिलावल, शुक्ल-बिलावल देवगिरि, यमनी-बिलावल, ककुभ, द्वितिया-ककुभा, देशकार, हेमकल्याण, नटराग, पहाड़ी, मॉंडराग, नटबिलावल, लच्छाशाख, सरपरदा, विहंगा (बिहाग), दुर्गा, मलुहा, शंकरा।

3-खमाज मेल के 11 रागः– झिञ्झोटी, खमाज, द्वितीय-दुर्गा, तैलंगी, रागेश्वरी, खम्बावती, गारा, सोरटी, देस, जयजयवन्ती, तिलककामोद।

4-भैरव मेल के अन्तर्गत 13 रागः– भैरव, रामक्री, बंकाल-भैरव, सौराष्ट्रटंक, प्रभात, शिवभैरव, आनन्द-भैरव, अहीर-भैरव, गुणक्री, कलिंग, जोगिया, विभास, मेघरञ्जनी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5-पूर्वीमेल के अन्तर्गत 10 रागः- पूर्वी, पूरिया-धनाश्री, जैतश्री, परज, श्री, गौरी, मालवी, त्रिवेणी, टंकी, वसन्त।

6-मारवा मेल के अन्तर्गत 12 रागः- मारवा, पूरिया, जेतराग, मालीगौरा, साजगिरि, वराटी, ललित, सोहनी-पंचम, द्वितीय-पंचम, भटियार, विभास, भंखार।

7-काफ़ी मेल के 27 रागः- काफी, सैंधवी, धनाश्री, भीमपलासी, धानी पटमञ्जरी, पट्‌दीप, हंसकिंकणी, पीलू, वागेश्वरी, शहाना, सूहा, सुघराई, नायकी-कानड़ा, देवसाख, बहार, वृन्दावनी-सारंग, मध्यमादि-सारंग, सामन्त-सारंग, शुद्ध-सारंग, मियाँ की सारंग, बड़हंस-सारंग, शुद्ध-मल्हार, मेघ, मियाँमल्हार, सूरमल्हार, गौड़मल्हार।

8-आसावरी मेल के अन्तर्गत 10 रागः- आसावरी, जौनपुरी, देवगान्धार, द्वितीय-गान्धार, सिन्धु-भैरवी, देसी, कौशिक-कानड़ा, दरबारी-कानड़ा, अड़ाना, द्वितीय-नायकी।

9-भैरवी मेल के 5 रागः- भैरवी, मालकौंस, आसावरी, (कोमल ऋषभ आसावरी) धनाश्री, विलासख़ानी-तोड़ी।

10-तोड़ी मेल के अन्तर्गत 3 रागः- तोड़ी, गुर्जरी-तोड़ी, मुल्तानी।

अभिनव राग मंजरी भातखण्डे द्वारा संस्कृत में रचित अत्यन्त संक्षिप्त ग्रन्थ है, वीणा पर स्वरों की स्थापना के कारण इसकी प्रसिद्धि है। इस पुस्तक का नाम अभिनव राग मंजरी है इसलिए पं0 भातखण्डे जी मंजरीकार नाम से भी जाने जाते हैं। अन्तिम श्रुति के स्थान पर प्रथम श्रुति पर स्वरों की स्थापना भी भातखण्डे जी ने इसी पुस्तक में दी है।

उन्हीं के शब्दों मेंः-

हिंदुस्थानीयसंगीते श्रुतिक्रमाविपर्यतः।
एते शुद्धस्वराः सप्त स्वस्वाद्यश्रुतिसंस्थिताः।।

(अभि. रा. मं. पृ.3 श्लोक 25)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् हिन्दुस्तानी संगीत में श्रुतियों का विपरीत क्रम करते हुए ये 7 शुद्ध स्वर अपनी-अपनी प्रथम श्रुति पर स्थित हैं।

प्रणव-भारती

लेखक परिचय - पं. ओंकार नाथ ठाकुर का जन्म 24 जून, 1897 को गुजरात राज्य के 'जहाज' ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. गौरीशंकर ठाकुर तथा माता का नाम झवेरवा था। पं. ओंकार नाथ ठाकुर, विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रमुख शिष्यों में से एक थे। स्वरों पर उनका ऐसा अधिकार था कि वे परस्पर विरोधी भावों को भी जब चाहें एक साथ अभिव्यक्त कर सकते थे। लय के विभिन्न प्रयोग करके जहाँ वे वैचित्र्य उत्पन्न करने की क्षमता रखते थे वहाँ द्रुत गति की विशिष्ट तानों का प्रयोग करके बादलों की रिमझिम तथा अत्यन्त द्रुत लय की गमकयुक्त तानों का प्रयोग करके कभी मेघ की गर्जना और कभी बिजली की कड़क का अनुभव कराने में भी सिद्ध थे। भाषा में 'काकु' यानी स्वरभेद को ही वे मुख्य रूप से अभिव्यक्ति का कारण मानते थे। उन्होंने लाहौर के चिड़ियाघर में क्रुद्ध सिंह पर काफ़ी की स्वरावली का प्रयोग करके उसे वश में किया था। सं. संचयन (पृ.1)

सन् 1950 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (बी. एच. यू.) के उपकुलपति के आग्रह पर पंडित जी ने वहाँ संगीत शिक्षण का कार्य आरम्भ किया। वे स्वयं सदा समय पर आते थे और इसी कारण अध्यापक, विद्यार्थी, कर्मचारी सभी समय का पूरा ध्यान रखते थे। विशेष अवसरों पर राज्यपाल जैसे मुख्य अतिथि के आने में देर होने पर भी ओंकारनाथ जी के कार्यक्रम समय से शुरू होते थे। पंडित जी के गाये हुए अनेक राग और भजन ध्वनि मुद्रित अवस्था में आज भी उपलब्ध हैं। उनमें साहित्य, संगीत और कला का त्रिवेणी संगम था, इन्होंने अनेक बन्दिशों की रचना 'प्रणव रंग' के उपनाम से की है। पंडित जी के प्रकाशनों में संगीतांजली 1 से 6

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भागों में और प्रणवभारती मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त अनेक लेख भी गुजराती और हिन्दी भाषाओं में उपलब्ध हैं। ठाकुर जी को लगभग चालीस पुरस्कारों से अलंकृत किया गया। जिनमें भारत सरकार द्वारा 1955 में पद्मश्री, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी और रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय कलकत्ता द्वारा डी. लिट की उपाधि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त इन्हें सौ स्वर्ण मुद्राएँ श्रीमान रामचन्द्र बनर्जी कलकत्ता द्वारा तथा चाँदी की बहुमूल्य वीणा स्वर्ण जयन्ती समिति द्वारा प्रदान की गई। 1965 के मई महीने में पक्षाघात के बाद 29 दिसम्बर, 1967 को उनका देहावसान हो गया।

ग्रन्थ परिचय – प्रणव भारती का प्रथम संस्करण 1956 और दूसरा 1997 में प्रकाशित हुआ। इसमें सात अध्याय और अन्त में दो परिशिष्ट दिये गये हैं। अध्याय के स्थान पर तन्त्री शब्द का प्रयोग किया गया है। पहली तन्त्री में नाद, दूसरी में श्रुति स्वर ग्राम, तीसरी में प्राचीन तथा मध्ययुगीन विकृत स्वर व्यवस्था, चतुर्थ में पं. भातखण्डे के श्रुति स्वर का आलोचनात्मक अध्ययन है। पाँचवीं तन्त्री में शुद्ध सप्तक और सूक्ष्म विकृत स्वरों का, छठी में मूर्च्छना जाति का और सप्तम तन्त्री में वर्ण-अलंकार तान पर विचार किया गया है।

प्रथम तन्त्री

इस अध्याय में नाद पर विस्तृत चर्चा की गई है। सभी भाषाओं का आधार नाद है अतः सम्पूर्ण वांगमय नाद पर ही आश्रित है। अनाहत नाद का सम्बन्ध उपासना से है, इसके दो रूप हैं उपायस्वरूप और उपेयस्वरूप। उपायस्वरूप में साधना की प्रथमावस्था में स्थूल नाद समुद्र-गर्जन, भेरी, निर्झरादि की ध्वनि के सदृश, दूसरी अवस्था में घण्टा, मर्दल आदि की ध्वनि के समान नाद सुनाई देता है और चरमावस्था में किंकिणी, वंशी, वीणा आदि की ध्वनि के सदृश नाद श्रवणगोचर होता है। इस प्रकार 'नाद' सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपेयस्वरूप में यह कहा गया है, कि जब तक 'नाद' है, तब तक मन है। 'नाद' के अन्त में मन की 'उन्मनी' अवस्था आती है। निरन्तर 'नादानुसन्धान' से वासना क्षीण हो जाती है और 'निरंजन' में मन और प्राणवायु लीन हो जाते हैं।

वाणी के परा, पश्यन्ती, मध्या और वैखरी इन चारों भेदों का वर्णन करते हुए संगीत का सम्बन्ध मध्यमा वाणी से बताया है। शब्दों का स्वाभाविक अर्थ, मन्त्र और स्वरों का स्वाभाविक अर्थ राग का कारण है। शब्द का जप और स्वर का अभ्यास मोक्ष मार्ग को सरल बनाता है। संगीत की भाषा विश्वव्यापी है और प्राणिमात्र के हृदय तक उसकी पहुँच है। संगीत के स्वररूप नाद में भिन्न-भिन्न अक्षरों का प्रयोग नहीं होता इसीलिए उसके अर्थ एकत्रित और अखण्डित रहते हैं।

पाँच संख्या के विषय में कहा है कि अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पाँच अक्षरों के उच्चारणों के पाँच स्थान हैं। शेष मिश्रित स्वर हैं। शिवमतानुसार संगीत में भी आधारभूत पाँच ही स्वर माने हैं। सामवेद का आदिगान भी पाँच स्वरों से ही होता था। राग-रागिनी व्यवस्था में शंकर के पाँच मुखों से पाँच रागों की उत्पत्ति मानी है। सा-प संवाद भी पाँच का ही द्योतक है। राग में कम से कम पाँच स्वर होने आवश्यक हैं। संगीत और व्याकरण में कुल मिलाकर बारह स्वर माने जाते हैं। जिस प्रकार सभी भाषाओं का आधार स्वर अ है उसी प्रकार संगीत का सा भी सभी स्वरों का आधार है। शिव के डमरू से उत्पन्न चौदह माहेश्वर सूत्र ही सभी विद्याओं के आधार हैं। रूद्रडमरू में संगीत के सातों स्वरों के विषय में कहा गया है, **अइउण सरिगः स्मृता, एओङ् मपौ, धनी एऔच।** आगे व्याकरण और संगीत के स्वरों को प्रणव भारती में सारणी द्वारा दर्शाया गया है।

इस प्रकार प्रथम तन्त्री में पं. ओंकार नाथ ने योग, तन्त्र, व्याकरण, न्याय-मीमांसा, साहित्यशास्त्र इत्यादि के अनुसार नाद की व्याप्ति और महत्व को समझाया। साथ ही व्याकरण और संगीत के स्वरों का समन्वय भी स्पष्ट किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय तन्त्री

इस अध्याय में श्रुति, स्वर, ग्राम पर विस्तृत विवेचना की गई है। श्रुति की परिभाषा इस प्रकार दी है "जो कानों से सुनी जा सके, जिनकी ऊँचाई-नीचाई का स्पष्ट अनुभव किया जा सके, और जो संगीतोपयोगी हों ऐसे नादों को ही श्रुति कहा है।" श्रुतियों की संख्या एक, दो, तीन, चार, नौ, बाईस, छियासठ और अनन्त प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार ही कही गई है। सभी ध्वनियों की प्रारम्भिक अवस्था श्रुति एक प्रकार की, श्रुति (पिच) और अन्तराल के भेद से दो प्रकार की, इन्द्रिय वैगुण्य और सप्तक भेद से तीन प्रकार की, धातु भेद से चार प्रकार की चार, तीन, दो श्रुतियों के स्वर होते है इसीलिए इनके योग से नौ प्रकार की, एक सप्तक की बाईस और छियासठ श्रुतियाँ प्राप्त करने के लिए ग्रन्थकार ने तीन विधियाँ दी हैं- (क) प्रत्येक श्रुति के तीन-तीन भाग करें 22x3=66 (ख) मन्द्र, मध्य, तार सप्तकों की 22+22+22=66, (ग) कोहल कथित छासठ श्रुतियों को पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार प्रणवभारती में इस प्रकार दिया गया है- सर्वप्रथम बाईस श्रुतियों में यथास्थान अपने सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वरों को स्थापित कर लिया जाए। उसके पश्चात् प्रत्येक स्वर का जो नाद है, उससे नीचे और ऊपर दोनों ओर एक-एक प्रमाण 'श्रुति रखें, जिसका गणित मूल्य 81/80 है। इसलिए प्रत्येक स्वर के दोनों ओर प्रमाण-श्रुति लगाने से हमें मूल बाईस श्रुतियों से भिन्न ऐसे अन्य ध्वन्यन्तर मिलेंगे ही। जैसे पहले एक-एक प्रमाण श्रुति लगाई गई, तद्वत् पुनः प्रत्येक स्वर के ऊपर या आगे पीछे दो-दो प्रमाण-श्रुतियाँ रखी जाएँ। प्रमाण श्रुतियों का प्रयोग करने से हमें बाईस के अतिरिक्त अन्य इकत्तीस नाद अधिक मिल जाते हैं और इस प्रकार कुल मिलाकर तिरपन श्रुत्यन्तर प्राप्त हो जाते हैं। यदि दो श्रुत्यन्तर वाले सभी स्वरों से प्रत्येक के अन्तर को चार-चार भागों में विभक्त कर दें तो हमें बारह नए ध्वन्यन्तर मिल जायेंगे और इस प्रकार एक सप्तक में 53+12=65 श्रुत्यन्तर प्राप्त होंगे। सप्तक पूर्ण करने के लिए अन्तिम 'सा' की श्रुति जोड़ देने से श्रुतियों की 66 संख्या पूर्ण होगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रुतियों के और उनकी जातियों के प्राचीन नाम निरर्थक नहीं हैं इनमें कोई गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है इसकी खोज करते हुए ग्रन्थकार अपने अनुभवों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि एक दिन तोड़ी के ऋषभ गान्धार की आलापचारी करते-करते उन स्वरों को बार-बार छूते-छूते हृदय कुछ ऐसी अवस्था में डूब गया कि सहज ही में आँखों से जल बहने लगा। ज्यों-ज्यों उन स्वरों का दिल पर असर होता गया, करुणा बढ़ती ही गई। वर्षो बाद एक बार अपने शिष्यों को मैं अपने बनाए हुए श्रुति हार्मोनियम पर तोड़ी का वह ऋषभ और गान्धार सुना रहा था उस समय उस प्राचीन अनुभूति का पुनःदर्शन हुआ और तब ज्ञात हुआ कि वह दयावती श्रुति का परिणाम था। उस दयावती श्रुति की जाति करुणा है, इस प्रकार दयावती श्रुति के नाम और उसकी करुणा जाति की सार्थकता अनुभव द्वारा साकार हो गई।

श्रुति जातियों का सम्बन्ध उन-उन स्वरों की ऊँचाई-नीचाई अथवा भावाभिव्यजंकता के अतिरिक्त उनके उच्चार के साथ भी हो सकता है दीप्ता जाति का बुलन्द उच्चार, मृदु जाति का कोमल, आयता जाति का दीर्घ उच्चार के साथ, मध्या का मध्यम प्रकार के उच्चार (न बहुत बुलन्द न बहुत कोमल) और करुणा जाति का कम्पसहित उच्चार के साथ सम्बन्ध हो सकता है।

स्वर- वह अनुरणनात्मक नाद जो किसी प्रकार के आघात से स्वयमेव उदभूत होता हो, जो अनुरंजक हो, जो श्रोतृचित्त को सुखद हो, जो नियत श्रुति-स्थान पर स्थित होते हुए भी अपने स्थान से नीची-ऊँची गति पाने से विकृत होता हो और आत्मा के सुख-दुःखादि संवेदनों को अभिव्यक्त करने में जो सहायक हो, ऐसे नाद को स्वर कहते हैं। श्रुति और स्वर में भेद बताते हुए मंतग के तादात्म्य, विवर्त, कार्यत्व, परिणामिता और अभिव्यंजकता को भी प्रणव भारतीय में दिया गया है। साथ ही कहा गया है कि श्रुतियाँ उच्च-नीच नाद के रूप में परस्पर विभिन्न हैं। वही श्रुतियाँ जब रागों में प्रयुक्त होती हैं, तब वे स्वर बनती हैं। इस दृष्टि-बिन्दु से स्वर और श्रुति में अभिन्नत्व है। श्रुति ही स्वर का स्थान प्राप्त करती है। इसी से एक रूप में कह सकते हैं कि श्रुति कारण है और स्वर कार्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सितार आदि वाद्यों पर एक श्रुति का अन्तराल मन्द्र धैवत बाज के तार और पंचम में मिले हुए तार के दूसरे पर्दे पर प्राप्त किया जा सकता है। इन दोनों धैवतों में एक प्रमाण श्रुति या 81/80 का अन्तर है।

ग्राम– षड्ज ग्राम में सा–प और मध्यम ग्राम में रे–प का संवाद होता है। सितार आदि वाद्यों पर मन्द्र प के पर्दे को सा मानकर काफ़ी के स्वर बजाने से प्राचीन षड्ज ग्राम की प्राप्ति हो जाती है ऐसा पं. ओंकार नाथ का मानना है। क्योंकि षड्जग्राम की चौथी मूर्च्छना शुद्ध षाड्जी प से ही आरम्भ होती है। इसी प को अब सा मान कर चलें तो सा, रे, ग, म, प, ध, नि क्रमशः चार, तीन, दो, चार, चार, तीन, दो श्रुत्यन्तर के होंगे।

तानपूरे पर षड्जग्राम के स्वर प्राप्त करने के लिए तानपूरे का पहला तार म में मिलाने से सहज ही त्रिश्रुतिक रे–ध प्राप्त होंगे। उसके बाद आधुनिक ग–नि की जगह यदि दो–दो श्रुति वाले प्राचीनों के ग–नि गले से लगाएँगे तो सहज ही में षड्जग्रामिक स्वर गाये जा सकेंगे। इस प्रकार इस अध्याय में श्रुति स्वर और ग्राम को वर्तमान सितार और तानपूरे पर प्राप्त करने की विधि का वर्णन किया गया है।

इस द्वितीय तन्त्री में श्रुति स्वर ग्राम पर चर्चा की गई है। जिसके अन्तर्गत श्रुति की परिभाषा उसकी संख्या 1, 2, ,3, 4, 9, 22, 66 और अन्नत की गई है स्वर के अन्तर्गत स्वर की परिभाषा उसकी शुद्ध विकृत रूप और षड्ज, मध्यम ग्राम के स्वरों की प्राप्ति वर्तमान सितार के आधार पर बताई गई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीय तन्त्री

इस तन्त्री में वैदिक काल से लेकर अहोबल तक के विकृत स्वरों का विस्तृत इतिहास दिया गया है, वैदिक काल में सामगान के सात स्वरों के लिए 'यम' शब्द प्रयुक्त हुआ है और तीव्र, कोमल अथवा 'चढ़ी, 'उतरी' इन विकृत स्वर-अवस्थाओं के लिए 'मृदुत्व' और 'तीक्ष्णत्व' शब्दों का उपयोग किया गया है।

भरत और मतंग ने विकृत स्वर, अन्तरगान्धार और काकली निषाद ये दो माने हैं। इनके अतिरिक्त षड्ज साधारण और मध्यम साधारण भी कहा है। भरत के समय विकृत स्वरों की प्राप्ति मूर्च्छना विधि से की जाती थी।

शार्गदेव के बारह विकृत स्वर भरत द्वारा कहे गये षड्ज साधारण और मध्यम साधारण तथा अन्तर काकली से ही प्राप्त हो जाते हैं जैसे- षड्जसाधारण में च्युत सा, कैशिक नि, विकृत (चतुश्रुतिक) रे। मध्यम साधारण में, साधारण ग, च्युत म और कैशिक प, मध्यम ग्रामिक तीन श्रुति का प प्राप्त करते समय चतुश्रुतिक ध होता है, अन्तर ग के समय म अपने स्थान पर रहते हुए दो श्रुति का अच्युत म और काकली नि के समय दो श्रुति का सा अच्युत सा कहलाता है। शांगदिव के बारह विकृत स्वर इस प्रकार हैं-

1. च्युत सा	7. अच्युत म
2. अच्युत सा	8. मध्यमग्रामिक प
3. विकृत रे	9. कैशिक प
4. साधारण ग	10. विकृत ध
5. अन्तर ग	11. कैशिक नि
6. च्युत म	12. काकली नि

इस प्रकार शार्ङ्गदेव ने कोई नये स्वर नही कहे, भरत के विकृत स्वरों को ही भिन्न रीति से स्पष्ट किया है।

कर्नाटकी संगीत के रामामात्य ने स्वरमेल कलानिधि में शार्ङ्गदेव के बारह विकृत स्वरों में से अच्युत सा, विकृत रे, अच्युत म, कैशिक प, विकृत ध इन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाँच को जो अपना स्थान नहीं छोड़ते अस्वीकार किया। शेष सात विकृत स्वर माने हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं- च्युत सा-नि, च्युत म-ग, च्युत प-म, साधरण ग, अन्तर ग, कैशिक नि, और काकली नि।

सोमनाथ ने राग विबोध में रामामात्य के सात स्वरों के अतिरिक्त तीन विकृत स्वर और माने हैं जो चतुःश्रुतिक रे, चतुःश्रुति ध और षट्श्रुति म हैं। मेल प्रकरण में सोमनाथ ने पन्द्रह विकृत स्वर माने हैं।

व्यंकटमखी ने चतुर्दण्डी प्रकाशिका में मात्र पाँच विकृत स्वर माने हैं। साधारण ग, अन्तर ग, वराली म, कैशिक नि और काकली नि इनमें वराली म नवीन नाम है। व्यंकटमखी बहत्तर मेलकर्ताओं के लिए अधिक प्रसिद्ध हुए।

उत्तर भारतीय संगीत भरत काल से चला आ रहा है इस पर मुस्लिम या विदेशी जातियों का प्रभाव नहीं है। ऐसा पं. ओंकार नाथ का मानना है। अकबर के समकालीन पुण्डरीक विट्ठल के सद्राग चन्द्रोदय, रागमञ्जरी, रागमाला व नर्तन निर्णय ये चार ग्रन्थ हैं जिनमें सद्राग चन्द्रोदय और राग मञ्जरी में मेल वर्गीकरण और रागमाला तथा नर्तन निर्णय में राग-रागिनी वर्गीकरण को स्वीकार किया है। इनका शुद्ध सप्तक मुखारी है जो पुण्डरीक विट्ठल को कर्नाटकी देश का सिद्ध करता है। पर इन्होंने रागों का वर्णन उत्तरी संगीत का ही किया है। पुण्डरीक ने पाँच, छह, अठारह, उन्नीस क्रम की चार श्रुतियों के अतिरिक्त अठारह श्रुतियों को संगीत में उपयोगी बताया है।

उत्तर के ग्रन्थकरों में पं. अहोबल प्रमुख हैं इन्होंने गणित के अनुसार वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों की स्थापना करके नया रास्ता दिखाया है। 36 इंच के तार पर अहोबल के शुद्ध स्वरों रे, ग, म, प, ध, नि को प्रणव भारती में क्रमशः चार, छह, नौ, बारह, चौदह, सोलह तथा अठारह इंच पर दर्शाया गया है। विकृत स्वरों को भी विधिवत रूप से दिया गया है। पं. अहोबल ने सात शुद्ध और बाईस विकृत कुल उन्तीस स्वर कहे हैं। सा-प के अतिरिक्त शुद्ध अवस्था से ऊँचे तीव्र, तीव्रतर आदि चौदह और रे, ग, ध, नि के एक-एक श्रुति नीचे होने पर कोमल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और दो-दो श्रुति नीचे होने पर पूर्व कुल आठ विकृत स्वर दिये हैं। कोमल रे-ध का सर्वप्रथम प्रयोग पं. अहोबल ने ही किया है। बाइसों श्रुतियों का उपयोग संगीत पारिजात में किया गया है।

इस प्रकार वैदिक युग से लेकर संगीत पारिजात (1650) तक के विकृत स्वरों का वर्णन इस तन्त्री में विस्तारपूर्वक दिया गया है। साथ ही मुक्त तन्त्री या खुला तार षड्ज न होकर वर्तमान सितार का मन्द्र प ही षड्ज ग्राम का मूल स्वर षड्ज है, इस बिन्दु पर बल दिया गया है।

चतुर्थ तन्त्री

इस तन्त्री में पं. भातखण्डे द्वारा मान्य श्रुति, स्वर सम्बन्धी धारणाओं का तत्सम्बन्धी उद्धरण देकर खण्डन किया गया है। भातखण्डे के श्रीमल्लक्ष्यसंगीत के उद्धरण उनके अपने ही मराठी ग्रन्थ हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति (भातखण्डे संगीत शास्त्र) में दिये गये हैं। जिसकी कटु आलोचना की गई है। पं. भातखण्डे संगीत को परिवर्तनशील मानते हैं, इसके विपरीत पं. ओंकार नाथ का मानना है कि मौलिक सिद्धान्त संवाद आदि अपरिर्वतनशील होते हैं केवल रागों के नाम आदि बाह्यय अंग ही समय के साथ परिवर्तित हुए हैं।

स्वरों की स्थापना प्राचीन ग्रन्थकारों ने अन्तिम श्रुति पर इसके विपरीत भातखण्डे ने अभिनव राग मंजरी में प्रथम श्रुति पर की है। इस परिवर्तन की प्रणव भारती में आलोचना की गई है। पं. भातखण्डे भरत और शांर्गदेव को समान श्रुतिवादी मानते हैं और मध्ययुगीन लोचन, अहोबल आदि को असमान श्रुतिवादी। इसके विपरीत पं. ओंकारनाथ सभी प्राचीन एवं मध्ययुगीन ग्रन्थकारों की श्रुतियाँ असमान मानते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भातखण्डे ने रे से संवाद करता हुआ (270 x 3/2) 405 आन्दोलन का चतुश्रुतिक ध माना है, प्रणवभारती में तानपूरे के स्वयंभू ग से सा-म भाव से और सा से षटश्रुति संवाद करता हुआ 400 आन्दोलन का ध मानने पर बल दिया है।

इस प्रकार भरत एवं शर्ङ्गदेव की असमान श्रुतियाँ, अहोबल के वीणा पर स्वरों की स्थापना और त्रिश्रुति या 400 आन्दोलन के ध की चर्चा इस तन्त्री में विस्तारपूर्वक की गई है।

पञ्चम तन्त्री

इस तन्त्री में शुद्ध सप्तक और सूक्ष्म विकृत स्वरों पर गहराई से विचार किया गया है। शुद्ध सप्तक के विषय में कहा गया है कि सितार आदि वाद्यों के मन्द्र प को सा मानने से उसके मध्यम को षड्ज मानकर आरम्भ किया हुआ स्वर-सप्तक ही शुद्ध और प्राकृतिक है। आज के बिलावल में उन्हीं भरतोक्त और सामगान-सम्मत शुद्ध स्वरों की प्राकृतिक परम्परा अखण्ड रूप से विद्यमान है। अधुना प्रचलित भारतीय शुद्ध स्वर यानी बिलावल का स्वर-सप्तक प्राचीन परम्परा से ही चला आया है। पाइथागोरस से लेकर अमीर खुसरो और अमीर खुसरो से लेकर आज तक वे स्वर किसी से प्रभावित नहीं हुए हैं। वही स्वर-सप्तक शुद्ध है, वही प्राकृतिक है और उसे कहीं से उधार लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। प्राकृतिक होने के नाते वह सर्वव्यापी है, विश्व-व्यापी है।

पं. ओंकारनाथ जो अपने समय के सिद्ध और प्रतिष्ठित गायक थे, मानते हैं कि सभी श्रुतियाँ रागों में प्रयुक्त होती हैं जैसे अतिकोमल रे-ध के विषय में कहा गया है कि 'सा रे̱ सा' या 'प ध̱ प' यों केवल छूकर ही रे-ध का प्रयोग किया जाता हो। ऐसे रागों में रे-ध एक-एक श्रुति के ही लगेंगे और उनकी 'अतिकोमल' संज्ञा होगी। इसी प्रकार जयजयवन्ती और तोड़ी में अतिकोमल ग का प्रयोग होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ललित में जब शुद्ध म पर दीर्घ मुकाम करके म-मं-म, यों तीव्र म को मात्र थोड़ा सा छूकर पुनः शुद्ध म पर ठहरते हैं, ऐसी अवस्था में शुद्ध म के बाद की श्रुति वाला तीव्र म ही लगता है, किन्तु जब तीव्र म पर कुछ देर ठहरते हैं, तब शुद्ध म से दो श्रुति के अन्तर पर जो तीव्रतर म स्थित है, उसी का प्रयोग होता है। इस प्रकार ललित में तीव्र और तीव्रतर दोनों मध्यम का प्रयोग लक्ष्यसम्मत है।

मालकौंस में तानपूरे का प्रथम तार म में मिला रहने से इसके साथ नव-श्रुत्यन्तर से संवाद करने वाला अति कोमल नि ही प्रयुक्त होता है। किन्तु भीमपलासी में वही तार प में मिलाया जाता है, अतः प के साथ षट्श्रुत्यन्तर से संवाद करने वाला कोमल नि, जो कि मालकौंस के नि से एक श्रुति ऊँचा है, वही भीगपलासी में प्रयुक्त होता है। श्रुति की दृष्टि सें मालकौंस में क्षोभिणी और भीमपलासी में तीव्रा श्रुति स्वर का रूप लेती है। यदि आलाप और तानों द्वारा भाव का दर्शन कराना चाहते हैं, तो इन सूक्ष्म स्वरान्तरों को अपनाना पड़ेगा, उनसे उद्भूत भाव सृष्टि का विकास करना पड़ेगा। उनको अपनाए बिना, हम रागों की रस-सिद्धि, जो कि संगीत का प्राण है, उसे प्राप्त नहीं कर सकते। इस प्रकार इस अध्याय में बिलावल के परम्परा प्राप्त शुद्ध स्वर और सूक्ष्म विकृत स्वरों के प्रयोग द्वारा ही राग के रस की सिद्धि पर बल दिया गया है।

छठी तन्त्री

इस तन्त्री में मूर्च्छना और जाति गान पर चर्चा की गई है। सामान्यतः मूर्च्छनाओं के स्वर-रूप स्थूल मान से एक से दिखाई देते हैं फिर भी उनकी श्रुति व्यवस्था भिन्न है। मूर्च्छना को स्पष्ट करते हुए कहा गया है मान लें कि तानपूरे पर षड्ज बज रहा है और हमें गान्धार की मूर्च्छना करनी है। उस समय षड्ज के गान्धार तक हम पहुँचते हैं और उसे स्थिर करके उस गान्धार को षड्ज का स्थान दे देते हैं। उस अवस्था में गान्धार का गान्धारत्व मूर्च्छित हो जाता है और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह षड्जत्व को पा जाता है। तदनुसार अन्य सभी स्वरों की संज्ञाएँ बदल जाती हैं। जैसे कि ग-म-प-ध-नि-सा-रे ये मूल स्वर क्रमशः सा-रे-ग-म-प-ध-नि हो जाएँगे। इसी से उनके अन्तराल अपने आप परिवर्तित हो जाएँगे।

मूर्च्छनाएँ ग्राम पर आश्रित होती हैं षड्जग्राम की पहली मूर्च्छना 'उत्तरमन्द्रा' को भरत ने षड्ज से आरम्भ करने को कहा है। क्योंकि भरतोक्त 'अविनाशी मध्यम' को षड्ज मानने से ही शुद्ध षाड्जी का आरंभ-स्थान वर्तमान सितार के मन्द्र पंचम पर आता है, और **पञ्चमेन शुद्ध षड्जा** यह वचन सार्थक होता है, अन्यथा नहीं। षड्जग्राम का पंचम ही एक ऐसा स्थान है, जहाँ से बनी हुई स्वरावली में षड्ज-पंचम भाव टूट जाता है। इसीलिए पं. ओंकार नाथ ठाकुर ने षड्जग्राम के पंचम से यानी आधुनिक ऋषभ से मध्यमग्राम का आरम्भ करने को कहा है। अतः कहा जा सकता है कि जिस प्रकार षड्जग्राम की शुद्ध षाड्जी मूर्च्छना में षड्जग्राम की मूल स्वरावली उपलब्ध होती है, तद्वत् मध्यमग्राम की शुद्धमध्यमा मूर्छना में मध्यमग्राम की मूल स्वरावली प्राप्त होगी। इस प्रकार वर्तमान सितार पर मूर्च्छनाओं का प्रारम्भिक स्थान स्पष्ट कर दोनों ग्रामों की चौदह मूर्च्छनाओं के शुद्धा, सान्तरा, सकाकली, सकाकल्यन्तरा कुल 14x4=56 भेद दिये हैं षाडव तानें उनचास और औडव पैंतिस कुल चौरासी मूर्च्छना तानें दी गई हैं।

जातिः- यहाँ मतंगोक्त जाति की चार परिभाषाएँ देकर मूर्च्छना और जाति में अन्तर करते हुए कहा गया है कि मूर्च्छना केवल स्वर समूह है और जाति उसे कहना चाहिए, जिसके द्वारा राग-रस की निष्पत्ति हो। भरत के अनुसार मूर्च्छना के स्वर सप्तक में निम्नलिखित दस लक्षणों के लगने से ही वह गानोपयोगी होकर जाति कहलाती है। ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडवित एवं औडवित। प्रणव भारती में इन दस लक्षणों का विवरण दिया गया है। सन्यास और विन्यास में अन्तर करते हुए मतंग का कथन है कि सन्यास स्वर उसे समझना चाहिए, जो कि अंश का विवादी न होते हुए, गीत के प्रथम खण्ड (विदारी) के अन्त में प्रयुक्त होता है। यदि यही सन्यास स्वर पद के अन्त में प्रयुक्त होता है, तो वह विन्यास कहलाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुद्धा, विकृता और संसर्गजा इस प्रकार जातियों के तीन भेद किये गये हैं। जिन जातियों का नाम स्वर ही अंश, ग्रह, न्यास एवं अपन्यास हो और जिनका न्यास तार में कभी न हो तथा जो पूर्ण हों, वे शुद्धा कहलाती हैं जैसे षाड्जी, आर्षभी, गान्धारी आदि। विकृता जातियों के विषय में कहा गया है कि विकृत जातियाँ दो प्रकार से बनती हैं- (1) पूर्णत्व सम्बन्धी नियम को विकृत करने से और (2) जिस स्वर से जिस शुद्धा जाति का नामकरण हुआ हो, उसी स्वर को अंश, ग्रह, अपन्यास मानने के नियम का उल्लंघन करने से। दो, तीन, चार, पांच तक शुद्ध जातियों के मिश्रण से संसर्गजा जातियां बनती हैं। सात शुद्ध और ग्यारह संसर्गजा मिलाकर कुल अठारह जातियाँ प्रसिद्ध हैं। विकृता और संसर्गजा का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि एक तो प्रत्येक जाति के स्वरूप में कुछ नियमों के परिवर्तन से उसी जाति के अन्तर्गत अवान्तर भेदों की सृष्टि करता है और दूसरे प्रकार का विकृतत्व दो या उससे अधिक जातियों के मिश्रण से जातियों के संसर्गज प्रकार उत्पन्न करता है। ये संसर्गज जातियाँ किसी एक जाति के अवान्तर भेद न होकर स्वतन्त्र एवं पृथक स्वरूप वाली होती हैं।

जातिसाधारण- भरत और शार्ङ्गदेव के उद्धरणों से जातिसाधारण के विषय में कहा गया हैं कि एक ग्राम से उत्पन्न होने वाली एक से अंशवाली जातियों का जो समान गान होता है, उसे विज्ञ लोग जातिसाधारण कहते हैं। षड्जग्राम की शुद्धषाड्जी और मध्यमग्राम की शुद्धमध्यमा मूर्च्छना इन दोनों की स्वरावली में समानता है, यद्यपि दोनों के श्रुत्यन्तरों में कुछ भेद अवश्य है। शुद्धमध्यमा में पंचम त्रिश्रुतिक और धैवत चतुःश्रुतिक रहता है, जब कि शुद्धषाड्जी में पंचम चतुःश्रुतिक और धैवत त्रिश्रुतिक रहता है। दोनों का रूप आधुनिक काफी सदृश है, यह उनकी समानता है, ऐसी ही समानता मूर्च्छनाओं से बनी हुई जातियों में भी पाई जाती होगी। अंश स्वर की समानता की ओर भी भरत का संकेत प्रतीत होता है। रागों या जातियों का रसों से सम्बन्ध जोड़ते हुए पं. ओंकार नाथ का कथन है कि भिन्न-भिन्न स्वर-संगतियों द्वारा भिन्न-भिन्न भावों और रसों की अभिव्यक्ति का जैसे हमें आज अनुभव हो रहा है, उसी प्रकार भरतकाल में भी भिन्न स्वरों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरान्तर भिन्न-भिन्न भावों की सृष्टि करते होंगे। सभी ग्रन्थों में मध्यम पंचम का बाहुल्य हास्य श्रृंगार में, षड्ज-ऋषभ का बाहुल्य वीर-रौद्र अद्भूत में, गान्धार-निषाद का बाहुल्य करुण में और धैवत का बाहुल्य बीभत्स भयानक में उपयोगी होता है।

इस प्रकार मूर्च्छनाओं की परिभाषा वर्तमान सितार आदि पर उनका स्थान जाति के शुद्ध, विकृत और संसर्गज भेद और जातिसाधारण का इस तन्त्री में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

सप्तम तन्त्री

इस तन्त्री में वर्ण, अंलकार और तान का वर्णन है। वर्ण के विषय में कहा गया है कि भरत ने दो प्रकार के वर्ण बताए हैं-

नाट्योपयोगी वर्ण - जिनका उच्चार भेद से संबन्ध है।
संगीतोपयोगी वर्ण - जिनका स्वरों के नीचे-ऊँचे, स्थिर और संचरित रूपों के साथ संबन्ध है।

प्रणव भारती में नाट्य के उदात्त के साथ संगीत के आरोही का, अनुदात्त के साथ अवरोही का, स्वरित के साथ स्थायी का और कंपित के साथ संचारी का सम्बन्ध जोड़ा गया है। नाट्योपयोगी वर्णों का भरत ने रस के साथ सीधा संबन्ध जोड़ा है। यथा-हास्य-श्रृंगार के लिये स्वरित और उदात्त, वीर-रौद्र अद्भूत के लिये उदात्त और कम्पित, करुण-वीभत्स भयानक के लिये अनुदात्त, स्वरित और कम्पित इस प्रकार विभिन्न रसों के लिये वर्णों का प्रयोग करना चाहिये।

इसी प्रकार भरत ने संगीत के सप्त स्वरों का भी रस के साथ सीधा सम्बन्ध जोड़ा है। शारीर वीणा में उर, कण्ठ और शिर ये तीन स्थान हैं। इन्हीं स्थानों से काकु का प्रयोग होता है। संगीत में भी तीन सप्तक या स्थान माने गये हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंलकारों के विषय में भरत ने कहा है -

शशिना रहितेव निशा विजलेव नदी लता विपुष्पेव।
अविभूषितेव च स्त्री गीतिरलंकारहीना स्यात्।।

अर्थात् अंलकार रहित गीति की वही अवस्था होती है, जो चन्द्र के बिना रजनी, जल के बिना नदी, पुष्प के बिना लता और आभूषण के बिना कान्ता की होती है।

उच्च, दीप्त, मन्द्र, नीच, द्रुत और विलम्बित-ये छह पाठ्य के अंलकार हैं। किसी को बुलाने, अथवा आश्चर्य व्यक्त करने, विस्मित होने, आवेश दिखाने, डराने या वादविवाद करने में मध्य सप्तक के प से तार सप्तक के रे तक, मध्यगति में स्वरों की योजना की जाए, तो वांछित भाव अभिव्यक्त होगा।

उसी प्रकार कलह में, युद्ध के आवाहन में, क्रोध में आवेश में, वार्ताधिक्य में, कठोरता, गर्व या शौर्य दर्शाने में, किसी की निर्भर्त्सना करने में, अथवा भय से चीखने में तार सप्तक के उच्च स्वरों का द्रुतगति में उपयोग करना चाहिए।

विराग में, दैन्यदशा में, मनन की शून्यावस्था में, दीर्घ बीमारी में, निर्वेद में, किंवा चिन्तित स्थिति में अथवा ऐसे ही अन्य भावों में मन्द्रसप्तक के स्वरों का विलम्बित गति में मन्द आवाज़ से उच्चार करने से अपेक्षित भाव अभिव्यक्त होगा।

जिस प्रकार पाठ्य में स्वर-भेद, उच्चार भेद इत्यादि पर रसाभिव्यक्ति को अवलम्बित माना गया है, उसी प्रकार संगीत में भी रसाभिव्यक्ति के लिए काकु-भेद इत्यादि का प्रयोग अनिवार्य है।

इन अलंकारों और अंगों का पाठ्य में जो उपयोग होता है, वैसा ही संगीत में भी होना चाहिए। ऐसा पं. ओंकारनाथ का मानना है।

भरत और मतंग ने तैंतीस, शार्ङ्गदेव ने तिरसठ, अहोबल ने उनहत्तर और प्रणव भारती में चौबीस अंलकार दिये हैं। इनमें से भरत ने अंलकारों का प्रस्तार नहीं दिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। अंलकार लगभग वर्तमान समय वाले ही हैं। पं0 ओंकार नाथ का कथन है कि जब-जब इन अंलकारों का गमक की तानों में प्रयोग किया जाता है, तब किसी सीमा तक भयानक रस की निष्पत्ति होती सी दिखाई देती है।

इस तंत्री के अन्त में चौरासी शुद्ध तानों और 5040 कूट तानों का संक्षेप में विवेचन किया गया है। साथ ही वाद्यों की प्रवेश और निग्रह तान क्रिया का भी उल्लेख है। इस प्रकार इस अध्याय में नाट्य और संगीत के वर्ण और अलंकारों का सम्बन्ध रसों से जोड़ते हुए संक्षेप में तान पर भी चर्चा की गई है।

परिशिष्ट– ग्रन्थ के अन्त में दो परिशिष्ट दिये गये हैं। पहले में संगीत से पशु-पक्षियों के स्वरों का सम्बन्ध जोड़ते हुए कहा गया है कि जहाँ-जहाँ अनुरणन है, वहाँ-वहाँ प्राकृतिक स्वर सुनाई देते हैं। पशु, पक्षी प्रेम, क्रोध, भय, निराशा, विजय, वातसल्य इत्यादि की अभिव्यक्ति के लिए वर्णहीन नाद का ही उपयोग करते हैं। मनुष्य भी तो एक प्राणी है, जिसमें पंचज्ञानइंद्रियाँ, बुद्धि और चेतना का सबसे अधिक विकास पाया जाता है। वह आदिम अवस्था में अपने प्रेम, इर्ष्या, भय, क्रोध, द्वन्द्व, विजय, गर्व, उल्लास आदि संवेदनाओं की अभिव्यक्ति भावों द्वारा जिस सीमा तक नहीं कर पाता होगा, उसे संगीत द्वारा ही करता होगा। यूरोप में baritone, tenor, suprano, contralto आदिक शब्द-प्रयोग स्त्री-पुरुष की आवाज़ की range के सूचक हैं और आवाज़ के विशेष गुण को दर्शाते हैं, उसी प्रकार 'मयूर-कण्ठ', 'कोकिल-कण्ठ' 'दादुर-कण्ठ' इत्यादि शब्द मनुष्य कण्ठ के विशेष गुण और उसकी नीची-ऊँची मर्यादा दिखाने के लिए प्रयुक्त किये गए होंगे।

दूसरे परिशिष्ट में स्वरों के देवता, वर्ण, रस इत्यादि को बृहद्देशी, संगीत रत्नाकर और संगीत मकरन्द के आधार पर बताया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरत का संगीत सिद्धान्त

लेखक परिचय – आचार्य कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति 1918-79 संगीत शास्त्र के प्रसिद्ध आलोचक और प्राचीन संगीत सम्बन्धी गुत्थियों को सुलझाने वाले प्रमुख शास्त्रकार थे। इनका जन्म रामपुर रियासत के एक प्रतिष्ठित राज पण्डित कुल में हुआ। इनके परदादा पं. दप्तराम रामपुर रियासत के दरबारी विद्वान थे। आचार्य बृहस्पति के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हैं। जिनमें भरत का संगीत सिद्धान्त, संगीत चिन्तामणि, ध्रुवपद और उसका विकास, मुसलमान और भारतीय संगीत, खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार, राग रहस्य भाग-1, 2, 3 आदि प्रमुख हैं। प्राचीन स्वर प्रणाली का स्पष्टीकरण करने के लिए इन्होंने बृहस्पति वीणा, बृहस्पति किन्नरी और श्रुतिदर्पण जैसे वाद्यों का निर्माण किया। आचार्य बृहस्पति जी ने अनंग रंग नाम से अनेक बंदिशों की रचना की। वे सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय में प्रधान परामर्शदाता थे। संगीत जगत में उनका अपना एक विशिष्ट स्थान है।

ग्रन्थ परिचय – इस पुस्तक का प्रकाशन सूचना विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा 1959 में किया गया। इस ग्रन्थ में नाट्यशास्त्र के छत्तीस अध्यायों में से संगीत सम्बन्धी अठ्ठाइसवें और उनतीसवें क्रम के दो अध्यायों का विस्तृत वर्णन है, इसकी भूमिका के लेखक ठाकुर जयदेव सिंह जी हैं। भरत का संगीत सिद्धान्त के कुल छह अध्याय हैं। पहले अध्याय में ग्राम, श्रुति और स्वर, दूसरे अध्याय में मूर्च्छना, तीसरे में जाति लक्षण, चौथे में संगीत रत्नाकर में दिये हुए जाति प्रस्तारों को स्पष्ट किया है, पांचवे अध्याय में स्वर साधारण और जाति साधारण तथा छठे अध्याय में राग का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ के अन्त में चार अनुबन्ध भी दिये गये हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम अध्याय

भरत के नाट्यशास्त्र की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भावी युग में मनुष्य प्रायः अबुध होंगे, जो होंगे भी वे अल्पश्रुत बुद्धि होंगे।

भविष्यति युगे प्रायो भविष्यन्त्यबुधा नराः
ये चापीह भविष्यन्ति तेऽप्यल्पश्रुतबुद्धयः।।

विषय की दृष्टि से कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग या कर्म ऐसा नहीं, जो नाट्य में न आता हो।

न चछास्त्रं न सा विद्या न स न्यासो न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म यन्नाट्येऽस्मिन्न दृश्यते।।

अतः उसके अन्तर्गत महर्षि ने गीत, वाद्य और नृत्य का भी वर्णन किया है। गीत नाट्य की शय्या है। व्याकरण के क्षेत्र में जिस प्रकार पाणिनि, कात्यायन या पतंजलि 'मुनि' कहलाते हैं उसी प्रकार भरत भी नाट्य एवं तत्सम्बन्धी क्षेत्रों में 'मुनि' कहे जाते हैं।

भरत ने षड्ज और मध्यम दो ही ग्रामों का वर्णन किया है गांधार ग्राम का नहीं। ग्राम के विषय में भरत मुनि का कथन है कि संवादी स्वरों का वह समूह ग्राम है, जिसमें श्रुतियाँ व्यवस्थित रूप में विद्यमान हों और जो मूर्च्छना, तान, वर्ण, क्रम, अलङ्कार इत्यादि का आश्रय हो। सातों स्वरों के षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद नाम देकर इनकी श्रुतियाँ तीन, दो, चार, चार, तीन, दो, चार दी गई हैं। षड्जग्राम में सा, रे, ग, म, प, ध, नि की क्रमशः चार, तीन, दो, चार, चार, तीन, दो तथा मध्यम ग्राम में म, प, ध, नि, सा, रे, ग की क्रमशः चार, तीन, चार, दो, चार, तीन, दो श्रुतियाँ होती हैं। दोनों ग्रामों का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि मध्यम ग्राम में पंचम तीन श्रुति का रह जाता है और धैवत चतुःश्रुतिक हो जाता है। जब नि दो श्रुति चढ़ जाता है तब काकली नि और ग जब दो श्रुति चढ़ जाता है, तब अन्तर ग कहलाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिन दो स्वरों में नौ अथवा तेरह श्रुतियों का अन्तर हो, वे परस्पर संवादी हैं। जैसे षड्जग्राम में सा–प, रे–ध, ग–नि और सा–म तथा मध्यम ग्राम में सा–प के स्थान पर रे–प परस्पर संवादी हो जाते हैं। वहाँ अन्य संवाद षड्ज ग्राम जैसे ही रहते हैं। इसके बाद दोनों ग्रामों को मण्डल प्रस्तारों द्वारा दर्शाया गया है।

षड्जग्राम की सिद्धिः– एक जैसी मोटाई और लम्बाई के नौ तार की सपाट डाँड और अटक वाली वीणा के प्रथम तार को उसकी मन्द्रतम रंजक ध्वनि में मिला लिया जाय, यह 'सा' है। पाँचवाँ तार 'म' और छठा तार 'प' में मिला लिया जाय।

पाँचवें तार को सा मानकर आठवाँ तार इसके म में मिला लिया जाए और इसे नि कहेंगे। इसके आधार पर तीसरे तार को मन्द्र म में मिलाने पर ग हुआ, चौथे तार को षड्जान्तर भाव से वर्तमान शुद्ध ग में मिला लें। इस ग को सा मानकर सातवें को म और नवें को प में मिला लें। पहले तार के आधार पर सातवाँ ध और नौवां काकली नि भरत के मत से हुआ। सातवें तार के आधार पर दूसरे तार को रे में मिला लें। इन तारों को क्रमानुसार छेड़ने पर भरतोक्त सा, शुद्ध रे, शुद्ध ग, अन्तर ग, म, प, ध, नि और काकली नि सुनाई देंगे।

इसी वीणा पर मध्यमग्राम के लिए पहला, दूसरा, चौथा, छठा, सातवाँ और आठवाँ तार छेड़ने पर क्रमशः म, त्रिश्रुतिक प, ध, नि, सा, रे और ग मिल जायेंगे।

नवतन्त्री वीणा पर मेरू और घुड़च के बीच एक पर्दा बाँध कर मध्य सप्तक की तथा घुड़च की ओर से चौथाई भाग पर एक पर्दा बाँध कर तार सप्तक के स्वरों की प्राप्ति की जा सकती है।

वर्तमान सितार पर भी नवतन्त्री वीणा में बताये संवाद के आधार पर षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम के स्वर प्राप्त करने का विधान आचार्य बृहस्पति ने दिया है।

षड्ज ग्राम से मध्यम ग्राम प्राप्त करने की दूसरी विधि के विषय में कहा गया है कि षड्ज ग्रामीय रे को थोड़ी देर के लिए सा मानकर षाड्जग्रामीय प को इतना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उतारा जाय कि वह इस नवीन सा का म हो जाय, तो षाड्जग्रामिक सप्तक मध्यम ग्रामीय सा, रे, ग, म, प, ध, नि में परिवर्तित हो जाएगा।

सारणा चतुष्टयीः– षड्जग्राम में मिली हुई दो समान वीणाएँ ले लें जिनमें से एक अचल और दूसरी चल वीणा होगी। पहली सारणा में चल वीणा के पंचम को इतना उतारें कि इसका प अचल वीणा के रे से संवाद करने लगे। इस अन्तर को प्रमाण श्रुति कहेंगे अब शेष सभी स्वरों को प्रमाण श्रुति उतार लें।

दूसरी सारणा में चल वीणा के ग नि को इतना उतारें कि वे अचल वीणा के रे ध से मिल जायें, तत्पश्चात् शेष स्वरों को भी उतना ही उतार लें।

तीसरी सारणा में चल वीणा के रे–ध को अचल वीणा के सा–प से मिला लें और अन्य स्वरों को भी उसी प्रमाण में उतार लें चौथी सारणा में चल वीणा के म–प–सा को इतना उतार लें कि अचल वीणा के ग–म–नि से मिल जाये शेष स्वरों को भी उसी अनुपात में उतार लें, अब चल वीणा अचल वीणा से चार श्रुति नीचे हुई। इस विधि में एक सारणा करने पर दूसरी सारणा के लिए पहली को मिटाना पड़ता है। सभी सारणाओं के समय पिछली सारणाओं के स्वर भी न मिटाने पड़े इसके उपायस्वरूप आचार्य बृहस्पति ने श्रुतिदर्पण नामक एक वाद्य का निर्माण किया जिसका विवरण आगे प्रस्तुत है– सपाट डाँड और पर्दे वाला पाँच तारों वाला एक तानपूरा लीजिए, जिसकी घुड़च सीधी हो तनिक भी आड़ी-तिरछी न हो। इस पर नियमपूर्वक षड्जग्राम के अनुसार पर्दे मिला लीजिए।

मूल सप्तक

पहले तार को षड्ज इत्यादि के पर्दो पर दबाकर छेड़ने से जो सप्तक बोलेगा, उसे हम मूल सप्तक कहेंगे, जो पूर्वोक्त पद्धति के अचल सप्तक का काम देगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम सारणा

दूसरे तार को इतना उतारिए कि मूल सप्तक के रे के साथ दूसरे तार के प का संवाद सा-म भाव से होने लगे। इतना करने पर दूसरा तार मूल सप्तक के तार की अपेक्षा कुछ उतरा हुआ होगा, यही प्रमाण श्रुति का अन्तर है।

किसी भी पर्दे पर पहले और दूसरे तार को दबाकर छेड़ा जाय, प्रमाणश्रुति का यह अन्तर दोनों तारों की ध्वनि में स्पष्ट सुनाई देगा।

द्वितीय सारणा

तीसरे तार को इतना उतारिए कि उसके ग की ध्वनि मूल सप्तक के 'रे' की ध्वनि में मिल जाये। इतना करने पर तीसरे तार का 'नि' मूल सप्तक के 'ध' में स्वतः मिल जायेगा। तीसरे तार पर बोलनेवाला षाड्जग्रामिक सप्तक अब मूल सप्तक की अपेक्षा दो श्रुति उतरा हुआ है।

तृतीय सारणा

चौथे तार को इतना उतारिए कि उसका 'रे' मूल सप्तक के षड्ज में मिल जाये, ऐसा करने से चौथे तार का 'ध' प्रथम तार के 'प' में स्वतः मिल जायेगा। चौथे तार पर मिला हुआ षाड्जग्रामिक सप्तक अब मूल सप्तक की अपेक्षा तीन श्रुति उतरा हुआ है।

चतुर्थ सारणा

पाँचवें तार को इतना उतारिए कि उसका 'म' मूल सप्तक के 'ग' में मिल जाये। यह हो जाने पर पाँचवें तार के 'प' और 'सा' क्रमशः मूल सप्तक के 'म' और 'नि' में स्वतः मिल जायेंगे। इस स्थिति में पाँचवें तार पर ध्वनित होने वाला सप्तक मूल सप्तक की अपेक्षा चार श्रुति उतरा हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरत का संगीत सिद्धान्त की भूमिका के लेखक ठा. जयदेव सिंह के अनुसार यदि यह श्रुति दर्पण बनवाकर संगीत विद्यालयों को दे दिया जाय, तो श्रुतियों के समझने में छात्रों का बहुत उपकार होगा। आचार्य के. सी. डी. बृहस्पति भरत की श्रुतियों को असमान मानते हैं, श्रुतियों की सिद्धि स्वनिर्मित श्रुति दर्पण पर स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि श्रुति-दर्पण के पहले-दूसरे तार की ध्वनि का अन्तर 'प्रमाण-श्रुति' है, हम इसे 'ग' अन्तर कहेंगे। श्रुति-दर्पण के दूसरे और तीसरे तार को क्रमशः धीरे से छेड़ने पर हमें 'ग' अन्तर से बड़ा अन्तर सुनाई देगा, इसे हम 'ख' अन्तर कहेंगे।

तीसरे और चौथे तार को छेड़ने पर उन दोनों की ध्वनियों में 'ख' अन्तर से भी बड़ा अन्तर सुनाई देगा, इसे हम 'क' अन्तर कहेंगे। चौथे और पाँचवें तार की ध्वनि में फिर 'ग' अन्तर सुनाई देगा। श्रुतियों के माप सम्बन्धी विवरण में दूसरी और तीसरी सारणा से प्राप्त माप के विषय में आचार्य बृहस्पति से कुछ भूल हो गयी है, सबसे बड़ी श्रुति जो कि तेईस सेवर्ट की है, दूसरी सारणा में प्राप्त होबी है और तीसरी सारणा से प्राप्त अठ्ठारह सेवर्ट की श्रुति है, जबकि यहाँ पर आचार्य बृहस्पति ने दूसरी सरणा की श्रुति 'ख' अन्तर वाली से बड़ी तीसरी सारणा से प्राप्त 'क' अन्तर वाली को कहा है। आगे चलकर संगीत चिन्तामणि के **महामहेश्वर श्रीमान् अभिनव गुप्ताचार्य के कुछ विचार और स्वर, ग्राम, सारणायें एवं श्रुतियाँ** नामक लेखों में इस भूल का सुधार कर लिया गया है। इस प्रकार इस अध्याय में ग्राम, श्रुति सारणा और श्रुति दर्पण नामक वाद्य का विवरण दिया गया है।

द्वितीय अध्याय

इस अध्याय में मूर्च्छना की परिभाषा देकर भरत और मंतग द्वारा दी गई मूर्च्छनाओं को स्पष्ट किया गया है। क्रमयुक्त सात स्वर मूर्च्छना कहलाते हैं।

क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूर्च्छनास्त्वभिसंज्ञिताः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाट्यशास्त्र में चतुर्विध मूर्च्छनाओं के दो प्रकार दिये गये हैं- पहले मत में पूर्णा, षाडवा, औडविता और साधारणा हैं तथा दूसरे मत में शुद्धा, अन्तरसहिता, काकलीसहिता और अन्तरकाकली सहिता मूर्च्छनाएँ कही गई हैं।

भरत का संगीत सिद्धान्त में दूसरे मत को स्वीकार किया है, क्योंकि षाडविता और औडविता में छह और पाँच स्वर होने के कारण मूर्च्छना की मूल परिभाषा में क्रमयुक्त सात स्वर नहीं रह पाते। आगे दोनों ग्रामों की चौदह मूर्च्छनाओं के नाम तथा उनके स्वंर दिये गये हैं।

मूर्च्छनाओं की सिद्धि दो प्रकार से की गई है जैसे-''षड्ज ग्राम में यदि ग की दो श्रुतियाँ चढ़ाकर उसे 'ध' मान लिया जाये, तो उसमें मध्यम-ग्राम की सभी शुद्ध मूर्च्छनाएँ मिल जायेंगी।

इसके विपरीत मध्यमग्राम के ध को दो श्रुति उतार कर उसे ग' की संज्ञा दे देने पर मध्यमग्रामीय प्रथम मूर्च्छना ही षड्जग्रामीय प्रथम मूर्च्छना बन जाएगी।

विवादी स्वरों के विषय में कहा गया है कि 'रे' 'ग' से और 'ध' 'नि' से बीसवीं श्रुति पर स्थित है, इसीलिए 'ग-रे और 'नि-ध' परस्पर विवादी हैं। भरत का संगीत सिद्धान्त में अन्तर ग का एक महत्व और भी बताया गया है, अन्तर स्वर होने के कारण वह हमें श्रुति की प्राप्ति कराता है। ध की प्राप्ति हमें तब होती है जब हम सा का आश्रय लेकर पुनः अन्तर ग की सिद्धि स्वतन्त्र रूप से करते हैं। फलतः ग से ध और ध से रे की प्राप्ति होती है। रे की प्राप्ति होने पर ही प्रथम सारणा सम्भव होती है, क्योंकि मध्यमग्रामीय प का निर्माण रे के साथ उसका संवाद करने पर ही सम्भव होता है और 'प्रमाणश्रुति' की प्राप्ति होती है। प से काकली नि, नि से त्रिश्रुतिक रे, ग से त्रिश्रुतिक प की प्राप्ति भी सप्तश्रुति षड्जान्तर संवाद से होती है।

तान- मूर्च्छनाओं पर आश्रित तानें चौरासी हैं उनमें उनचास षड्जग्राम की और पैंतीस मध्यमग्राम की हैं। षड्जग्राम में सा, रे, प, नि और मध्यम ग्राम में सा, रे,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग रहित शेष छह स्वरों से (7x7=)49 तानें षाडव हैं और षड्जग्राम में सा-प ,रे-प तथा ग-नि और मध्यम ग्राम में रे-ध और ग-नि रहित शेष पाँच स्वरों से (7x5=)35 औडव तानें हुईं। सभी चौरासी तानों के प्रस्तार दिये गये हैं।

इन चौरासी तानों को देखने से ज्ञात होता है कि षड्जग्राम के ध, मध्यम ग्राम के प एवं दोनों ग्रामों में म का लोप नहीं होता। इस कारण मध्यम को अविलोपी या अविनाशी कहा गया है।

दो प्रकार की वीणाएँ:-

1. एकतन्त्री वीणा जिसमें एक तार पर तीनों सप्तकों के इक्कीसों स्वर प्रत्यक्ष किये जाते थे। इसके दूसरे नाम 'ब्रह्मवीणा' 'घोषक', 'घोषा' भी हैं। एकतन्त्री वीणा में पर्दे नहीं होते थे, इसमें स्वरों की सारणा बाँस की बनी हुई एक बारह अंगुल की सलाई से की जाती थी।

2. 'मत्त-कोकिला' वीणा में इक्कीस तार होते थे। सात-सात तारों पर क्रमशः एक-एक सप्तक मिला रहता था।

'जाति' या 'राग' के वादन में मन्द्र और तारस्थान में जाने की परावधि 'मत्तकोकिला' और 'एकतन्त्री' में प्राप्त हो सकती थी।

एक जाति के अंश स्वर कई हो सकते थे और उनके अनुसार मूर्च्छना परिवर्तित होती थी। मन्द्र तार के नियमों में विकल्प भी था। इस सम्बन्ध में 'मन्द्र' स्थान की अवधि 'न्यास' और 'अपन्यास' स्वर को भी मान लिया गया और तारस्थान में अंश स्वर से चौथे या पाँचवें स्वर को भी तारावधि मान लिया गया। फलतः मन्द्र और तारावधियों में संकोच होने के कारण पश्चाद्वर्ती आचार्यों ने एक जाति के लिए एक 'मूर्च्छनाविशेष' का निर्देश कर दिया। जाति में निर्दिष्ट अनेक अंशस्वरों को देखते हुए ऐसी मूर्च्छना मिलानी चाहिए कि किसी भी स्वर को अंश मानकर जाति का वादन किया जाये, तो यथासम्भव मन्द्र एवं तार स्वर मिल सकें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वादशस्वर मूर्च्छनावादः- अनेक राग और जातियाँ एक सप्तक में नहीं बन पाते इसलिए दो मन्द्र और तीन तार सप्तक के स्वर जोड़कर (2+3+7=)12 स्वरों की मूर्च्छना का विधान मतंग ने दिया है, क्योंकि मतंग मुनि मूर्च्छना में राग की प्राप्ति भी करना चाहते थे।

बारह स्वरों की मूर्च्छनाएँ उत्तरमन्द्रा, रजनी, उत्तरायता, शुद्ध षड्जा, मत्सरीकृता, अश्वक्रान्ता, अभिरुद्गता क्रमशः सा नि ध प म ग रे के स्थान पर बारह स्वरों की मूर्च्छना में ध, नि, सा, रे, ग, म, प, से और मध्यम ग्राम की सौवीरी, हरिणाश्वा, कलोपनता, शुद्धमध्या, मार्गी, पौर्वी, हृष्यका क्रमशः म, ग, रे, सा, नि, ध, प के स्थान पर नि सा रे ग म प ध से आरम्भ होती थीं। महर्षि भरत की अश्वक्रान्ता और हृष्यका मूर्च्छनाओं के पूर्ण रूप मतंग की द्वादशस्वर मूर्च्छनाओं में नहीं मिलते। ऐसा आचार्य बृहस्पति का कथन है।

पश्चाद्वर्ती आचार्यो ने द्वादशस्वर मूर्च्छनावाद का खण्डन करते हुए चाहे उसे अस्वीकार कर दिया परन्तु वादन सौकर्य के लिए द्वादशस्वर मूर्च्छनावाद का उपयोग सभी को मान्य रहा है।

चाहे एकतन्त्री वीणा हो या आज का सितार, उस पर मेरू और घुड़च के ठीक मध्य भाग में मुक्त तार से उत्पन्न होने वाली ध्वनि से द्विगुण ध्वनि निकलेगी। तार के मध्य भाग में निकलने के कारण ही इसे 'मध्यम' कहा जाता है, इसका अर्थ सप्तक का मध्यम स्वर नहीं। इस 'मध्यम' स्वर को मूर्च्छनाओं का आरम्भक स्वर कहा गया है, मध्य सप्तक का आरम्भक स्थान यही है, इससे पूर्व मुक्त तार तक सम्पूर्ण मन्द्र सप्तक की प्राप्ति होती है।

प्राचीनकाल में इसी स्थान को सा मानकर षाड्जग्रामिक उत्तरमन्द्रा एवं मध्यम मानकर माध्यमग्रामिक सौवीरी का आरम्भ होता था।

मतङ्ग की किन्नरी वीणा पर दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं का स्पष्टीकरण इस अध्याय में विस्तारपूर्वक किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तन्त्रीवाद्यों पर मूर्च्छनाओं की स्थापना का प्रकार – मूर्च्छनाओं की स्थापना के विषय में महर्षि भरत का मत है- ''मूर्च्छनाओं की स्थापना 'वीणा' के मध्यम स्वर (सप्तक के मध्यम स्वर से नहीं) से होनी चाहिए, क्योंकि 'मध्यम' अविनाशी स्वर है। उत्तरमन्द्रा या सौवीरी आदि मूर्च्छनाओं में तो 'मध्यम' अविनाशी या अविलोपी है ही, 'वीणा का मध्यम स्वर' (मेरू और घुड़च के ठीक मध्य में तार पर निकलने वाला स्वर) भी अविनाशी है, फलतः मूर्च्छनाओं की सारणा क्रिया में किन्नरी के अन्य सभी पर्दे कभी न कभी नीचे ऊपर सरकाने पड़ते हैं, परन्तु सातवाँ और चौदहवाँ पर्दा क्रमशः मुक्त तार पर उत्पन्न होने वाली ध्वनि के द्विगुण एवं चतुर्गुण रूप से जनक होने के कारण कभी नहीं सरकाने पड़ते।

आगे राणाकुम्भा और पण्डितमण्डली के तत्सम्बन्धी विवरण दिये गये हैं। दोनों ग्रामों की चौदह मूर्च्छनाओं को वर्तमान सितार पर प्राप्त करने की विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन करके दूसरे अध्याय की समाप्ति की गई है।

तृतीय अध्याय

इस अध्याय में जाति लक्षण पर चर्चा की गई है। ग्रह, अंश आदि दस लक्षणों से युक्त विशिष्ट स्वर सन्निवेश जाति कहलाता है। राग इत्यादि के जन्म का कारण होने से विशिष्ट स्वरसन्निवेश 'जाति' की संज्ञा ले लेता है। जातियाँ आरम्भ से अठारह मानी गई हैं जिनमें से सात शुद्ध और ग्यारह दो या दो से अधिक जातियों के मिश्रण से बनती हैं। शुद्ध जातियाँ वे हैं, जिनमें कोई स्वर कम नहीं होता और नामस्वर ही जिनमें अंश, ग्रह, न्यास और अपन्यास होता है। न्यासस्वर के अतिरिक्त एक, दो या अनेक लक्षणों में विकार होने पर ये जातियाँ विकृत कहलाने लगती हैं। शुद्ध जातियों में मन्द्रस्वर नियमपूर्वक न्यास होता है, परन्तु विकृत जातियों में यह नियम शिथिल भी हो जाता है। अठारह जातियों में ग्यारह जातियाँ दो या कई जातियों के संसर्ग के कारण बनती। परस्पर संयोग से इन जातियों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्माण होता है। जैसेः- षाड्जी और मध्यमा के संयोग से 'षड्जमध्यमा', गान्धारी और षाड्जी के योग से षड्जकैशिकी, गान्धारी, पंचमी, मध्यमा और धैवती से मध यमोदीच्यवती इत्यादि।

एक ही जाति का रूप सम्पूर्ण षाडव और औडव हो सकता है। एक ही जाति के एक से अधिक अंश हो सकते हैं जैसे षाड्जी के रे और नि को छोड़कर पाँच अंश हैं जो स्वर अंश नहीं होते उन्हें अनंश कहते हैं, उन्हीं के लोप से जातियों के षाडव और औडव भेद होते हैं। भरत सम्प्रदाय में यह नियम है कि 'अंश' स्वर के संवादी स्वर का लोप कभी नहीं होता, फलतः कुछ जातियों में स्वरविशे का अंशत्व उनकी षाडव या औडव अवस्था का बाधक हो जाता है। यह बाधक अंशस्वर षाडवद्वेषी या औडवद्वेषी कहलाते हैं।

जाति के दस लक्षणः- अंश, ग्रह, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडव और औडव ये जाति के दस लक्षण हैं। इनके अतिरिक्त शार्ङ्गदेव ने अन्तरमार्ग, सन्यास और विन्यास ये तीन लक्षण और दिये हैं। भरत ने इनकी संख्या अलग से नहीं गिनवायी इसलिए उनके अनुसार जातियों में दस ही लक्षण हैं। भरत का संगीत सिद्धान्त में सभी जातियों के लक्षणों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। साथ ही अठारह जातियों के त्रेसठ अंश, इक्कीस न्यास, सत्तावन अपन्यास स्वरों को सारणी में प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में सभी जातियों की भरत, दत्तिल, मतंग, शांर्गदेव, राणाकुम्भा के उद्धरणों से पुष्टि की गयी है। बारह स्वरों वाली मूर्च्छना में सभी जातियों के अलग-अलग अंश होने पर किस प्रकार मन्द्र और तार अवधि प्राप्त होगी इसे भी स्पष्ट किया गया है।

मतंग के प्राप्त जातिलक्षणों में जातियों की मूर्च्छनाएँ बतलाते समय उनके लिए 'उत्तरमन्द्रा', 'सौवीरी' आदि के स्थान पर 'षड्जादि' और 'मध्यमादि' जैसी स्वर से आरम्भ संज्ञाओं का प्रयोग करते हैं। आचार्य शार्ङ्गदेव ने भी इसी पद्धति का अवलम्बन किया है, केवल नन्दयन्ती के लक्षण में वे 'हृष्यका' शब्द का प्रयोग करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जातियाँ ब्रम्हहत्या के पातक से भी मुक्ति दिलानेवाली मानी गयी हैं, जिस प्रकार ऋक्, यजु और साम में परिवर्तन नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार वेदसम्मत जातियों में परिवर्तन असम्भव एवं अवांछनीय है। पवित्रता प्रिय हिन्दू जाति ने इसीलिए जातियों के रूप को अक्षुण्ण रखा है। इस प्रकार इस अध्याय में जाति के दस लक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय

इस अध्याय में शार्ङ्गदेव द्वारा संगीतरत्नाकर में दिये गये अठारह जातियों के प्रस्तारों की चर्चा है। जाति के आरम्भ में दिये गये नियम प्रस्तारों में कहाँ तक प्रयुक्त हुए हैं, इस पर गम्भीरतापूर्वक से अध्ययन किया गया है, जैसे प्रथम षाड्जी जाति पर विचार करते हुए कहा गया है कि षाड्जी के प्रस्तार में अंश एवं ग्रहस्वर षड्ज है। इसी स्वर से प्रस्तार का आरम्भ हुआ है। न्यासस्वर षड्ज होने के कारण प्रस्तार की समाप्ति भी षड्ज पर हुई है। यद्यपि इस जाति की विकृत अवस्थाओं में ग एवं प स्वर भी अपन्यास हो सकते हैं, तथापि इस प्रस्तार में षाड्जी के शुद्ध रूप का उदाहरण है। फलतः इसमें षड्ज अर्थात् अंशस्वर ही अपन्यास स्वर है, इसीलिए पद के मध्य की समाप्ति (छठी पंक्ति के अन्त में) सा पर हुई है।

जातियों के प्रस्तारों में एक-एक पंक्ति एक-एक तालभाग का निदर्शन करती है। एक से बत्तीस तक या एक से अड़तालीस संख्याएँ ताल एवं गीत में प्रयुक्त ताल के 'लघु' (पाँच लघु अक्षरों के उच्चारण-काल) को प्रकट करती हैं। संख्याओं के ऊपर लिखे हुए संकेत तालक्रिया के द्योतक हैं। सभी प्रस्तारों में 'लघु' का परिमाण यही है और वे दक्षिण मार्ग में निबद्ध हैं।

षाड्जी के प्रस्तार में अल्पत्व-बहुत्व का परिज्ञान प्रयुक्त स्वरों की संख्या से होगा–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा	(ग्रह, अंश, न्यास)	36
रे	(अनंश, अल्प)	12
ग	(अंश से संगत, बहुल)	20
म		8
प		8
ध	(अंश से संगत)	16
नि	(अनंश, अल्प)	12

इस जाति में ध और ग की संगति सा के साथ विशेष रूप से विहित है। षाड्जी जाति का प्रस्तार 'पञ्चपाणि' ताल की दो आवृत्तियों में पूर्ण हुआ है। जिसका पद इस प्रकार है।

पद

तं भवललाटनयनाम्बुजाधिकं नगसूनुप्रणयकेलिसमुद्भवम्।
सरसकृततिलकपकानुलेपनं प्रणमामि कामदेहेन्ध्नानलम्।।

जातियों में गेय ब्रह्मप्रोक्त पद सम्भवतः शैव परम्परा में प्रचलित पद हैं, जो भगवान महादेव की महत्ता के प्रतिष्ठापक हैं। इसी प्रकार इस अध्याय में शार्ङ्गदेव द्वारा दिये गये अठारह जातियों के प्रस्तारों का विशलेषण किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय

इस अध्याय में स्वर साधारण का विवेचन करते हुए आचार्य बृहस्पति ने कहा है यदि कोई स्वर अपनी शुद्ध स्थिति की अपेक्षा चढ़ गया हो और अगले स्वर तक भी न पहुँचा हो, तो उसकी 'साधारण' अवस्था होगी। ग जब अपने स्थान से दो श्रुति चढ़ जाता है, तब 'अन्तर ग' कहलाता है। नि जब अपने स्थान से दो श्रुति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चढ़ जाता है, तब 'काकली नि' कहलाता है। इस प्रकार अन्तर साधारण और काकली साधारण एक स्वर में उत्पन्न विकार का परिणाम होती है।

षड्ज साधारण में नि जब अपने स्थान से एक प्रमाणश्रुति चढ़ता है तब 'कैशिक नि' और सा जब अपने स्थान से एक प्रमाणश्रुति उतरता है, तब 'च्युत सा' कहलाता है। ये दोनों क्रियाएँ होने पर कैशिक नि और च्युत सा में दो श्रुतियों का अन्तर रह जाता है।

षड्ज-साधारण अवस्था में सा की अन्तिम श्रुति रे को मिल जाने से वह चतुःश्रुतिक हो जाता है।

मध्यम साधारण में ग जब अपने स्थान से एक प्रमाण श्रुति चढ़ता है, तब 'साधारण ग' और जब म अपने स्थान से एक प्रमाण श्रुति उतरता है, तब 'च्युत म' कहलाता है। ये दोनों अवस्थाएँ सम्पन्न होने पर साधारण ग और च्युत म में दो श्रुतियों का अन्तर रह जाता है। मध्यम साधारण अवस्था में म की अन्तिम श्रुति माध्यमग्रामिक प ले लेता है, फलतः वह चतुःश्रुतिक हो जाता है। जातियों में अन्तर स्वरों का प्रयोग आरोही में तथा अल्प करना चाहिए।

षड्जकैशिकी षड्जग्रामीय जाति है, अतः उसमें षड्जसाधारण का प्रयोग होता है और कैशिकी मध्यमग्रामीय जाति है, फलतः उसमें मध्यमसाधारण का प्रयोग होता है। कैशिक स्वरों की प्रयोगजन्य अवस्था को देखते हुए ही मूर्च्छना-विधान में कैशिक स्वरयुक्त मूर्च्छनाएँ नहीं मानी गयी हैं, अपितु अन्तर एवं काकली में ही उनका अन्तर्भाव मान लिया गया है।

स्वर-साधारण के विषय में कुछ परवर्ती विद्वानों ने कहा है कि जब श्रुति के उत्कर्ष से किसी स्वर का स्वरूप अस्फुट और लुप्त सा हो जाता है, तब गीतज्ञ व्यक्ति उस स्थिति को स्वरसाधारण कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाति-साधारण :- एक ग्राम में उत्पन्न समान अंश जातियों में होनेवाला समान गान जाति-साधारण है। दत्तिल इत्यादि मनीषियों ने शुद्ध-कैशिक-मध्यम इत्यादि रागों को ही जाति साधारण कहा है।

इस प्रकार इस संक्षिप्त अध्याय में स्वर साधारण और जातिसाधारण का वर्णन किया गया है।

षष्ठ अध्याय

इस अध्याय में नाट्यशास्त्र में दिये गये सात ग्राम रागों का उल्लेख किया गया है, तत्पश्चात् राग की परिभाषा मतंग के मत से दी गई है। राग और जाति में अन्तर करते हुए बताया गया है, जातियाँ वास्तव में 'मूल राग' है जिनमें विकार होने से अनेक रागों का जन्म होता है। जातियों के दस लक्षणों में प्रमुख लक्षण 'अंश' का वर्णन करते हुए महर्षि ने कहा है कि राग का जिसमें निवास होता है और राग जिस स्वर से प्रवृत्त होता है वह अंशस्वर है। इससे यह सिद्ध है कि महर्षि जातियों को भी 'राग' ही मानते हैं। ग्रामराग जातियों या मूल रागों से उत्पन्न अथवा उनके विकृत रूप हैं। महर्षि के कथन के अनुसार यदि अन्तर स्वरों का प्रयोग अवरोह में भी हो, तो जातियाँ 'जातिराग' हो जाती हैं। सात ग्राम रागों के नाम इस प्रकार हैं- मध्यमग्राम, षड्जग्राम, साधारित, पञ्चम, कैशिक, षाडव, कैशिकमध्यम। यहाँ इन सभी ग्राम रागों में आलाप, करण, पद, अक्षिप्तिका का उल्लेख शार्ङ्गदेव, मोक्षदेव, मतङ्ग, कश्यप आदि के अनुसार दिया गया है।

तीस ग्राम रागों के पांचों प्रकार शुद्ध, भिन्न, गौड, वेसर और साधारण दिये गये हैं, इन्हीं को संगीतरत्नाकर में पञ्च गीतियाँ कहा है। ग्रामरागों से सम्बन्धित तीस ग्रामराग, आठ उपराग, बीस राग, छियान्वे भाषा, बीस विभाषा और चार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तर भाषाओं के नाम संगीतरत्नाकर के दूसरे रागविवेकाध्याय के अनुसार ही भरत का संगीत सिद्धान्त में दिये गये हैं।

अनुबन्ध– ग्रन्थ के अन्त में चार अनुबन्ध हैं –

1. पहले में ताल सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों को स्पष्ट किया गया है इसके अन्तर्गत ताल, लघु-गुरू-प्लुत, क्रिया (सशब्द, निशब्द), ताल के चतुरस्र और त्रयस्र दो भेद, मार्ग, लय, यति, पदाश्रित और स्वराश्रित गीतियाँ तथा ध्रुवा गीत का वर्णन किया गया है।

2. दूसरे अनुबन्ध में रस सिद्धान्त को संक्षेप में समझाया गया है, इसके अन्तर्गत स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव और रसों के नाम देकर भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्ट नायक और अभिनवगुप्त के रस सम्बन्धी विभिन्न मतों को दिया गया है। संगीत में रस की निष्पत्ति के विषय में आचार्य बृहस्पति का कथन है कि स्वर सन्निवेश के द्वारा रस-प्रक्रिया में स्थायी भाव का आलम्बन 'अंश स्वर' होता है, जिसकी संज्ञा 'स्थायी स्वर' होती है। 'स्थायी स्वर' का संवादी स्वर 'उद्दीपन विभाव का कार्य करता है, प्रयुज्यमान 'अनुवादी स्वर' अनुभाव का कार्य करते हैं और 'स्थायी स्वर' को उभारते रहते हैं एवं संचारी स्वर संचारी भावों के प्रकाशक होते हैं। अतः कहा जा सकता है- सहृदयों की वह चेतनाविशेष 'रस' है, जिसकी अनुभूति के समय रजस्तमोगुण-जनित उनकी रागद्वेषादि ग्रन्थियाँ विगलित हो जाती हैं।

भिन्न-भिन्न रसों का विशिष्ट स्वरों से सम्बन्ध बताकर षाड्जी जाति के सा, ग, म, प, ध इन पाँच अंशों से प्राप्त श्रुत्यन्तर वाली मूर्च्छनाओं को दिया गया है।

3. तीसरे अनुबन्ध में कोहल द्वारा कही गई अनन्त श्रुतियों को स्वर प्रयोग के साथ सिद्ध करते हुए कहा है कि वीणा में जब ये श्रुतियाँ अपने वास्तविक स्थान की अपेक्षा घुड़च की ओर निकलती हैं तो 'आयत', तथा मेरू की ओर निकलती हैं तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'मृदु' और अपने वास्तविक स्वरस्थान से निकलती हैं तो 'मध्यम' या 'मध्य' कहलाती हैं। स्वरों में प्रमाणश्रुति ऊँचे-नीचे होने के कारण ही श्रुतियाँ समुद्र में उठने वाली तरंगों के समान अनन्त हो जाती हैं। श्रुतियों की अनन्तता के विषय में कहा गया है कि ''यदि अपकृष्ट ध्वनियों का और भी अपकर्ष किया जाये और उत्कृष्ट ध्वनियों का और भी उत्कर्ष किया जाये, तो और भी विलक्षण ध्वनियाँ मिलेंगी।'' सामान्यतः भैरव, मारवा, पूर्वी, तोड़ी ये चार थाट मूर्च्छना पद्धति में प्राप्त नहीं होते हैं। आचार्य बृहस्पति ने इन्हें भी दोनों ग्रामों में प्राप्त दस स्वरों के आधार पर ज्ञात करने की विधि दी है।

4. चौथे अनुबन्ध में प्रारम्भ से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक के 1.ब्रम्हा, 2.शिव 3. पार्वती 4.नन्दिकेश्वर 5.नारद 6. स्वाति 7.तुम्बरू 8.भरत 9.दत्तिल 10. कोहल आदि साठ शास्त्रकारों का संक्षिप्त एवं सारगर्भित परिचय दिया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थ अध्याय
स्वरोच्चार

भारतीय-शास्त्रीय-संगीत भाव-प्रधान माना गया है। कलाकार स्वर व लय के माध्यम से अपने मनोगत भावों को अपनी क्षमता के अनुसार सजाता है। भाव व्यक्त करने के लिए वह स्वरों को भिन्न-भिन्न ढंग से कभी ऊपर के स्वर से होता हुआ तो कभी रागों की स्वर संगतियों के अनुसार नीचे के स्वर का स्पर्श करते हुए प्रयोग करता है, मुख्य स्वर का प्रयोगब करता है। यही स्वरोच्चार है। इसे स्वर का लगाव भी कहा जा सकता है।

प्राचीनकाल में स्वरों को सजाने के लिए गमक का प्रयोग होता था। गमकों की संख्या अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग मानी है। शार्गंदेव ने 'संगीत-रत्नाकर' में पन्द्रह, नान्यदेव ने 'भरतभाष्य' में सात और अहोबल तथा श्रीनिवास ने बीस गमक मानी हैं। गमक के प्रयोग में तीन स्थितियाँ होती हैं:-

1. पूर्व स्वर से उभार,
2. अपने स्वर की श्रुतियों में आंदोलन करना और
3. आगामी स्वर में लीन होना।

पहली और तीसरी स्थिति में स्वर अपने साथ के स्वर की श्रुतियों की छाया प्राप्त करता है। अलङ्कृत रूप से स्वर का अपने पूर्व और पश्चात् के स्वर में लीन होना ही भारतीय-संगीत में स्वरोच्चार की नींव है (सौ.शा.पृ.-113-114)। कहने का भाव यह है कि भारतीय-संगीत में किसी स्वर का स्वतन्त्र महत्त्व नहीं है। अकेला स्वर राग में स्थान नहीं रखता बल्कि स्वरों का समूह या स्वरों की संगति से राग बनता है। समान स्वर होते हुए भी अलग-अलग राग का होना इस तथ्य की पुष्टि करता है कि केवल स्वरों का उतना स्थान नहीं होता जितना स्वर संगति का होता है।

भाषा के माध्यम से भी इसे समझा जा सकता है। जैसे, 'हूँ' इसका अर्थ है- स्वीकृति। पर यदि 'हूँ' को झटके के साथ कहा जाए तो इसका अर्थ अस्वीकृति हो जाएगा। यदि काफ़ी लम्बा "हूँ ऽ ऽ..." कहा जाए तो इसका अर्थ होता है कि बात समझ में नहीं आई, कृपया दोबारा कहें। एक ही शब्द के मात्र उच्चारण के अलग-अलग ढंग से अर्थ में भिन्नता आ गई। ठीक यही स्थिति भारतीय-शास्त्रीय-संगीत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की है। मेघ-मल्हार और मधुमाद-सारंग के समान स्वर (सा रे म प नि सां) होने पर भी दो अलग-अलग राग हो जाते हैं। मेघ-मल्हार में मींड, गमक आदि से स्वरों को लगाना होता है जबकि मधुमाद-सारंग में सीधे स्वरों का उच्चारण किया जाता है। ऐसी ही कुछ स्थिति मियाँ मल्हार-बहार, भूपाली-देशकार, पूरिया-मारवा आदि रागों की है। प्राचीन गमकों को आज अलग-अलग नामों से जाना जाता है, जैसे-बलि को मींड (सौ. शा.,पृ.-113), कुरुला को घसीट, स्फुरित को गिटकरी, कम्पित को खटका आदि।

मींड :- किसी स्वर से ऊपर या नीचे ध्वनि को बिना खण्डित किए प्रयोग करना मींड कहलाता है। मींड में दोनों स्वर के मध्य सभी स्वरों की श्रुतियों का बिना रुके स्वतः ही प्रयोग हो जाता है। फिसलते हुए एक स्वर से दूसरे स्वर तक जाना मींड है। यह दो प्रकार की होती है-अनुलोम और विलोम।

आरोह की मींड को अनुलोम मींड और अवरोह की मींड को विलोम मींड कहते हैं। भातखण्डे एवं विष्णु दिगम्बर स्वर लिपियों में प्रयुक्त होने वाले दोनों स्वरों को ऊपर से 'आधे चाँद' से बन्द किया जाता है, जैसे-प रे, ध म आदि। मींड का भारतीय संगीत में इतना अधिक महत्त्व है कि केवल 'धैवत' से 'मध्यम' तक की मींड लगाते ही 'केदार' बन जाता है। 'ऋषभ' से 'पंचम' तक की मींड का उच्चारण करते ही 'मल्हार' बन जाता है। अस्तु मींड तो भारतीय-संगीत के लिए राग-वाचक चिह्न है। गहराई से देखा जाए तो मींड भारतीय-संस्कृति को दर्शाता है। पिछली पीढ़ी से अगली पीढ़ी अचानक नहीं आ जाती बल्कि पिछली पीढ़ी अपने संस्कारों को स्वतः ही प्रदान करती हुई अगली पीढ़ी को स्थापित करती है। यूरोप में पिछली पीढ़ी का अगली पीढ़ी पर कोई विशेष प्रभाव नहीं होता इसलिए उनके संगीत पर भी यह लगाव दृष्टिगोचर नहीं होता परिणामतः उनके वाद्यों में भी इस प्रकार का प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। हारमोनियम हो या पियानो सभी में स्वर अलग-अलग हैं, एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। यही कारण है कि हारमोनियम, पियानो आदि वाद्य भारतीय-संगीत के लिए उपयुक्त नहीं होते। पिछले दो-तीन दशकों से हमारे संगीत में हारमोनियम ने प्रवेश कर लिया है और इसका प्रचार दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है लेकिन भारतीय-संगीत की शास्त्रीयता की दृष्टि से यह कोई शुभ लक्षण नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठीक इसी का अनुसरण करते हुए हमारी संस्कृति में भी पाश्चात्य संस्कृति प्रवेश कर रही है और उसी तरह आज हम भी अपनी पिछली पीढ़ी से कटते जा रहे हैं। संगीत के क्रमिक विकास से हम किसी विशेष समाज की सांस्कृतिक परम्परा को जान सकते हैं सत्य ही है कि "संगीत तो संस्कृति का दर्पण होता है।"

कण :- कण का शाब्दिक अर्थ है- 'अणु' अर्थात् तत्त्व का छोटे से छोटा भाग। संगीत में मुख्य स्वर से पहले या बाद में ऊपर या नीचे के स्वर का स्पर्श कण कहलाता है। कण स्वर के प्रयोग से मूल स्वर निखर कर सामने आता है। जिस स्वर पर कण लगा होता है वह शेष स्वरों से अलग ही दिखाई पड़ता है, जैसे 'राग हमीर' में 'म॑ प ग म नि ध', यहाँ अन्तिम स्वर 'धैवत' शेष स्वरों से अलग ही अपनी छवि लिए हुए है क्योंकि इस पर निषाद का कण है। शंकरा में 'ग प रे ग सा', इसमें पंचम के बाद वाला गांधार ऋषभ का कण लिए हुए है। इसी कण के कारण 'राग शंकरा' बनने में कोई सन्देह नहीं रहता। इतना ही नहीं कण स्वर के प्रयोग से समान स्वर समूह होते हुए भी राग भिन्न हो जाते हैं। उदाहरण के लिए - 'प ग म ग' विहाग, पूर्वी और परज तीनों रागों की राग-वाचक स्वर संगति है। इसमें केवल कण-स्वर का भेद है। विहाग में 'प ग म प ग' के अन्तिम गांधार में पंचम का कण है, पूर्वी में उसी पर कोमल ऋषभ का कण है तथा परज में यही स्वर समूह बिना कण के है अतः यह कहा जा सकता है कि केवल कण के लेश मात्र भेद से राग भिन्न हो जाता है।

काकु के छह प्रकारों में से प्रथम 'स्वर-काकु' को यदि ध्यान से देखें तो यह कण ही है। स्वर काकु में दूसरे स्वर की श्रुति को लेते हुए मुख्य स्वर लगाना होता है। हमीर में धैवत को निषाद की श्रुति और शंकरा में गांधार को ऋषभ की श्रुति का स्पर्श करना होता है। कण स्वर का प्रयोग दो प्रकार से होता है - (1) मूल स्वर से पहले जिसे पूर्व लग्न कण तथा (2) मूल स्वर के पश्चात् जिसे अनुलग्न कण कहते हैं। इन्हें लिखने के लिए मूल स्वर के बाँयी और दाँयी ओर कुछ ऊपर लिखा जाता है। पूर्व लग्न कण स्वर का ही व्यवहार में अधिक प्रयोग होता है। अनुलग्न कण स्वर आलाप करते हुए साँस की समाप्ति के समय राग में लगने वाला अवरोह क्रम का स्वर स्वतः लग जाता है। यही सम्भवतः अनुलग्न कण स्वर हैं राग केदार में ग अनुलग्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कण स्वर है। राग शंकरा के ग ग सा में प्रथम ग के पहले और बाद में प का पूर्व और अनुलग्न दोनों कण है और दूसरे ग से पहले रे का कण लगाने से तीन स्वरों में ही शंकरा राग स्पष्ट हो जाता है जैसे - पगप रेग सा।

खटकाः- मुख्य रूप से ठुमरी में प्रयुक्त होने वाले स्वरों का छोटा सा समूह खटका कहलाता है। यह भी कण जैसा है पर उसकी अपेक्षा अधिक वज़नी है यानी कण को हल्का सा स्पर्श करना होता है तो खटके को अपेक्षाकृत ज़ोर से लगाना होता है। इस शब्द की लिखित व्याख्या स्पष्ट रूप से कहीं नहीं मिलती, घरानेदार गायकों से इसके सम्बन्ध में इतना ही ज्ञात हो सका है कि मुर्की से अपेक्षाकृत खटका छोटा होता है। हमने अलग-अलग विद्वानों से भेंट करके यही पाया कि 'सा रे सा निसा' यह खटका है और 'रे रे सा नि़ सा' मुर्की है। कुछ विद्वानों का कहना है कि जो स्वर भातखण्डे-स्वरलिपि में कोष्ठक में लिखा जाता है वह मुर्की है, जिसमें चार स्वर होने चाहिए जैसे यदि षड्ज कोष्ठक में है तो 'सा रे नि सा' या 'रे सा नि सा' अथवा 'नि सा रे सा' होगा। यदि किसी राग में निकटवर्ती स्वर वर्जित है तो जो भी निकटवर्ती है उसे शामिल कर लिया जायेगा। जैसे राग भूपाली में यदि षड्ज स्वर में मुर्की लगानी है तो 'सा रे ध़ सा' या 'सा रे सा सा' भी मुर्की कहा जा सकता है। खटका के विषय में भातखण्डे परम्परा के विद्वानों का मत है कि जहाँ कहीं एक मात्रा में, विशेषकर विलम्बित-ख़्याल में दो स्वर हों तो उससे पूर्व वाले स्वर को अधिक लम्बा करके दो स्वरों की एक मात्रा के स्थान पर आधी या उससे भी कम मात्रा में जल्दी से कहने को खटका कहा जाता है। जैसे- राग केदार के विलम्बित, 'जुगनवा चमके' में सम से चौथी और आठवीं मात्रा में 'नि़ सा' है, उससे पूर्व के स्वर षड्ज को एक मात्रा के स्थान पर डेढ़ मात्रा में कहना होगा और, नि़ सा को आधी मात्रा में। यदि किसी गायक का अधिक अभ्यास है तो वह चौथाई मात्रा में, ऽऽऽ नि़ सा को कह सकता है और षड़ज को पौने दो मात्रा में कहना होगा। राग भैरव की विलम्बित ख़्याल की बन्दिश 'बालमुवा मोरे सैंया' में भी सम से चौथी मात्रा में म प, ये दो स्वर हैं वहाँ भी तीसरी मात्रा के स्वर प को लम्बा करना होगा और चौथी मात्रा के अन्त में, म प को गाना होगा।

कुछ विद्वानों का भातखण्डे की परम्परा में ही खटका के लिए तीन स्वर और मुर्की के लिये चार स्वर होने चाहिए, ऐसा मानना है। जैसे- प मं मं यह खटका है और कोष्ठक में लिखा गया स्वर मुर्की है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुर्कीः- दो या तीन स्वरों को द्रुत गति में उच्चारण करना मुर्की है। इसका प्रयोग ठुमरी, दादरा, टप्पा में अधिक होता है। ध्रुपद शैली में इसका प्रयोग नहीं किया जाता है। मुर्की भेद से, ध्रुपद, ख़्याल और ठुमरी इस क्रम से देखा जाए तो कहा जा सकता है कि ध्रुपद में बिल्कुल नहीं, ख्याल में कुछ मात्रा में और ठुमरी में बहुतायत से मुर्की का प्रयोग किया जाता है। ये सब स्वरों के आभूषण हैं।

आंदोलनः- आंदोलन का अर्थ है कम्पन अर्थात् स्वर का हिलना। भारतीय शास्त्रीय संगीत में विशेष प्रकार से स्वर को लगाने की इस क्रिया को कम्पन कहते हैं। अनेक रागों में कोमल-गांधार, मध्यम से स्पर्श करता हुआ दो या तीन बार झूले की तरह झुलाया जाता है यही आंदोलित स्वर कहलाता है। स्वर का आंदोलन दो प्रकार से किया जा सकता है। जिसे कम्पित करना है उस स्वर को ऊपर वाले स्वर से स्पर्श करते हुए कम्पित करना और नीचे वाले स्वर से स्पर्श करते हुए कम्पित करना। राग दरबारी में गांधार को ऋषभ से गांधार तक आंदोलित करते हैं जबकि अधिकतर विद्वान मध्यम से ही स्पर्श करते हुए कम्पित करते हैं। कान्हड़ा के सभी प्रकारों में - नायकी कान्हड़ा, अड़ाना, बहार आदि तथा इनके अतिरिक्त मियाँ मल्हार के कोमल-गांधार को आंदोलित किया जाता है। भैरव के कोमल-ऋषभ व कोमल-धैवत, मालकौंस के कोमल-गांधार द कोमल-धैवत तथा धनाश्री अंग के भीमपलासी, धानी, धनाश्री आदि रागों के कोमल-निषाद को षड्ज से स्पर्श कराते हुए आंदोलित किया जाता है। अधिकतर रागों में कोमल-स्वर को ही आंदोलित (कम्पित) करने का प्रचलन है, शुद्ध स्वरों को नहीं। संगीत रत्नाकर में 15 गमक कही गई हैं जिनमें से छह गमकों का सम्बन्ध स्वर के कम्पित करने से है। द्रुत काल जो लगभग आधे सेकेण्ड के बराबर होता है, में चार बार स्वर के कम्पन को 'तिरिप', तीन बार कम्पन को 'स्फुरित' और दो बार आंदोलित करने को 'कम्पित' गमक कहते है। द्रुत काल में ही एक बार कम्पन करने को 'लीन', लघु काल में स्वर के कम्पित करने को 'आंदोलित' गमक कहा है। गुरु काल की कोई गमक नहीं कही गई। स्वर को प्लुत-काल से कम्पित करने को 'प्लावित' गमक कहा गया है। इस प्रकार 6 गमकों का सम्बन्ध स्वरों की भिन्न-भिन्न गति के कम्पन से है। सम्भवतः इसीलिए ही शार्गदेव को गमक की परिभाषा देते हुए कहना पड़ा कि :-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"स्वरस्य कम्पो गमकः"

इन उदाहरणों को देखने से स्पष्ट होता है कि भारतीय संगीत का प्राण स्वरोच्चार है। स्वरों के उच्चार-भेद से ही राग भिन्न हो जाता है। दरबारी राग में गांधार और धैवत के कम्पित होते ही राग की गम्भीरता छा जाती है।

स्वरों का अपेक्षाकृत चढ़ा होना या अति कोमल होना भी स्वरोच्चार के ही अन्तर्गत आना चाहिए। तोड़ी का उतरा हुआ कोमल-गांधार, जो ऋषभ की ओर खिंचता हुआ लगता है, समान स्वर वाले मुल्तानी से अलग ही दिखता है। मुल्तानी का वही कोमल-गांधार ऊपर अर्थात् तीव्र-मध्यम को लिए हुए होता है अतः वह भी स्वरोच्चार के कारण मुल्तानी को दर्शाता है।

इन सब सूक्ष्म तथ्यों का ध्यान यदि रागों में रखा जाए तो राग अपना प्रभाव दिखाने में अवश्य ही सक्षम होगा। दुर्भाग्य से आजकल सरलता के मोह में इन सब सूक्ष्म भेदों की ओर से ध्यान हटता जा रहा है। यही कारण है कि रागों का स्वरूप विद्यार्थी ग्रहण नहीं कर पाते। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वरोच्चार के उचित ज्ञान का रागों के वास्तविक रूप की सिद्धि में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका ज्ञान उचित और समर्थ गुरु के निर्देशन में ही प्राप्त किया जाना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रागों का ऋतुओं से सम्बन्ध

भारतीय-शास्त्रीय-संगीत के राग मानव के चित्तवृत्तियों से सम्बन्धित माने जाते हैं। सुबह, दोपहर, सन्ध्या तथा रात्रि में मानसिक वृत्तियों की भिन्न-भिन्न अनुभूतियाँ होती हैं। मानव-मन पर मौसम जैसे-गर्मी, सर्दी औंर वर्षा का प्रभाव पड़ता है ठीक उसी प्रकार इन सभी परिस्थितियों का गहन अनुभव करके रागों का समय व रागों के साथ ऋतुओं का निर्णय किया गया है। प्रकृति पर तो ऋतुओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होता ही है। जैसे- शिशिर ऋतु में पेड़-पौधों के पत्तों का झड़ना, वसन्त ऋतु में नवीन पत्तों का उगना, ग्रीष्म ऋतु में मानव सहित प्रकृति का झुलसना तथा सर्दी में सिकुड़ना आदि। ये सब मानव मन पर प्रभाव डालते हैं।

रागों में भी समय एवं ऋतुओं का प्रभाव देखा जा सकता है। वर्तमान समय में 'वसन्त' और 'वर्षा ये दो ऋतुएँ ही रागों से सम्बन्धित कही जा सकती हैं। मध्य युग या उससे पूर्व में रागों का सम्बन्ध छहों ऋतुओं से प्राप्त होता है। जैसेः- हिन्दोल-वसन्त ऋतु में, दीपक-ग्रीष्म (गर्मी), मेघ-वर्षा, भैरव-शरद, श्री-हेमन्त और मालकौंस-शिशिर ऋतु (पतझड़) में गाए-बजाए जाते हैं। भाव सूक्ष्म होते है इसीलिए इसमें मतभेद होने के कारण भिन्न प्रकार के मत भी मिलते है, जैसेः- संगीत दर्पण में कहा गया है- श्री-शिशिर ऋतु (पतझड़), बसन्त-बसन्त ऋतु, भैरव-ग्रीष्म (गर्मी), मेघ-वर्षा, पंचम-शरद, नटनारायण-हेमन्त।

श्रीरागो रागिणीयुक्तः शिशिरे गीयते बुधैः।
वसन्तस्स्वसहायैस्तु वसन्ततौं प्रगीयते।।
भैरवः स्वसहायैस्तु ऋतौ ग्रीष्मे प्रगीयते।
पञ्चमस्तु तथा गेयो रागिण्या सह शारदे।।
मेघरागो रागिणीभिः युक्तो वर्षासुगीयते।
नटनारायणो रागो रागिण्या सहहेमके।।
यथेच्छया वा गातव्याः सर्वर्तुषु सुखप्रदाः। (संगीतदर्पण-पृ.-29)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार संगीत दर्पण में भैरव शरद ऋतु के स्थान पर ग्रीष्म ऋतु में कहा गया है। वर्तमान में ग्रीष्म, शरद, हेमन्त; शिशिर आदि ऋतु सम्बन्धी राग क्यों लुप्त हो गए? यह एक शोध का विषय है। वर्षा ऋतु के उदाहरणों का शोध करके स्वर व्यवस्था जिसे आज दुर्बोध माना जाता है उसकी खोज सम्भव हो सकती है क्योंकि वर्षा ऋतु की स्वरावली तो वही रहेगी जो वर्तमान में है। कारण यह है कि समय के साथ परिवर्तन सम्भव नहीं है। आज वर्षा-ऋतु के लिए मुख्यतः काफ़ी थाट के स्वरों का प्रयोग किया जाता है। मींड, गमक आदि से युक्त राग वर्षा-ऋतु में गाए-बजाए जाते हैं।

शार्गदेव ने संगीत रत्नाकर में राग-षड्जग्राम व राग-टक्क दोनों को ही वर्षा ऋतु का राग कहा है। क्या इस सूक्ष्म सूत्र की सहायता से संगीत रत्नाकर के स्वरों को ज्ञात नहीं किया जा सकता? हम समझते हैं कि यदि कोई प्रबुद्ध छात्र अपने शोध का यह विषय चुने तो इस क्षेत्र में कुछ न कुछ सफलता अवश्य मिलनी चाहिए।

आजकल वसन्त व वर्षा ऋतु वाले राग ऋतु-प्रधान माने जाते हैं। वसन्त ऋतु में प्रकृति खिल उठती है। उस प्रकृति को मानव-वृत्ति के साथ सम्बन्धित करते हुए राग-वसन्त व राग-बहार हमारे विद्वानों ने निश्चित किए हैं। इन रागों की बन्दिशों में वर्णित विषय जैसे- फूलों का खिलना, चारों ओर सुगन्ध का व्याप्त होना, कोयल का कुहू-कुहू करना इन सबसे मन का चञ्चल होना, अपने प्रिय के वियोग की वेदना को व्यक्त करना आदि होता है।

वर्षा-ऋतु में सभी प्रकार के मल्हार जैसे- मियाँ-मल्हार, मेघ-मल्हार, जयन्त-मल्हार आदि राग प्रचार में हैं। अप्रचलित रागों में मीरा की मल्हार, चर्जू की मल्हार आदि भी हैं। वर्षा-ऋतु में बादलों का गरजना, बूँदों का गिरना, बिजली का चमकना तथा इन सब स्थितियों से नायिका का प्रिय से मिलने के लिए व्याकुल होना आदि बन्दिशों का विषय होता है।

सभी मल्हार के प्रकारों में गमक, मींड आदि का बहुलता से प्रयोग किया जाता है। मींड क्रिया को यदि देखा जाए तो दो स्वरों को बिना खण्डित किए लगाना होता है। वर्षा-ऋतु में आकाश से बूँदों का बरसना या बादलों का झुकना आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मींड से सम्बन्धित होता होगा। गमक का सम्बन्ध बादलों की गड़गड़ाहट से स्थापित करने का यत्न गायक या वादक करता है। मेघ-मल्हार या मधुमाद-सारंग के समान स्वर होते हुए केवल मींड और वह भी ऊपर के स्वर से नीचे की ओर, इस क्रिया में भी प्रकृति से जुड़ने का संकेत होता है। जिस प्रकार पानी का धर्म ऊपर से नीचे आना होता है उसी प्रकार आकाश से पृथ्वी पर गिरने या बरसने की क्रिया होती है। ठीक उसी क्रम में 'मेघ-राग' के स्वरों में भी मींड की अवरोहात्मक क्रिया की प्रधानता होती है। इसके विपरीत 'मधुमाद-सारंग' में नीचे से ऊपर की ओर अर्थात् आरोह-क्रम में स्वरों का लगाव होता है, यानी सारंग के प्रकारों में आरोहात्मक स्वरावलियों की बहुलता होती हैं। सारंग के प्रकार दोपहर में गाए जाते हैं। पृथ्वी से गर्मी ऊपर की ओर जाती है। यह तो वैज्ञानिक नियम है कि गर्मी से वायु हल्की होकर ऊपर की ओर उठती है तो उसका संकेत सारंग-राग के प्रकारों में दृष्टिगोचर होता है।

आगे संगीत दर्पण और India - The Land and the People Hindustani के अनुसार नीचे सारर्णी में ऋतु और रागों का वर्णन है-

ऋतुओं के नाम	संगीत दर्पण के अनुसार	अशोक रानाडे के अनुसार
1. शिशिर	श्री	माकौंस
2. वसन्त	वसन्त	हिन्दोल
3. ग्रीष्म	भैरव	दीपक
4. वर्षा	मेघ	मेघ
5. शरद	पञ्चम	भैरव
6. हेमन्त	नट नारायण	श्री

आचार्य शार्गंदेव ने संगीत-रत्नाकर के प्रथम अध्याय के चतुर्थ-प्रकरण में ग्राम का विवेचन करते समय कहा है कि षड्ज-ग्राम के राग हेमन्त-ऋतु में, मध्यम-ग्राम के राग ग्रीष्म-ऋतु में और गांधार-ग्राम के राग वर्षा-ऋतु में गाये जाते हैं, साथ ही यह उल्लेख भी किया कि षड्ज-ग्राम के सुबह, मध्यम-ग्राम के दोपहर और गांधार ग्राम के दोपहर बाद में राग गाए जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हेमन्तग्रीष्मपर्णासु गातव्यास्ते यथाक्रमम्।
पूर्वाह्हकाले मध्याह्ने ऽपराह्ने ऽभ्युदयार्थिभिः। (सं.र.-1पृ.102)

कुछ विद्वानों ने दिन के चौबीस घण्टों को छह भागों में विभक्त कर उन्हें ही छह ऋतुएँ मानकर रागों को ऋतुओं से जोड़ा है। इस धारणा के पीछे भी ग्रन्थाधार है। श्रीकण्ठ ने सुबह को वसन्त, दोपहर को ग्रीष्म, शाम को वर्षा, रात्रि के आरम्भ-काल को शरद, मध्य-रात्रि को हेमन्त और प्रातः काल के समय को शिशिर-ऋतु मानकर सभी रागों को ऋतुओं से जोड़ा है। उन्हीं के शब्दों में पूर्वाह्न - सुधियो वसन्तसमयं, मध्याह्नकालं पुन ग्रीष्मं, वारिधरागम च दिवसस्यान्तयं विभागं तथा। राज्यर्धं शरदं वदन्ति, रजीशेषं तुषारागमं, नित्य शैशिरके दिनऽपि नितरामित्यं ऋतो-कल्पना (रस कौमुदी पृ.-35)।

नीचे संगीत-रत्नाकर नामक ग्रन्थ में वर्णित छह ऋतुओं में अलग-अलग गाए जाने वाले रागों के उदाहरण दिए गए हैं:-

क्रम	ऋतुएँ	गाए जाने वाले राग
1.	वसन्त	हिन्दोल
2.	ग्रीष्म	गौड़-पंचम, मध्यम-ग्राम*, भिन्न-पंचम, शुद्ध-पंचम
3.	वर्षा	टक्क तथा षड्ज-ग्राम*
4.	शरद	रगन्ति
5.	हेमन्त	भिन्न-षड्ज
6.	शिशिर	गौड़-कैशिक, शुद्ध-कैशिक, भिन्न-कैशिक

रगन्ति और कुकुभ भाषा के अन्तर्गत आता है। शेष सभी बारह ग्राम-राग हैं। संगीत-रत्नाकर में देशी रागों के दो वर्ग बनाए गये हैं- पूर्व प्रसिद्ध और अधुना प्रसिद्ध। अधुना-प्रसिद्ध रागों में कोई भी राग ऋतु प्रधान नहीं कहा गया है। इसका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि तेरहवीं शताब्दी तक रागों का ऋतुओं के साथ सम्बन्ध टूट चुका था।

(*- षड्ज-ग्राम एवं मध्यम-ग्राम ये दो ग्राम राग हैं।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग-रागिणी-वर्गीकरण

रागों को वर्गीकृत करने के कुल पाँच प्रकार आज तक प्रचार में रहे हैं:- ग्राम-मूर्च्छना, मेल या थाट-राग-वर्गीकरण, शुद्ध-छायालाग-संकीर्ण, रागाङ्ग और राग-रागिनी वर्गीकरण। ग्राम-मूर्च्छना और थाट-राग-वर्गीकरण स्वर साम्य पर, शुद्ध, छायालाग, संकीर्ण रागों के मिश्रण पर और रागांग वर्गीकरण स्वर संगति पर आधारित है। राग रागिनी वर्गीकरण सम्भवतः भाव पर आधारित होता है।

यह प्रणाली मध्यकाल में अधिक प्रचार में थी। वैसे इस वर्गीकरण के चिहून अति-प्राचीन काल से दृष्टिगोचर होते हैं। आगम-तन्त्र और निगम-मन्त्र दोनों परम्पराओं में राग-रागिनी के बीज को देखा जा सकता है। हमारे यहाँ भारतीय साहित्य में राग और रागिनियों के ध्यान देवरूप में कहे गए हैं। देव पुरुष रूप में और देवियाँ स्त्री रूप में होती हैं, ये ही रागों के देव रूप हैं। इनका सम्बन्ध सदा से ही शंकर से जोड़ा जाता रहा है। अतः राग-रागिनी के बीज तो आगम परम्परा से ही उपलब्ध हो जाते हैं। शिव के पाँच मुखों से पाँच राग और पार्वती से छठे राग की उत्पत्ति मानी जाती है।

वैदिक परम्परा निगम कहलाती है। संगीत का सम्बन्ध सामवेद से है। 'साम' शब्द का यदि विच्छेद करें तो 'सा' का अर्थ है ऋक्मन्त्र, जो पत्नी रूप में माने जाते हैं और 'अम' का अर्थ है षड्ज, ऋषभ आदि स्वर। (भा.सं.शा.पृ.232)

सामरहस्योपनिषद के अनुसार आदिरूप पुरुष एक है, उसने दो होने की इच्छा की और वह दो रूपों में हो गया। यही दो तत्त्व सृष्टि के आधार हैं। हमारी आस्था के अनुसार शक्ति-शिव, लक्ष्मी-विष्णु, सीता-राम, राधा-कृष्ण आदि सदा से युगल के रूप में पूजे जाते रहे हैं।

रागों के नाम कुछ पुल्लिंग-वाचक कुछ स्त्रीलिंग-वाचक हैं। मद्रक, उल्लोप्यक आदि गीतक पुल्लिंग-वाचक हैं। रागों की जननी जातियाँ षाडजी, आर्षभी आदि सभी स्त्रीलिंग-वाचक हैं। ठीक इसी प्रकार ग्राम-राग, उपराग और राग ये पुल्लिंग-वाचक हैं तो भाषा, विभाषा और अन्तर्भाषा स्त्रीलिंग-वाचक हैं। यहीं से राग-रागिनी-वर्गीकरण के चिहून उपलब्ध होते हैं। स्पष्टतः रागों को पुरुष या स्त्री लिखित रूप में सर्वप्रथम 'औमापतम्' नामक ग्रन्थ में मिलता है। यह ग्रन्थ शिव-पार्वती संवाद के रूप में लिखा गया है। जिसका काल औमापतम् के सम्पादक के. वासुदेवशास्त्री के अनुसार प्रथम शताब्दी है। इसमें पुरुष राग और स्त्रीराग बताए गए हैं। दसवीं शताब्दी के नारदकृत 'संगीत मकरन्द' में रागों के तीन वर्ग बताए गए हैं- पुरुषराग, स्त्रीराग और नपुंसक राग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेरहवीं शताब्दी के आधारग्रन्थ संगीतरत्नाकर में राग-रागिनी का कोई उल्लेख नहीं है। 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' में राग-रागिनी स्पष्ट रूप से दिए गए हैं। मध्यकाल के पुण्डरीक विट्ठल के ग्रन्थ 'रागमाला' में राग-रागिनी वर्गीकरण दिया गया है। इस वर्गीकरण में सभी छह राग और तीस या छत्तीस रागिनियाँ मानी गईं हैं। पं. दामोदर के 'संगीत दर्पण' में कहा गया है कि शिव के पाँच मुखों:- सद्योवक्त्र से श्री, वामदेव मुख से वसन्त, अघोरमुख से भैरव, तत्पुरुष से पंचम, ईशान मुख से मेघ उत्पन्न हुआ और छठा राग नट्ट-नारायण की उत्पत्ति पार्वती के मुख से मानी गयी है।

राग-रागिनी वर्गीकरण सम्भवतः भाव पर आधारित होता है। भाव अत्यन्त सूक्ष्म संवेदन है अतः अलग-अलग विद्वानों के अलग-अलग मत होने की सम्भावना हो सकती है। सम्भवतः इसी कारण इस वर्गीकरण के अनेक मत प्रचार में हो गए। सभी मतों में छह मुख्य राग माने गए। कुछ मतों में प्रत्येक राग की पाँच-पाँच और कुछ मतों में छह-छह रागिनियाँ कही गई हैं। यहाँ राग-रागिनी वर्गीकरण के दस मतों के नाम दिए जा रहे हैं:- (1) नारदमत (2) मेष कर्णमत (3) सोमेश्वर मत (4) भरत मत (5) रागार्णव मत (6) हनुमान् मत (7) कल्लिनाथमत (8) पुण्डरीक विट्ठलमत (9) शिवमत (10) अबुल-फ़ज़लमत

इन सब में कुल चार मत ही अधिक प्रचार में रहे:- शिव मत या सोमेश्वर मत, कल्लिनाथ या कृष्ण मत, भरत मत और हनुमान् मत। इनमें से भी हनुमान् मत अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित रहा। कवि लोचन, अहोबल और श्रीनिवास हनुमान् मत के मानने वाले थे। उक्त चारों मतों के राग और रागिनियों का विवरण आगे सारणी में प्रस्तुत है:-

शिव या सोमेश्वर मत (सं.वि.,पृ.-209) के 6 राग व 36 रागिनियाँ

सं.	राग	प्रत्येक राग की छह रागिनियाँ
1.	श्री	1.मालवी, 2.त्रिवेणी, 3.गौरी, 4.केदार, 5.मधुमाधवी, 6.पहाड़िका
2.	वसन्त	1.देशी, 2.देवगिरी, 3.वराटी, 4.तोड़ी, 5.ललिता, 6.हिन्दोली
3.	पंचम	1.विभास, 2.भूपाली, 3.कर्णाटी, 4.बड़हंसिका, 5.मालवी,6.पटमंजरी
4.	मेघ	1.मल्लारी, 2.सोरठी, 3.सावेरी, 4.कौशिकी, 5.गांधारी, 6. हरशृंगारा
5.	भैरव	1.भैरवी, 2.गुर्जरी, 3.रामकिरी, 4.गुणकिरी, 5.बंगाली, 6.सैंधवी
6.	नटनारायण	1.कामोदी, 2.आभीरी, 3.नाटिका, 4.कल्याणी, 5.सारंगी, 6.नट्टहम्बीरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरत मत के 6 राग व 30 रागिनियाँ (सं. वि., पृ.-209-210)

सं.	राग	प्रत्येक की पाँच रागिनियाँ
1.	भैरव	1. मधुमाधवी, 2. ललिता, 3. बरारी, 4. भैरवी, 5. बहुली
2.	मालकौंस	1. गुजरी, 2. विद्यावती, 3. तोड़ी, 4. खम्बावती, 5. ककुभ
3.	हिन्दोल	1. रामकली, 2. मालवी, 3. आसावरी, 4. देबारी, 5. केकी
4.	दीपक	1. केदारी, 2. गौरा, 3. रुद्रावती, 4. कामोद, 5. गुजरी
5.	श्री	1. सैंधवी, 2. काफी, 3. ठुमरी, 4. विचित्रा, 5. सोहनी
6.	मेघ	1. मल्लारी, 2. सारंग, 3. देशी, 4. रतिवल्लभा, 5. कानरा

कल्लिनाथ मत के 6 राग व 36 रागिनियाँ (सं. वि., पृ.-209-210)

सं.	राग	प्रत्येक राग की छह रागिनियाँ
1.	श्री	1. गौरी, 2.कोलाहल, 3.धवला, 4. वरोराजी, 5. मालकौंस, 6. गांधार
2.	पंचम	1. त्रिवेणी, 2.हस्तन्तरेतहा, 3.अहीरी, 4.कोकभ, 5.वेरारी, 6.आसावरी
3.	भैरव	1. भैरवी, 2.गुजरी, 3.बिलावली, 4.बिहाग, 5.कर्नाटी, 6.कानड़ा
4.	मेघ	1. बंगाली, 2.मधुरा, 3.कामोद, 4. धनाश्री, 5. देवतीर्थी, 6. दिवाल
5.	नटनारायण	1. त्रिबंकी, 2.तिलंगी, 3.पूर्वी, 4.गांधारी, 5.रामा, 6. सिन्धमल्लारी
6.	वसन्त	1. अन्धाली, 2.गुणकली, 3.पटमञ्जरी, 4.गौड़गिरी, 5.थाँकी, 6.देवसाग

हनुमन्मत के 6 राग व 30 रागिनियाँ (सं. वि., पृ.-209-210)

सं.	राग प्रत्येक	राग की पाँच रागिनियाँ
1.	भैरव	1. बंगाली, 2. सैंधवी, 3. भैरवी, 4. बरारी, 5. मदमादी
2.	मालकौंस	1. तोड़ी, 2. गुणकरी, 3. गौरी, 4. खम्बावती, 5. ककुभ
3.	हिन्दोल	1. रामकली, 2. देशाख, 3. ललिता, 4. बिलावली, 5. पटमंजरी
4.	दीपक	1. देशी, 2. कामोदी, 3. केदारी, 4. कानड़ा, 5. नाटिका
5.	श्री	1. मालश्री, 2. आसावरी, 3. धनाश्री, 4. वसन्ती, 5. मारवा
6.	मेघ	1. तनक, 2. मल्लारी, 3. गुजरी, 4. भोपाली, 5. देशकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चारों मतों के मुख्य रागों के सूत्र

1. शिव मत या सोमेश्वर मतः- शिवपमेभन (शिव=श्री, व=वसन्त, प=पंचम, म=मेघ भ=भैरव, न=नटनारायण)

2. कल्लिनाथ मतः- श्रीपभैरवमेनवसन्त (श्री=श्री, प=पंचम, भै=भैरव, मे=मेघ, न=नटनारायण, व=वसंत)

3. हनुमान् मत एवं भरत मतः- भैरवमाहीदीश्रमे (मा=मालकौंस, ही=हिन्दोल, दी=दीपक, श्र=श्री, मे=मेघ)

इनके अतिरिक्त आठ पुत्र और आठ पुत्रवधुएँ कही गई हैं, अतः प्रत्येक राग के परिवार में पाँच रागिणीयाँ मानने वालों में बाईस और छः रागिणीयाँ मानने वालों में तेईस रागों का समूह माना जाता था।

इस सारिणी को देखने से निम्न तथ्य समझ में आते हैं :-

1. शिव व कल्लिनाथ के मतानुसार प्रत्येक मुख्य राग की छह-छह रागणियाँ हैं, अतः इनकी संख्या छत्तीस हुई। इसके विपरीत भरत और हनुमान् मत की प्रत्येक राग की पाँच-पाँच रागिणियाँ हैं अतः इनकी कुल संख्या तीस है।
2. भरत मत और हनुमन्मत या हनुमान् मत के सभी राग पूर्णतः समान हैं।
3. शिव मत व कल्लिनाथ मत के मुख्य राग तो समान हैं किन्तु उनके क्रम में भिन्नता है।
4. श्री, मेघ व भैरव तो चारों मतों में हैं जबकि तीन अन्य राग नहीं मिलते।
5. रागिणियाँ किसी भी मत में पूर्ण रूप से समान नहीं हैं। कुछ के नाम सभी मतों में समान हैं और कुछ के भिन्न। जैसे- भैरव राग की भैरवि-रागिनी तो चारों मतों में है जबकि भरत मत में हिण्डोल की, कल्लिनाथ मत में पंचम की तथा हनुमन्मत में श्रीराग की रागिनी आसावरी है। इसी प्रकार शिव मत में वसन्त की एवं भरत मत तथा हनुमन्मत में मालकौंस की रागिनी तोड़ी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

6. भरत मत और हनुमन्मत में मालकौंस मुख्य राग है, किन्तु कल्लिनाथ मत में यह श्री राग की पाँचवें क्रम की रागिनी है।

7. भरत और हनुमन्मत में हिण्डोल मुख्य राग है किन्तु शिवमत में वसन्त राग के छठे क्रम की हिण्डोली रागिनी है। इसी प्रकार शिवमत और कल्लिनाथ मत में वसन्त मुख्य राग है, किन्तु हनुमन्मत में श्री राग की चौथे क्रम की रागिनी, वसन्ती है इससे यह प्रतीत होता है कि जब राग-रागिनी वर्गीकरण प्रचार में रहा होगा तो सम्भवतः राग और रागिनी के गाने व बजाने में कुछ मुख्य अन्तर होता होगा, जिसे सुनकर श्रोतागण भी राग-रागिनी का पुरुष-स्त्री भेद समझ जाते होंगे। वर्तमान समय में हम सभी रागों या रागिणियों को समान रूप से राग ही कहते हैं और उनके गाने बजाने में भी कोई अन्तर नहीं रखते।

8- चारों मतों के राग-रागिणियों में से वर्तमान में भी अधिकतर राग प्रचलित हैं किन्तु उनके स्वर परिवर्तित हो गए हैं क्योंकि भैरव राग की भैरवि-रागिनी सभी मतों में कही गई है पर वर्तमान भैरव और भैरवि में कोई सम्बन्ध नहीं है। भैरव और भैरवि में न तो स्वर की समानता है और न वादी-संवादी की। हिण्डोल राग की रामकली रागिनी भरतमत और हनुमन्मत में कही गई हैं, वर्तमान के हिण्डोल और रामकली में कोई समानता नहीं है। श्रीराग की मारवा और आसावरी रागिनियाँ हनुमन्मत में कही गई हैं। इन तीनों (श्री, मारवा, आसावरी) में भी वर्तमान की दृष्टि से कोई समता नहीं है। मध्यकाल के श्रीराग के स्वर वर्तमान काफ़ी के समान थे जबकि वर्तमान श्री राग पूर्वी थाट का है।

इन्हीं सब विसंगतियों को देखते हुए पटना के मो. रज़ा ने नग़माते आसफ़ी में (1813) राग-रागिनी वर्गीकरण का खण्डन करके और स्वर-साम्य के आधार पर थाट-राग के समान नया राग-रागिनी वर्गीकरण प्रस्तुत किया। वह भी कुछ समय बाद अमान्य हो गया और थाट-राग वर्गीकरण प्रचार में आया।

इस में विचार करने का बिन्दु यह है कि सभी मतों में छह ही मुख्य राग क्यों माने? इसके लिए चार प्रकार के तर्क दिए जा सकते हैं-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1. भारतीय समस्त कलाएँ शिव एवं शक्ति (पार्वती) से सम्बन्धित हैं। संगीत में भी शिव के पाँच मुखों से पाँच राग और पार्वती के मुख से एक राग उत्पन्न हुआ। अतः (5 + 1 =) 6 ही मुख्य राग हैं।

यशोदानन्दन के शब्दों में -

शिव अरु शक्ति संयोग ते षडबिधि राग प्रधान।
पाँच बदन ते पाँच है एक शिवा मुष (मुख) जान।।
भैरव भयो अघोर ते मेघराग ईशान।
उपज्यो सद्योजात ते सिरी राग सुषदान।।
बामदेव मुष ते भयो सरस बसंत सभाग।
कारनाट ततपुरुष ते शिव मुष निकसे राग।।
छठयो राग हिंदौल भौ गिरिजा बदन प्रकास।
रागन की उत्पत्ति इमि बरनत है कविदास।। (राग माला पृ.–16)

2. सप्तक के छह स्वरों से जैसेः- सा से भैरव, रे से कर्णाट, ग से हिन्डोल, म से वसन्त, प से मेघमल्हार तथा ध से श्री राग उत्पन्न होता है। केवल नि एक ऐसा स्वर है जो बांझ है, उसका कोई राग नहीं है।

3. वादी स्वर के आधार पर सा रे ग म प ध ये छह ही स्वर वादी हो सकते हैं, नि किसी राग का वादी स्वर नहीं होता, इसीलिए निषाद के अतिरिक्त शेष प्रत्येक वादी स्वर का एक-एक राग ले लिया जाए तो छह ही राग हुए। जिन्हें मुख्य राग कहा गया है।

4. ऋतुओं के आधार पर रागों के वर्णन में ऋतुओं का भी उल्लेख होता है। ऋतुएँ छह हैं इसलिए प्रत्येक ऋतु का एक-एक राग ग्रहण करने पर छह मुख्य राग हुए।

राग रागिणी वर्गीकरण को मानने वाले ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं औमापतम्, नारद-कृत संगीत मकरन्द, पं. दामोदर-कृत संगीत दर्पण, पुण्डरीक विट्ठल-कृत रागमाला, भावभट्ट-कृत संगीत अनूपांकुश, यशोदानन्दन-कृत हिन्दी में रागमाला और किसी अन्य नारद द्वारा लिखा गया चत्वारिंशतशत् राग निरूपण है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस ग्रन्थ में छह के स्थान पर दस मुख्य राग माने हैं। प्रत्येक राग के परिवार में पाँच भार्याएँ, चार कुमार (पुत्र) और चार स्नुषा (पुत्रवधु) कुल (1+5+4+4 =)14 अतः (10 x 14 =)140 को ही संस्कृत में चत्वारिशंत्शत् कहते हैं। यशोदानन्दन द्वारा लिखित हिन्दी में प्राप्त राग-माला में प्रत्येक राग के परिवार में छह भार्याएँ, छह पुत्र, छह पुत्र वधू, एक सखा और एक सखी कहे गए हैं अतः प्रत्येक राग के परिवार में (1 + 6 + 6 + 6 + 1 + 1 =) 21 राग रागिणी हुए। चूँकि मुख्य 6 राग हैं अतः (6 x 21 =)126 कुल राग हुए।

राग रागिनी वर्गीकरण मानने वाले सभी ग्रन्थकार और मेल वर्गीकरण मानने वाले कुछ ग्रन्थकारों ने रागों के ध्यान भी दिए हैं। प्रत्येक राग के नाद रूप के साथ-साथ देवरूप का वर्णन भी दिया गया है। रागों के ध्यान की परम्परा का सम्बन्ध रागों को रसों से जोड़ने में सहायक होता है जैसे-राग के देवमय रूप के हाथ में यदि कोई शस्त्र (त्रिशूल, खड्ग आदि) है तो वह वीर रस से सम्बन्धित राग हुआ इसी प्रकार यदि पुष्प, पान, आभूषण हो तो उस राग का सम्बन्ध श्रृंगार रस से होगा। इस प्रकार अन्य रसों से भी रागों का सम्बन्ध स्पष्ट होता है। सम्भवतः इसीलिए मध्ययुग में रागों का प्रभाव अधिक था। मेघ राग से वर्षा होना, दीपक राग से दिये जलना आदि किवदन्तियाँ इसी युग की हैं।

पुरुष राग वे माने जाते हैं जिनके स्वरान्तराल अपेक्षाकृत बड़े होते हैं, जैसे-हिण्डोल, मालकौंस, मेघ आदि। इन सभी रागों में गुरु-अन्तराल से भी बड़े स्वरान्तरालों का प्रयोग हुआ है। ये मन्द्र प्रधान, गम्भीर और विलम्बित-लय में अधिक खिलने वाले होते हैं। इनके स्वरान्तराल बड़े होने के कारण सुनने में अपेक्षाकृत कठोर हैं। इसके विपरीत स्त्री-राग या रागिनियों के स्वरान्तराल छोटे, तारप्रधान, चञ्चल और द्रुत गति वाले होते हैं।

संगीत की किवदन्तियाँ राग-रागिनी वर्गीकरण के प्रचार वाले काल की हैं जिनमें रागों के प्रभाव से वर्षा होना, पत्थर पिघलना, दीपक जलना आदि सुना जाता है और यह क्यों न हो जब संगीत का मुख्य उद्देश्य ही भावों की अभिव्यक्ति करना है। जिस काल में इसी पर अधिक बल दिया जाता होगा तो उस समय रागों की क्षमता भावों को व्यक्त करने में सर्वाधिक रही होगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्ययुग में मेलराग-वर्गीकरण, राग-रागिनी-वर्गीकरण के साथ-साथ ही प्रचार में आ गया था। धीरे-धीरे स्वर साम्य पर आधारित मेल या थाट-राग-वर्गीकरण प्रचार में आने लगा जो राग के स्वरों यानी शरीर पर विचार करता है। राग की आत्मा पर आधारित राग-रागिनी-वर्गीकरण लुप्त होने लगा। आत्मा पर आधारित वर्गीकरण सम्भवतः इसलिए प्रचार में कम हो गया क्योंकि जन-साधारण को बाहरी दिखावे में अधिक रूचि होने लगी और वह आत्मा की आवाज़ को न सुनकर शरीर की पूजा करने लगा। इसके बावजूद आज भी आम जनता में राग-रागिनियों की चर्चा होती हैं।

सिखों के धार्मिक ग्रन्थ 'गुरु ग्रन्थ साहब' के अन्त में छह राग और तीस रागिनियों की चर्चा है। अष्टछाप के कवियों सूरदास, मीरा आदि ने राग-रागिणियों में ही पदों को लिखा है। मध्ययुग के सभी ग्रन्थों में राग-रागिनी-वर्गीकरण किसी न किसी रूप में अवश्य दृष्टिगोचर होता है चाहे वह संगीत हो या साहित्य।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेलोडी व हार्मोनी

विश्व में दो प्रकार का संगीत प्रचलित हैः– (1) एक के बाद एक क्रमिक रूप से स्वरों का प्रयोग, (2) एक साथ तीन स्वरों का प्रयोग जिनमें पारस्परिक निश्चित अन्तराल का सम्बन्ध हो। पहले प्रकार को मेलोडी एवं द्वितीय को हार्मोनी कहते हैं। मेलोडी के लिए हिन्दी में 'सङ्क्रमक' और हार्मोनी के लिए 'संगति' या संहति (ध्व. सं.,पृ.–114) शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

हमारा भारतीय-संगीत मेलोडी प्रधान है और पाश्चात्य-संगीत हार्मोनी प्रधान है। भारतीय-शास्त्रीय- संगीत हो या लोक-संगीत, इसमें स्वरों का प्रयोग एक के बाद एक किया जाता है, जैसे – यदि 'यमन-राग' गाना है तो 'ऩि रे सा' अथवा 'प मं ग रे सा' के रूप में एक के बाद एक स्वर क्रम से गाए या बजाए जाएँगे। मेलोडी में गायक या वादक एक हो या अनेक, वे गाने-बजाने में स्वरों के प्रयोग का क्रम समान ही रखते हैं। हार्मोनी में एक साथ तीन स्वरों को गाया और बजाया जाता है। इन तीनों स्वरों का पारस्परिक सम्बन्ध संवादी होना चाहिए, केवल यही अनिवार्यता है, जैसे– 'सा, ग, प, सां' में षड्ज से गांधार का $^5/_4$ का संवाद है, जिसे षड्जान्तर या सप्तश्रुति-संवाद कहते हैं। गांधार और पंचम में $^6/_5$ का षट्-श्रुति संवाद (सा-ग॒) है। इन दोनों अन्तरालों को आगे-पीछे करके मेजर और माइनर कॉर्ड बनते है। 'सा-प' में $^3/_2$ का संवाद तेरह श्रुतियों का तो मुख्य संवाद है ही। हार्मोनी में यही नियम मान्य है। हार्मोनी में लगने वाले तीनों स्वरों का कहीं भी पारस्परिक अनिष्ट सम्बन्ध नहीं होना चाहिए जैसे – 'सा-म' और 'सा-प' मुख्य संवाद है परन्तु 'सा, म, प' इन तीन स्वरों से हार्मोनी में एक साथ गाना-बजाना सम्भव नहीं है, क्योंकि यद्यपि षड्ज का मध्यम और पंचम से अति इष्ट संवाद है तथापि मध्यम और पंचम का आपस में (म = 320 आन्दोल, प = 360 आन्दोलन, दोनों का गुणांक $^{360}/_{320}$ =) $^9/_8$ का अन्तराल होने के कारण अनिष्ट सम्बन्ध है।

मेलोडी का क्षेत्रः– भारतीय रागदारी-संगीत मेलोडी प्रधान है। यहाँ का संगीत गायन-प्रधान है। गायन कण्ठ से होता है, कण्ठ में एक के बाद एक स्वर गाए जाते हैं। वादक भी पहले स्वयं मन में गाता या गुनगुनाता है, तब उसी स्वरावली को अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाद्य पर प्रस्तुत करता है। सितार वादक 'विलायत ख़ाँ' या 'रईस ख़ाँ' साहब तो अपने वादन में गायन को विशेष स्थान देते हैं, इसलिए उनका वादन गायकी प्रधान है।

किसी भी राग को गाते-बजाते समय कलाकार अपनी स्वेच्छा से स्वर-विस्तार करता है न कि किसी संगीत निर्देशक के बताए हुए पूर्व-नियोजित स्वर-विस्तार के अनुसार। संगीतज्ञ वह राग और ताल के नियमों का पालन करते हुए अपने राग को चाहे सीमित समय तक प्रस्तुत करे या उससे अधिक समय तक वह पूरे समय अपनी निज कल्पना के अनुसार ही अपने उस राग को प्रस्तुत करता है। हिन्दुस्तानी संगीत स्वानुभूति पर आधारित है, किसी दूसरे की अनुभूति पर नहीं अर्थात् कलाकार शास्त्रीयता के साथ अपने गायन या वादन में जिस पक्ष को प्रमुखता से उजागर करना चाहता है, स्वेच्छा से कर लेता है। इससे कलाकार की अपनी निज-प्रतिभा भी परिलक्षित हो जाती है। मेलोडी में गायक के संगतकार जो मुख्य कलाकार की सहायता करने के लिए या उनके द्वारा प्रस्तुतीकरण को और अधिक सजाकर प्रस्तुत करने के लिए होते हैं, यदा-कदा वो भी अपनी कला को अलग से प्रदर्शित कर कार्यक्रम की रञ्जकता बढ़ाते हैं या उपरंजन करते हैं। उस विशेष समय अन्तराल में वह संगतकार मुख्य कलाकार बन जाता है।

हार्मोनीः- मेलोडी के विपरीत हार्मोनी में ऐसा नहीं है। उसमें कृति पहले से तैयार होती है और उसे एक से अधिक कलाकारों के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। हार्मोनी में मूल-कृति को ज्यों का त्यों बनाए रखकर प्रस्तुत करना उन सभी कलाकारों का उदेद्श्य होता है अतः वे कलाकार बिना पूर्व विचार-विमर्श के अपनी स्वयं की प्रतिभा को प्रस्तुति में समाहित नहीं कर सकते। हार्मोनी में मूल रचनाकार ही मुख्य होता है जो सैकड़ों वर्ष पहले का भी हो सकता है। मेलाडी में या हमारे (भारतीय) संगीत में ऐसा कुछ नहीं है। कलाकार के मन में आया कि 'भैरवी-राग' में तीव्र-मध्यम का प्रयोग किया जाए तो उस कलाकार ने अपनी क्षमता के अनुसार स्वरावलियाँ बनाईं और उसमें तीव्र-मध्यम का प्रयोग कर दिया। इसी प्रकार कलाकार को किस स्वर-समूह का कब प्रयोग करना है यह भी गायक या वादक के हाथ में है, बस राग और ताल का बन्धन मानना उसका धर्म होता है। हार्मोनी में कहाँ कितना रुकना है और कहाँ कौन सा स्वर लगाना है? यह सब कुछ पहले से ही निर्धारित होने के कारण प्रस्तुति के समय कलाकार कोई परिवर्तन नहीं कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकता। मेलोडी में राग के नियमों का पालन करते हुए स्वरों का प्रयोग करते हैं। तीनों सप्तकों में से चाहे उस राग को मन्द्र के किसी स्वर से आरम्भ करें अथवा मध्य से या फिर तार-सप्तक के किसी स्वर से, यह स्वतन्त्रता कलाकार की होती है। बन्धन केवल इतना ही होता है कि गाए-बजाए जाने वाला राग का चलन तीनों सप्तकों में हो। लय का भी कलाकार के लिए बहुत बड़ा बन्धन नहीं है। आरम्भ में वह ज़ो चाहे लय निश्चित कर सकता है बस उसके बाद उसका पालन करना होगा। उसमें भी यदि कलाकार चाहे तो सुविधानुसार लय घटा या बढ़ा सकता है जबकि हार्मोनी में ऐसा नहीं है।

मेलोडी और हार्मोनी का अन्तःसम्बन्धः- रागदारी-संगीत में तानपूरा मुख्य स्वर-वाद्य है। इसके बिना शास्त्रीय-संगीत अधूरा माना जाता है। तानपूरे के चारों तार क्रमशः प़, सा, सा, सा़ में मिलाए जाते हैं। जिन रागों में पंचम का प्रयोग नहीं होता है उनमें प्रथम तार को मन्द्र-मध्यम में मिलाया जाता है। मान लें तानपूरा पंचम में मिला हुआ है, अब गायक ने गांधार स्वर लगाया अतः मेलोडी होते हुए भी हार्मोनी की झलक जानकार व्यक्ति को हो जाएगी। तानपूरे के तार चाहे अलग-अलग बजाए जा रहे हों, जिन्हें हार्मोनी में तो एक साथ बजाने होते हैं फ़िर भी तानपूरे में गूँज रहने के कारण षड्ज और पंचम एक साथ सुनाई देते हैं। गांधार तो गायक या वादक का अलग से है ही, अतः यहाँ मेलोडी में हार्मोनी का सूक्ष्म-रूप (सा-ग-प) दृष्टिगोचर होता है। यही स्थिति बागेश्वरी, मालकौंस और ललित आदि राग गाते समय 'धैवत' लगाने पर अनुभव होती है।

हार्मोनी में मेलोडी तब अनुभव होती है जब मुख्य गायक या वादक हार्मोनी की रचना की कल्पना करता है। क्योंकि रचना-काल में वह सामान्यतः अकेला और वाद्यरहित होता है। अकेला होने के कारण गाने में तो हार्मोनी दिखा नहीं सकता क्योंकि उसका कण्ठ तो एक ही है, जबकि हार्मोनी में कण्ठ-संगीत की प्रधानता न होकर वाद्य-संगीत की प्रधानता होती है। चूँकि पियानो में एक ही व्यक्ति एक साथ एक से अधिक स्वरों का प्रयोग कर सकता है, इसलिए पियानो पाश्चात्य-संगीत का लोकप्रिय वाद्य है। हार्मोनी की चर्चा करने के लिए कॉर्ड्स (Chords) की चर्चा आवश्यक है। ये दो प्रकार के होते हैं:- मेजर कॉर्ड्स (Major Chords) और माइनर कॉर्ड्स (Minor Chords)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेजर कॉर्ड्सः- जो काड्स तीव्र-गांधार (Sharp-E), तीव्र धैवत (Sharp-A), तीव्र निषाद (Sharp-B) से बनते हैं उनको मेजर कॉर्ड्स कहते हैं यथाः-

(सा ग प, म ध सां, प नि रें) मेजर कॉर्ड्स के स्वरों को सप्तक में स्थापित करने से मेजर-स्केल बनता है। सा ग प में से सा ग ग प, म ध सां, में से म,ध, प नि रें में सें रे और नि को क्रमानुसार रखने पर बिलावल थाट बनता है।

माइनर कॉर्ड्सः- माइनर कॉर्ड्स में गांधार, धैवत, निषाद कोमल (Flate) होते हैं यथाः- (सा ग़ प, म ध़ सां, प नि़ रें)।

इसी प्रकार माइनर-कॉर्ड्स के स्वरों को क्रम से स्थापित करने पर माइनर-स्केल बनता है जिसमें ग, ध नि कोमल होने के कारण हिन्दुस्तानी संगीत के आसावरी थाट के समान है।

'सा-ग' ($^5/_4$) और 'ग-प' ($^6/_5$) के अन्तराल ही दोनों कॉर्ड्स में रहते हैं। केवल मेजर कॉर्ड्स में शुद्ध-गांधार का और माइन्नर कॉर्डस में कोमल-गांधार का प्रयोग होता है।

भारतीय-संगीत में जैसे अलग-अलग स्वरों से आरम्भ करके मूर्च्छना-भेद से अलग-अलग थाट बनाए जाते हैं, उसी रीति के कॉर्ड्स के भी तीनों स्वरों को प्रथम स्वर पर रखकर तीन-तीन भेद बन जाते हैं, जैसे (1) सा ग प (2) ग प सां (3) प सां गं। इसी तरह माइनर के भी तीन प्रकार बन जाएँगे जैसे (1) सा ग़ प (2) ग़ प सां (3) प सां गं़। मेजर और माइनर कॉर्ड्स में केवल गांधार (ग और ग़) के अन्तर से भाव में बहुत परिवर्तन आ जाता है। मेजर कॉर्ड्स में प्रसन्नता, उत्साह का अनुभव होता है जबकि माइनर कॉर्ड्स में ग्लानि, चिन्ता, करुणा आदि भावों की अनुभूति होती है।

मेलोडी में एक आधार स्वर होता है, जिसे स्वरित कहते हैं, जिसमें ऊपर-नीचे कलाकार राग को ध्यान में रखते हुए भिन्न-भिन्न स्वरावलियों की रचना करता है। भारतीय-रागदारी-संगीत में आधार-स्वर कलाकार के विश्रान्ति और सुख की अनुभूति कराता है जैसे- किसी पक्षी के लिए उसका घोसला या किसी व्यक्ति के लिए उसका घर अथवा बच्चे के लिए माँ की गोद। ये अपने स्थान से इधर-उधर जाकर पुनः अपने सुखदायी स्थान में आ जाते हैं और उन्हें आनन्द व शांति की अनुभूति होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी प्रकार संगीत में आधार-स्वर पर पहुँचकर कलाकार व श्रोताओं को एक प्रकार की सुखानुभूति होती है।

मेलोडी प्रधान भारतीय संगीत में इतनी अधिक स्वतन्त्रता है कि यदि दो बड़े गायकों या वादकों को एक साथ गाने के लिए कहा जाए तो वो बहुत मुश्किल से यह बात मानेंगे। वे बन्दिश तो जैसे-तैसे एक साथ गा सकेंगे परन्तु यह भी तब सम्भव है जब वो दोनों कलाकार संगीत की एक ही परम्परा (घराना) से सम्बन्धित हों या यूँ समझिए कि वे एक ही गुरु के शिष्य हों। हालाँकि आलाप-तान तब भी एक साथ नहीं हो सकेंगे। वहीं हार्मोनी प्रधान पाश्चात्य संगीत के कलाःकारों या वादकों को कहा जाए तो चाहे उनकी कितनी अधिक संख्या हो वे तत्काल ही गायन-वादन को स्वीकार कर लेंगे। मेलोडी में स्वरलिपि का महत्त्व अपेक्षाकृत कम है। यहाँ उसे सहायक के रूप में ही स्वीकार किया जाता है इसको समग्र आधार नहीं बनाया जाता जबकि हार्मोनी पूर्णरूपेण स्वरलिपि पर आश्रित है।

रागदारी संगीतज्ञों में से यदि एक षड्ज से गाए और दूसरा पंचम से तो वह किसी सीमा तक चल जाएगा पर गांधार से गाने वाले के लिए तो बहुत ही कठिन है। इसका कारण यह है कि हमारा प्रशिक्षण उस पद्धति में नहीं हुआ है। हार्मोनी का प्रशिक्षित कलाकार मेलोडी को स्वरलिपि के सहारे किसी सीमा तक प्रस्तुत कर लेगा किन्तु मेलोडी प्रधान संगीत के कलाकार को यदि हार्मोनी के अनुसार गाने के लिए कहा जाए तो अपेक्षाकृत अधिक कठिनाई होगी।

मेलोडी हो या हार्मोनी दोनों का अपना-अपना महत्त्व है। मेलोडी अति प्राचीन काल से चली आ रही है और हार्मोनी का जन्म पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ है (भा. सं.शा.पृ.-485) अतः मेलोडी, हार्मोनी की जननी हुई। मेलोडी हृदय या भाव प्रधान है जबकि हार्मोनी बुद्धि या कला प्रधान है। जीवन में अनेक अवसर एकान्त के होते हैं परन्तु समूह वाले अवसरों की भी जीवन में महत्ता होती है। एकान्त की, क्षमा-याचना की तथा चिन्ता की स्थिति मेलोडी में अधिक प्रभावी रूप से प्रस्तुत की जा सकती है। समुद्र के किनारे, पक्षियों का कलरव, मछुआरों की आवाज़ों आदि का शोर या किसी बारात अथवा मेले के दृश्य की झलक देनी हो तो मेलोडी की जगह हार्मोनी अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कटपयादि संज्ञा एवं बहत्तर मेल

व्यंकटमखी ने चतुर्दण्डी प्रकाशिका में गणित के आधार पर अधिकतम 72 मेल बनाने की विधि दी। आगे चलकर राग लक्षण नामक ग्रन्थ में इन 72 मेलकर्ताओं की क्रम संख्या के आधार पर सभी मेलों के स्वर ज्ञात करने की विधि प्राप्त होती है। इसके भी दो अलग-अलग सम्प्रदाय हैं राग लक्षण वाले कनकांगी आदि को प्रथम मेल मानते है और दूसरे सम्प्रदाय में कनकाम्बरी आदि मेल हैं ये दोनों प्रकार के नाम व्यंकटमखी ने नहीं दिये। कटपयादि ऐसी विधि है जिससे केवल मेल के नाभ से ही उसकी क्रम संख्या ज्ञात हो जाती है और क्रम संख्या के आधार पर उसके स्वरों का ज्ञान हो जाता है। इसके लिए प्रत्येक मेल से पूर्व दो अक्षर लगा दिए गए हैं जैसे कल्याण से पूर्व मेच, शंकराभरण के पूर्व धीर, हरप्रिया के पूर्व खर, काम्भोजी के पूर्व हरि आदि। इन दो अक्षरों की कौन सी संख्या है यह कटपय-विधि द्वारा ज्ञात किया जाता है। कटपय-विधि में चार अक्षर होते हैं- क, ट, प और य। इन अक्षरों में से 'क' का अर्थ है कवर्ग और चवर्ग, दोनों को मिलाकर नौ अक्षर और शून्य। 'ट' का अर्थ है टवर्ग और तवर्ग के नौ अक्षर और शून्य। 'प' का अर्थ है पवर्ग के पाँच अक्षर तथा 'य' का अर्थ है य से ह तक के आठ अक्षर। आगे चलकर के. व्ही. गिरमाजी राव ने कटपादि संज्ञा से तालों की तिस्र, चतस्र, खण्ड, मिश्र और संकीर्ण जातियों को भी समझाया है।

(क) अब यदि जैसे कटपय-विधि से मेचकल्याण की संख्या ज्ञात करना हो तो 'प' से पाँचवाँ अक्षर 'म' है जिसे इकाई मे रखेंगे और 'क' से गिनने पर छठा अक्षर 'च' है अंकानाम् 'वामतो-गतिः' (संख्याओं को बाईं ओर से गिनना) के आधार पर जिसे दहाई में लगाएँगे अतः यह संख्या 65 प्राप्त होती है बस यही कल्याण की संख्या है।

(ख) धीर-शंकराभरण के 'ध' की संख्या 'ट' से गिनने पर 9 हुई जिसे इकाई में लगाएँगे और 'य' से गिनने पर 'र' की संख्या 2 है जिसे दहाई में लगाएँगे अतः 29 क्रम का धीर-शंकरा-भरण है।

(ग) इसी प्रकार हनुमत तोड़ी के हनु में य से गिनने पर ह आठ हुआ जिसे इकाई में लगाएँगे नु ट से गिनने पर दसवाँ अक्षर यानि शून्य है जिसे दहाई में लगाएँगे। दायीं ओर शून्य का कोई अर्थ नही होता है इसलिए हनुमत तोड़ी की संख्या 8 हुई। इसी प्रकार शेष मेलों की संख्या भी प्रारम्भ के दो अक्षरों से ज्ञात की जा सकती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि प्राप्त होने वाली संख्या 36 से अधिक है तो उसमें से 36 घटाना पड़ेगा क्योंकि 72 मेलों में से 36 तक तो शुद्ध-मध्यम वाले मेल हैं उससे आगे (37 से 72) तीव्र-मध्यम वाले मेल होते हैं। यहाँ पर पहले 72 मेल बनाने की विधि दी जा रही है। सर्वप्रथम हिन्दुस्तानी स्वरों के समकक्ष कर्नाटकी स्वरों को जानना होगा। व्यंकटमखी ने हिन्दुस्तानी रे-ध और कोमल ग-नि के दो-दो नाम माने हैं अतः हिन्दुस्तानी शुद्ध विकृत 12 स्वरों के कर्नाटकी संगीत में 16 नाम माने जाते हैं। आगे सारणी में हिन्दुस्तानी और कर्नाटकी स्वर एक साथ दिये जा रहे हैं-

क्रम सं.	हिन्दुस्तानी	कर्नाटकी	व्यंकटमखी के काल्पनिक नाम
1	सा	सा	सा
2	रे॒	शुद्ध रे	रा
3	रे	शुद्ध ग	रि-ग पंचश्रुति रे
4	ग॒	ग	रे-गि षट्श्रुति रे
5	ग	अन्तर ग	गू
6	म	म	म
7	म	प्रति म	मि
8	प	प	प
9	ध॒	शुद्ध ध	ध
10	ध	शुद्ध नि	धि-ना पंचश्रुति ध-नि
11	नि॒	कैशिक नि	धू-नि षट्श्रुति ध-नि
12	नि	काकली नि	नू

इस सारणी को देखने से ज्ञात होता है कि रे-ग, ध-नि के तीन-तीन, म के दो और सा-प का एक-एक ही रूप है। सारिणी से स्पष्ट है कि रे, ग, ध, नि स्वरों में अ, इ, उ मात्राओं का विभिन्न क्रमों में प्रयोग किया गया है। 'अ' का प्रयोग शुद्ध स्वर के लिए, 'इ' का प्रयोग शुद्ध से ऊपर वाले या पहले विकृत स्वरों के लिए तथा और ऊपर वाले यानी दूसरे विकृत स्वरों के लिए 'उ' हुआ। मेल या थाट में स्वर क्रमानुसार रखे जाते हैं, अर्थात् ऊँचे स्वर के बाद कोई नीचा स्वर नहीं आ सकता भी क्रमशः एक दूसरे से बड़े हैं, अतः कहीं भी बड़े स्वर के बाद छोटे स्वर का प्रयोग नहीं हो सकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। यदि ऐसा किया जाए तो थाट के स्वरों का क्रम भङ्ग हो जाएगा। आगे इन 72 मेलों को बनाने की विधि दी जा रही हैः–

पूर्वांग				उत्तरांग			
1- सा	रे	रे	म	प	ध	ध	सां
2- सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
3- सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
4- सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
5- सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
6- सा	ग	ग	म	प	नि	नि	सां

पूर्वांग के प्रत्येक अर्धमेल के साथ उत्तरांग के सभी छहों अर्धमेलों को क्रमानुसार मिलाने पर छह पूर्णमेल तैयार होंगे। इसी प्रकार क्रमशः दूसरे, तीसरे, चौथे आदि के प्रत्येक पूर्वांग के साथ उत्तरांग के अर्धमेलों को जोड़ने से (6 x 6=)36 पूर्णमेल तैयार हो जाएँगे। इन सभी मेलों में 'शुद्ध-मध्यम' है, अब यदि 'शुद्ध- मध्यम' के स्थान पर 'तीव्र-मध्यम' कर दिया जाए तो पुनः 36 और नवीन मेल तैयार हो जाएँगे। अतः इस प्रकार कुल (36 + 36 =) 72 मेल तैयार हो सकेंगे।

हिन्दुस्तानी संगीत की दृष्टि से पूर्वांग के प्रथम-क्रम में गांधार नहीं है और छठे क्रम में ऋषभ नहीं है। इसी प्रकार उत्तरांग के प्रथम-क्रम में निषाद नहीं है और छठे क्रम में धैवत नहीं है। इस शंका का समाधान यह है कि पं. व्यंकटमखी के 12 स्वर हमारे 12 स्वरों के समान नहीं थे। व्यंकटमखी ने थाट को सम्पूर्ण करने हेतु कुछ स्वरों के काल्पनिक नाम दिए थे जो इस प्रकार हैं :

हिन्दुस्तानी पूर्वार्द्ध स्वर-नाम				व्यंकटमखी के काल्पनिक-नाम			
1. सा	रे	रे	म	1-सा	रा	गा	मा
2. सा	रे	ग	म	2-सा	रा	गि	मा
3. सा	रे	ग	म	3-सा	रा	गु	मा
4. सा	रे	ग	म	4-सा	रि	गि	मा
5. सा	रे	ग	म	5-सा	रि	गु	मा
6. सा	ग	ग	म	6-सा	रु	गु	मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दुस्तानी उत्तरार्द्ध स्वर नाम	व्यंकटमखी के काल्पनिक नाम
1. प <u>ध</u> ध सां	1-प धा ना सा
2. प <u>ध</u> <u>नि</u> सां	2-प धा नि सा
3. प <u>ध</u> नि सां	3-प धा नु सा
4. प ध <u>नि</u> सां	4-प धि नि सा
5. प ध नि सां	5-प धि नु सा
6. प <u>नि</u> नि सां	6-प धु नु सा

आगे कुछ उदाहरणों से कटपयादि सिद्धान्त को स्पष्ट किया जा रहा है।

(1) मेचकल्याण की 65 संख्या में से 36 घटाने पर 29 प्राप्त हुआ। अब छह का पहाड़ा चार बार पढ़ने पर 24 हुआ जिसका अर्थ है कि पूर्वांग के चार वर्ग पूरे हुए परन्तु 29 की संख्या प्राप्त करने के लिए छह का पहाड़ा पाँच बार पढ़ते हैं तो 30 आता है और उसमें 29 की संख्या समाहित है इसलिए यह पूर्वांग का पाँचवाँ सा रे ग म का वर्ग हुआ। अब 24 से आगे 29 तक गिनने पर भी पाँच ही प्राप्त हुआ जो प ध नि सां है अतः स्पष्ट हुआ कि पूर्वांग और उत्तरांग में बिलावल के स्वर प्राप्त हुए। चूँकि 65 में से 36 घटाया गया था इसलिए यहाँ बिलावल के शुद्ध-मध्यम के स्थान पर तीव्र-मध्यम हुआ, यही 'मेचकल्याण' के स्वर हैं।

दूसरा उदाहरणः- माया-मालवगौल को देखें। 'म' पवर्ग का पाँचवाँ अक्षर है जिसे इकाई में रखेंगे और 'य' तो पहला ही है जिसे दहाई में रखने पर 15 संख्या प्राप्त हुई। अब छह का तीन बार पहाड़ा पढ़ते हैं तो 18 प्राप्त होता है जिसमें 15 संख्या समाहित है। अतः पूर्वांग का तीसरा यानी भैरव अर्थात् कोमल-ऋषभ, शुद्ध-गांधार और शुद्ध-मध्यम प्राप्त हुए। उत्तरांग के लिए दूसरे वर्ग के बाद 13 से 15 तक गिनते हैं तो क्रम संख्या 3 हुई अर्थात् कोमल-धैवत और शुद्ध-निषाद प्राप्त होते हैं। इस प्रकार माया मालवगौल के स्वर भैरव के हुए।

तीसरा उदाहरणः- इसमें शुभपन्तु-वराली को देखते हैं। 'य' से गिनने पर 'श' पाँचवाँ अक्षर है, 'प' से गिनने पर 'भ' चौथा है अतः अंकानाम् वामतो-गतिः के अनुसार 45 संख्या प्राप्त हुई। चूँकि 36 से 45 अधिक है अतः इसमें से 36 घटाना होगा। जिससे संख्या 9 प्राप्त हुई। यह संख्या छह के पहाड़े में दूसरे क्रम पर प्राप्त होती है अतः पूर्वांग में दूसरा क्रम सा <u>रे</u> <u>ग</u> म होगा तथा 7 से गिनने पर 9 तीसरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रम पर आता है अर्थात् उत्तरांग में तीसरा यानी भैरव होगा। अब चूँकि 45 में से 36 घटाया गया है अतः भैरवी में तीव्र-मध्यम लगाना होगा और उत्तरांग में भैरव अर्थात् कुल मिलाकर तोड़ी के स्वर (सा रे॒ ग॒ मं प ध॒ नि) शुभपन्तुवराली के हुए।

आगे स्वर और नामों के साथ 72 मेलों की सारिणी दी जा रही है-

सारिणी-चक्र

चक्र-1

क्रमांक	पूर्व मेल 'म'	स्वर प्रबन्ध	उत्तरमेल 'मं'	क्रमांक
1	कनकांगी	सा रे॒ रे म (मं) प ध॒ ध सां	सालग	37
2	रत्नांगी	सा रे॒ रे म (मं) प ध॒ नि॒ सां	जलार्णव	38
3	गानमूर्ति	सा रे॒ रे म (मं) प ध॒ नि सां	झलवराड़ी	39
4	वनस्पति	सा रे॒ रे म (मं) प ध नि॒ सां	नवीनतम	40
5	मानवती	सा रे॒ रे म (मं) प ध नि सां	पावनी	41
6	तानरूपि	सा रे॒ रे म (मं) प नि॒ नि सां	रघुप्रिया	42

चक्र-2

क्रमांक	पूर्व मेल 'म'	स्वर प्रबन्ध	उत्तरमेल 'मं'	क्रमांक
7	सेनावती	स रे॒ ग॒ म (मं) प ध॒ ध सां	गावांबोधि	43
8	हनुमट्टोड़ी	स रे॒ ग॒ म (मं) प ध॒ नि॒ सां	भावप्रिया	44
9	धेनुक	स रे॒ ग॒ म (मं) प ध॒ नि सां	शुभपन्तुवराड़ी	45
10	नाटकप्रिया	स़ रे ग म (मं) प ध नि॒ सां	षड्विधमार्गिणी	46
11	कोकिलप्रियास	रे॒ ग॒ म (मं) प ध नि सां	सुवर्णाङ्गी	47
12	रूपावती	स रे ग म (मं) प नि नि सां	दिव्यमणि	48

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चक्र-3

क्रमांक 'म'	पूर्व मेल	स्वर प्रबन्ध	उत्तरमेल 'मं'	क्रमांक
13	गायकप्रिया	स रे ग म (मं) प ध ध सां	धवलाम्बरी	49
14	वकुलाभरण	स रे ग म (मं) प ध नि सां	नामनारायणी	50
15	मायामालवगौड़	स रे ग म (मं) प ध नि सां	कामवर्धनी	51
16	चक्रवाक	स रे ग म (मं) प ध नि सां	रामप्रिया	52
17	सूर्यकान्त	स रे ग म (मं) प ध नि सां	गमनश्रम	53
18	हाटकाम्बरी	स रे ग म (मं) प नि नि सां	विश्वम्भरी	54

चक्र-4

क्रमांक 'म'	पूर्व मेल	स्वर प्रबन्ध	उत्तरमेल 'मं'	क्रमांक
19	झंकारध्वनि	स रे ग म (मं) प ध ध सां	श्यामलांगी	55
20	नटभैरवी	स रे ग म (मं) प ध नि सां	षण्मुखप्रिया	56
21	कीरवाणी	स रे ग म (मं) प ध नि सां	सिंहेन्द्रमध्यम	57
22	खरहरप्रिया	स रे ग म (मं) प ध नि सां	हेमवती	58
23	गौरीमनोहारी	स रे ग म (मं) प ध नि सां	धर्मवती	59
24	वरुणप्रिया	स रे ग म (मं) प नि नि सां	नीतिमती	60

चक्र-5

क्रमांक 'म'	पूर्व मेल	स्वर प्रबन्ध	उत्तरमेल 'मं'	क्रमांक
25	माररञ्जनी	स रे ग म (मं) प ध ध सां	कांतामणी	61
26	चारुकेशी	स रे ग म (मं) प ध नि सां	ऋषभप्रिया	62
27	सरसांगी	स रे ग म (मं) प ध नि सां	लतांगी	63
28	हरिकाम्बोदी	स रे ग म (मं) प ध नि सां	वाचस्पति	64
29	धीरशंकराभरण	स रे ग म (मं) प ध नि सां	मेलकल्याणी	65
30	नागानन्दिनी	स रे ग म (मं) प नि नि सां	चित्राम्बरी	66

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चक्र-6

क्रमांक 'म'	पूर्व मेल	स्वर प्रबन्ध	उत्तरमेल 'मं'	क्रमांक
31	यागप्रिया	स ग ग म (मं) प ध ध सां	सुचरित्र	67
32	रागवर्धनी	स ग ग म (मं) प ध नि सां	ज्योतिस्वरूपिणी	68
33	गांगेयभूषणी	स ग ग म (मं) प ध नि सां	धातुवर्धनी	69
34	वागधीश्वरी	स ग ग म (मं) प ध नि सां	नासिकाभूषणी	70
35	शूलिनी	स ग ग म (मं) प ध नि सां	कोसल	71
36	चलनाट	स ग ग म (मं) प नि नि सां	रसिकाप्रिया	72

कर्नाटकी संगीत में मेलकर्ताओं के साथ-साथ कटपयादि संज्ञा का उपयोग सूलादि सातों तालों की जातियों के लिए के. व्ही. गिरिमाजी राव ने किया है साथ ही ताल का आकार लघु, द्रुत, अनुद्रुत को भी दीर्घ, ह्रस्व और अनुनासिक अक्षरों से स्पष्ट दर्शाया गया है उदाहरण के लिए 'गणेश वीणा' नाम ध्रुव ताल की त्रिस्र जाति का है। पहला अक्षर जाति को दर्शाता है गणेश वीणा का ग, क से गिनने पर तीन है जो कि त्रिस्र जाति का द्योतक हुआ, अगले चार अक्षर ध्रुवताल के चार विभागों को दर्शाते हैं, णे दीर्घ होने के कारण लघु, श ह्रस्व होने के कारण द्रुत, वीदीर्घ होने के कारण लघु, णा दीर्घ होने के कारण लघु हुआ।

लघु द्रुत लघु लघु

(I_3 0 I I)

अतः गणेश वीणा शब्द त्रिस्त जाति की मात्राओं वाली ध्रुवताल को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार महेश वीणा, सुरेश वीणा, धात्रीश वीणा क्रमशः खण्ड, मिस्र व संकीर्ण जाति की ध्रुवताल के सांकेतिक नाम है।

चतुरश्र च जाति के रूपक ताल का सांकेतिक नाम भारती है पहला अक्षर भ प से गिनने पर चार है जो कि चतुस्त्र जाति को दर्शाता है र ह्रस्व होने के कारण द्रुत और तो दीर्घ होने के कारण लघु का द्योतक है अतः भारती चतुस्र जाति का रूपक ताल हुआ।

द्रुत लधु

(0 I_4)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खण्ड जाति के मठताल का सांकेतिक नाम मनोविनी है। प से गिनने पर म पाचवाँ है जो जाति का सूचक है दूसरा अक्षर नो जो दीर्घ है इसलिए लघु हुआ वि ह्रस्व है इसलिए द्रुत और नी दीर्घ होने के कारण लघु है अतः मनोविनी।

लघु द्रुत लघु (I, O I)

मिश्र जाति के त्रिपुटताल का सांकेतिक नाम सुधानिधि है सुधानिधि का स, य से गिनने पर सातवाँ अक्षर है जिससे मिश्र जाति स्पष्ट होती है थ दीर्घ होने के कारण लधु नि ह्रस्व होने के कारण द्रुत और धि भी ह्स्व होने के कारण द्रुत है।

लघु द्रुत द्रुत (I, O I)

संकीर्ण जाति के झम्प ताल का नाम झशांक है क से गिनने पर झ नौ है जो संकीर्ण जाति का चिह्न है। श दीर्घ है इसलिए लधु आनुनासिक, अनुद्रुत और क ह्रस्व होने के कारण द्रुत को दर्शाता है अतः झषांक लधु अनुद्रुत द्रुत संकीर्ण जाति के 9+1+2=12 मात्रा के झंप ताल के लिए हुआ।

लघु अनुद्रुत द्रुत (I ∪ O)

आगे के. व्ही. गिरिमाजी राव द्वारा प्रदत्त 35 तालों के नाम दिये जा रहे हैं-

ताल	जाति नाम				
	त्रिस्त्र	चतुरस्त्र	खण्ड	मिश्र	संकीर्ण
ध्रुवताल	गणेशवीणा	वराहवीणा	महेशवीणा	सुरेशवीणा	धात्रीशवीणा
मठ्यताल	गोदावरी	विनोदिनी	मनोविनी	सौदामिनी	धीशालिनी
रूपकताल	गौतमी	भारती	महती	सूरती	धरित्री
झंपताल	लीलांग	वेदांग	शुभांग	छायांक	झषांक
त्रिपुटताल	गीतानुगा	वर्णानुगा	महीधरा	सुधानिधि	धात्रीधरा
अठताल	लक्ष्मीनायका	वाणीनायका	शचीनायका	सतीनायका	घात्रीनायका
एकताल	लक्ष्मी	वाणी	शचि	सती	धात्री

(भ.ता.शा.वि.पृ.171)

इस प्रकार कटपयादि संज्ञा से 72 मेलकर्ताओं के स्वर तथा सातों सूलादि तालों के पाँचों जातियों का ज्ञान सुविधापूर्वक हो जाता है। हिन्दुस्तानी संगीत में इस प्रकार का चिन्तन अभी तक नहीं हुआ यदि इस दिशा में विद्वज्जन प्रयास करें तो शुभलक्षण माना जायेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छन्द और ताल में सम्बन्ध

छन्द वह लयात्मक, नियमित तथा अर्थपूर्ण वाणी है जिसमें आबद्ध होकर कोई वाक्य या वाक्यांश पद्य का रूप धारण करता है।

काव्य में जो कार्य छन्द करता है, वही कार्य संगीत में ताल द्वारा किया जाता है। छन्द व ताल दोनों ही काल या समय को मापने के पैमाने हैं। छोटे छन्द या कम मात्राओं वाले छन्द जिस प्रकार जनसाधारण को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित करते हैं ठीक उसी प्रकार संगीत का ज्ञान न रखने वालों को भी दादरा, कहरवा आदि कम मात्राओं वाली तालें लुभाती हैं। इसीलिए लोकगीत और फ़िल्मी संगीत में इन्हीं तालों का अधिकतर प्रयोग किया जाता है। बड़े छन्द या ताल का आनन्द लेने के लिए काव्य या संगीत के ज्ञान की आवश्यकता होती है।

देश-काल अनन्त है। इसे समझने के लिए, खण्डों में विभाजित करके समझा जा सकता है। देश भूगोल का विषय है और काल इतिहास का। काल या समय की धारणा शाश्वत है इसीलिए काल अनादि-अनन्त है। काल के खण्ड क्रमशः शताब्दी, वर्ष, दिन, घण्टा, मिनट, सेकेण्ड आदि हैं। इन्हें और अधिक छोटा करने पर क्लिष्टता बढ़ती जाएगी। संगीत की मात्रा हो या काव्य की मात्रा, दोनों लघु और गुरु मानी जाती हैं। इन्हीं के भिन्न-भिन्न समायोजन से काव्य में छन्द बनते हैं और संगीत में तालों की रचना होती है। अब यहाँ लघु और गुरु पर कुछ विचार किया जा रहा है:-

लघुः- काव्य और संगीत दोनों में लघु सबसे छोटी इकाई है इस कारण दोनों में ही लघु को एक मात्रा माना जाता है। सामान्य बोल-चाल में जितना समय पाँच ह्रस्व अक्षर बोलने में लगता है, वह संगीत में एक मात्रा माना जाता है (सं.र.-3,पृ.-8) शार्ङ्गदेव के अनुसार-

"पंञ्चलध्वक्षरोच्चारमिता माद्द कथ्यते।" (सं.र.-5,श्लो.-16) घड़ी के अनुसार देखा जाए तो यह एक सेकेण्ड के लगभग बराबर होता है जो कि लघु कहलाता है। 'अ' 'इ' 'उ' स्वर ह्रस्व होते हैं। जिस व्यञ्जन में ये लग जाते हैं वे ह्रस्व कहलाते हैं। जैसे- 'सुरपुर', इस शब्द में सभी ह्रस्व अक्षर हैं इसलिए ये भाषा के लघु माने जाएँगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरुः- सभी दीर्घ अक्षर गुरु होते हैं। इनके अतिरिक्त यदि आधा अक्षर या संयुक्त अक्षर किसी ह्रस्व के आगे हो तो वह ह्रस्व भी गुरु हो जाएगा, जैसे- सर्ववित्, उत्तम, सुन्दर आदि। विसर्ग वाला अक्षर भी गुरु ही होता है, जैसे- अतः, स्वतः आदि।

भाषा में लघु या गुरु ये दो ही इकाइयाँ होती हैं। संगीत में लघु, गुरु के अतिरिक्त प्लुत बड़ा और द्रुत तथा अनुद्रुत छोटे अन्तराल या मात्रा भाग माने जाते हैं।

संगीत में लघु-गुरु की अवधारणाः- संगीत में प्रयुक्त होने वाली मात्रा लघु मानी गई, जो काल के अनुसार छन्द के लघु से पाँच गुना बड़ी है। गुरु उसका दुगना होता है। भरत व शार्ङ्गदेव ने इन दो के अतिरिक्त प्लुत को भी मार्ग तालों में माना है। प्लुत का मान तीन लघु या डेढ़ गुरु के बराबर होता है। पाणिनि एवं भरत ने तो भाषा में भी तीन प्रकार के अक्षर कहे हैं- लघु, गुरु व प्लुत ।

ह्रस्वं दीर्घं प्लुतञ्चैव, त्रिविधञ्चाक्षरं स्मृतम्।

(ना.शा.2,अ.14,श्लो-103)

किन्तु आगे चलकर और किसी ने प्लुत को भाषा में स्वीकार नहीं किया। भाषा के लघु से संगीत का लघु पाँच गुना अधिक क्यों है, इस पर विचार करना आवश्यक है। संगीत का 'लघु' ताल से सम्बन्ध रखता है। ताल, बिना क्रिया के नहीं दिखाई जा सकती। क्रिया हाथ से करनी होती है। हाथ में क्रिया करने की गति जिह्वा की तुलना में कहीं कम है। जिह्वा जितनी जल्दी चल सकती है हाथ उससे कहीं अधिक समय लेता है। अतः काल की दृष्टि से संगीत का लघु भाषा के लघु से अधिक लम्बा हुआ। दूसरा कारण संगीत में स्वर की प्रधानता है। किसी स्वर को लम्बा करके ही उसका आनन्द लिया जा सकता है। इसीलिए जब किसी छन्द को ताल-बद्ध करते हैं तो अक्षरों के कर्षण या लम्बा करने की प्रथा है। यहाँ भी यह ध्यान रखा जाता है कि किसी लघु अक्षर का कर्षण न करके गुरु अक्षर को ही लम्बा किया जाए ताकि यथा सम्भव छन्द से सम्बन्ध रखा जा सके।

छन्द भाषा से सम्बन्धित है, ताल संगीत से। भाषा वर्णात्मक है, संगीत नादात्मक। भाषा में बुद्धि का योगदान है। अतः कृत्रिमता प्रधान होने के कारण वैचित्र्य और क्लिष्टता उत्पन्न करना बुद्धि का विषय है। मुख्य उद्देश्य तो आनन्द की प्राप्ति ही है, लेकिन कभी-कभी अधिक क्लिष्टता विषय को समझने में बाधक होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत के नादात्मक होने से इसका सीधा सम्बन्ध हृदय से है। इसमें कृत्रिमता हावी नहीं होने पाती है। फिर भी संगीत में बुद्धि का चमत्कार कठिन लयकारियों, जटिल तानों व तिहाईयों आदि के रूप में संगीत में भी दृष्टिगोचर होता है, जो सहज आनन्द से हट कर केवल बुद्धि-चातुर्य का प्रदर्शन मात्र रह जाता है।

भरत, काल को छन्द एवं नाद को शब्द कहते हैं। दोनों एक दूसरे से ऐसे सम्बद्ध हैं जैसे एक सिक्के के दो पहलू। काल को खण्डों में विभक्त करके देखा जा सकता है। खण्डों में विभक्त करने के लिए कोई क्रिया करनी होगी। क्रिया आघात से होगी जिससे शब्द या नाद उत्पन्न होगा। अब नाद पर विचार करें तो स्पष्ट है कि नाद या स्वर उत्पन्न करने के लिए वाद्य का तार हो, या तालवाद्य का चर्म दोनों में ही कम्पन या आंदोलन होंगे। आंदोलन जब निरन्तरता या समान गति से होगा तभी स्वर उत्पन्न होता है। गति का सम्बन्ध लय से और लय का सीधा सम्बन्ध काल से है अतः काल और स्वर, छन्द व शब्द एक दूसरे से पृथक् नहीं हो सकते। नाट्य-शास्त्र में भी कहा गया है:-

'छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न च्छन्दश्शब्दवर्जितम्'

(ना.शा.2,अ.14,श्लो-47)

अर्थात् न कोई शब्द छन्दों से हीन है और न कोई छन्द शब्दों से रहित है।

जिस प्रकार स्वर का उद्देश्य आनन्द देना है, उसी प्रकार छन्द का उद्देश्य भी आनन्दोत्पत्ति ही है। बल्कि छन्द की अनुभूति के लिए तो किसी प्रकार के विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। ढोल, ताशे आदि के बजने पर जनसाधारण नाच उठता है। इसका रहस्य छन्द की सहजता ही है। छन्द जितना छोटा होता है, उतना ही जनसाधारण को अधिक प्रभावित करता है। वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता आदि लम्बे छन्दों में आनन्द प्राप्ति के लिए छन्द ज्ञान की आवश्यकता होती है। छोटे छन्दों का यदि पर्याप्त ज्ञान न भी हो तो भी वे रञ्जकता में सहायक होते हैं। ठीक इसी प्रकार संगीत में जितनी बड़ी तालें हैं यथा-झूमरा, तिलवाड़ा, आड़ा चौताल, धमार, लक्ष्मी, ब्रह्म आदि के लिए तो विधिवत् ज्ञान ही आनन्द में सहायक होता है, परन्तु कहरवा, दादरा, रूपक आदि संक्षिप्त तालों के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। छोटे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छन्दों की भाँति ये भी रञ्जकता में सहायक सिद्ध होते हैं। छन्द दो प्रकार के होते हैं:- वार्णिक और मात्रिक। पिंगलाचार्य ने वार्णिक छन्दों को वृत्त तथा मात्रिक को जाति की संज्ञा दी है।

वार्णिक छन्दः- जो छन्द यगण, मगण आदि गणों पर आधारित हैं या इन गणों के विभिन्न समायोजनों से बनते हैं वे वर्णात्मक छन्द कहलाते हैं। वार्णिक छन्दों को सहजता से स्मरण करने के लिए विद्वानों ने एक सूत्र का प्रतिपादन किया है जिससे आठों गणों के गुरु-लघु का क्रम स्पष्ट हो जाता है। सूत्र इस प्रकार है:-

य मा ता रा ज भा न स ल गा

। ऽ ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ

तीन-तीन अक्षरों से गण बनते हैं, जैसे:-

यगण - यमाता (। ऽ ऽ)
मगण - मातारा (ऽ ऽ ऽ)
तगण - ताराज (ऽ ऽ ।)
रगण - राजभा (ऽ । ऽ)
जगण - जभान (। ऽ ।)
भगण - भानस (ऽ । ।)
नगण - नसल (। । ।)
सगण - सलगा (। । ऽ)

अन्तिम गण सगण (सलगा-।।ऽ) है शेष 'ल गा', लघु और गुरु के द्योतक हैं, जो छन्द की पूर्ति में सहायक होते हैं, जैसे उषा छन्द में 'यल' कहा गया है। यहाँ 'य' का अर्थ है यगण (यमाता-।ऽऽ) और 'ल' से तात्पर्य है लघु। इसी प्रकार शिखरणी में यमनसभलागः सूत्र है जिसमें क्रमशः यमनसभलागः सूत्र है जिसमें यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरु हैं (यतनसभनागः) मालनी में दो नगण एक मगण और दो यगण (नौ मयौ), वसन्ततिलका में क्रमशः तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु हैं (त्भौ ज्जगौ गः) तथा भुजंगप्रयात में चार बार यगण का प्रयोग होता है।

मात्रिक छन्दः- मात्रिक छन्द में वर्णों के क्रम का नहीं केवल मात्राओं का ही ध्यान रखा जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोहा सोरठा, चौपाई, छप्पय, रोला आदि मात्रिक छन्द हैं। दोहे में प्रथम और तृतीय पंक्ति में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं और दूसरी व चौथी पंक्ति में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं। जबकि सोरठा इसका उल्टा होता है।

उदाहरणार्थः-

सि रि गु रु च र ण स रो ज र ज
। । । । । । । । S । । । =13 मात्राएँ

नि ज म न मु कु र सु धा र
। । । । । । । । S । =11 मात्राएँ

ब र नौ र घु ब र वि म ल ज स
। । S । । । । । । । । । =13 मात्राएँ

जो दा य क फ ल चा र
S S । । । । S । =11 मात्राएँ

चौपाई की प्रत्येक पंक्ति में सोलह मात्राएँ होती हैं।

उदाहरणार्थः-

मं ग ल भ व न अ मं ग ल हा री।
S । । । । । । S । । S S =16 मात्राएँ

द्र व हु सु द स र थ अ जि र बि हा री
। । । । । । । । । । । । । S S =16 मात्राएँ

छन्द के चार चरणः- किसी भी छन्द के चार चरण या पाद होते हैं। चरण या पाद का सम्बन्ध पैर से है। पैर का कार्य चलना है। इसीलिए कहा जाता है कि छन्द चलता है। छन्द में गति होती है। छन्दोबद्ध रचना स्मरण करने में गद्य की अपेक्षा कहीं अधिक सरल एवं प्रभावी होती है। समग्र भारतीय-साहित्य छन्दोबद्ध है। यह अन्यत्र दुर्लभ है।

छन्दोबद्ध रचना स्थायी होती है, क्योंकि छन्दोबद्ध रचना में अशुद्धि होने पर उसके आकार-प्रकार में अन्तर होने के कारण तत्काल अनुभूति में आ जाता है, अतः उसे छन्द की सहायता से सुधारा जा सकता है। यही कारण है कि ऐसी छन्दोबद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रचनाएँ लम्बे अन्तराल तक अनेक उथल-पुथल होने के उपरान्त भी ज्यों की त्यों बिना परिवर्तन के स्थायी बनी रहती हैं। छन्द और ताल में यति का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। छन्द में पाद या चरण में होने वाली अल्पविश्रान्ति जो मात्रा अथवा वर्ण के नियत संख्या समूह पर आती है, यति कहलाती है। दूसरे शब्दों में यति का अर्थ विराम है। यह प्रायः पाद के अन्त में होती है। लम्बे छन्दों में मध्य में भी यति का विधान है। जैसे-मन्दाक्रान्ता छन्द के **"शान्ताकारम् भुजगशयनम् पद्मनाभम् सुरेशम्"** में चौथे, दसवें और पाद के अन्त में यति है। ताल में (विलम्बित, मध्य, द्रुत) लय के प्रयोग को यति कहा गया है, जिनके नाम समा, स्त्रोतोगता और गोपुच्छा है। संगीतरत्नाकर के अनुसार,

"लयप्रवृत्तिनियमो यतिरित्यीभधीयते"

छन्दों का तालों से सम्बन्धः- छन्दों का तालों से दो प्रकार का सम्बन्ध देखा जाता है। प्रथमः-छन्द और ताल में समान मात्राओं का होना और द्वितीयः- किसी ताल में बजने वाले बोलों को किसी छन्द की बनावट देकर उस छन्द का आभास दिलाना।

प्रथम प्रकारः- (क) मुख्य सम्बन्ध छन्दों का ताल की मात्राओं की समानता को लेकर ही होता है। जैसे- मन्थान, भुजंगप्रयात आदि छन्द झपताल के समकक्ष होते हैं। हरिगीतिका अट्ठाइस मात्रा का छन्द है जिसमें तीन, दो, दो (सात मात्रा) के चार खण्ड बनते हैं। रूपक और तीव्रा ताल में भी तीन, दो, दो के विभाग हैं जो समान होने के कारण हरिगीतिका के पूर्ण अनुकूल हैं। यद्यपि धमार में पाँच, दो, तीन, चार के विभाग होते हैं परन्तु बल 'तीन-दो-दो', 'तीन-दो-दो' पर ही पड़ता है, इसलिए हरिगीतिका-छन्द धमार के भी अनुकूल है। आगे दादरा, कहरवा, रूपक, तीव्रा, धमार, झपताल, तीनताल में समान मात्रा वाले छन्दों को दिया जा रहा हैः-

दादराः- दादरा ताल में 6 मात्राएँ हैं (भा.सं.ता.रू.वि.पृ.238) और इसमें 3-3 मात्राओं के दो खण्ड हैं। प्रत्येक खण्ड की पहली मात्रा पर विशेष बल रहता है। इसलिए तिस्र-गति अत्यन्त मुखरित होती है। दादरा ताल में तिस्र-गति का कारण उसके प्रत्येक खण्ड में 3-3 मात्राओं का होना है। इसके विपरीत यदि 2-2 मात्राओं के तीन खण्ड किए जाएँ तो तिस्र-गति नहीं रहती है। इसलिए तीन-तीन मात्राओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारिणी–क (दादरा ताल)

सूत्र – य मा ता रा ज भा न स ल गा

छन्द का नाम	उषा	कला	सुधी	करता	प्रमाणिका	समानिका	पञ्चचामर	धारी
लक्षण	य ल	भ ग	ज ग	न ल ग	ज र ल ग	र ज ग ल	ज र ज र ज ग	र ल
लक्षण का स्पष्टीकरण	यमाताल	भानसगा	जभानगा	नसललगा	जमानराजभालगा	राजभाजभानगाल	जभानराजभाजभानराजभाजभानगा	राजभाल
लघु–गुरु का क्रम	I S S I	S I I S	I S I S I	I I I I S	S I S I S I S	S I S I S I S I	I S I S I S I S I S I S I S I S	S I S I
मात्राओं की संख्या	6	6	6	6	12	12	24	6

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के खण्डों और बल वाले छन्द इस ताल के अनुकूल हैं। प्रतिष्ठा जाति (4 अक्षर– उषा, कला, सुधी), सुप्रतिष्ठा (5 अक्षर– करता), अनुष्टुप् (8 अक्षर– प्रमाणिका, समानिका)।

सारिणी-(क) में देखने से स्पष्ट है कि सभी वृत्तों में 3-3 के खण्ड बनते हैं इसलिए वे दादरा के अनुकूल हैं। लेकिन दादरा में पहली और चौथी मात्रा पर जो स्वाभाविक अधिक बल है, वह उन्हीं वृत्तों में है जिनमें लघु, गुरु (। ऽ) की आवृत्ति है, क्योंकि लघु के बाद गुरु आने से गुरु पर सहज रूप से बल आ जाता है इसलिए समानिका, पञ्चचामर और धारी, दादरा की प्रकृति के अधिक अनुकूल हैं। पञ्चचामर में शुरू की एक मात्रा छोड़ कर अर्थात् लघु के बाद गुरु से ताल प्रारम्भ होगी।

कहरवाः– इस ताल में 4-4 मात्राओं के खण्ड से 8 मात्राएँ होती हैं किन्तु इसके ठेके में पहली मात्रा के अतिरिक्त चौथी और सातवीं मात्रा पर बल रहता है, पाँचवीं मात्रा पर नहीं। जैसेः- (धा) गे न (ति) न क (धिं) ऽ में गोले में बन्द बोलों पर बल आता है। वास्तव में बल के अनुसार इसमें 3, 3, 2 के खण्ड बनते हैं। इस ताल की गति चञ्चल और उछलती सी है। हरि, कन्या, शशिवदना, चपला आदि छन्द कहरवा ताल के अनुकूल हैं जो निम्न सारिणी से स्पष्ट हैः–

सारिणी-ख (कहरवा)

सूत्र- य मा ता रा ज भा न स ल गा

छन्द का नाम	हरि	कन्या	शशिवदना	चपला
लक्षण	न ल	म ग	न य	न न ग
लक्षण का स्पष्टीकरण	न स ल ल	मा ता रा गा	न स ल य मा ता	न स ल न स ल गा
लघु-गुरु का क्रम	। । । ।	ऽ ऽ ऽ ऽ	। । । । ऽ ऽ	। । । । । । ऽ
मात्राओं की संख्या	4	8	8	8

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेकिन 3, 3, 2 के खण्डों के अनुसार न न ग लक्षण वाला द्रुत-गति अथवा चपला-छन्द इसके अधिक निकट होगा। कहरवा में 4-4 मात्राओं के खण्ड रखें तो चतुर्मात्रिक खण्ड वाले सभी छन्द आ जाएँगे।

तीव्रा, रूपक और धमारः- इनमें से प्रथम दो तीव्रा और रूपक के 3, 2, 2 के विभाग हैं, धमार के 5, 2, 3, 4 के विभाग हैं पर बल 3, 2, 2, 3, 2, 2 पर ही होता है। क्रीड़ा, रंगी, मात्रिक-गीतिका, हरिगीतिका के लिए ये ताल अनुकूल हैं।

सारिणी-ग (तीव्रा, रूपक और धमार)

सूत्रः- य मा ता रा ज भा न स ल गा

छन्द का नाम	क्रीडा	रंगी
लक्षण	य ग	र ग
लक्षण का स्पष्टीकरण	य मा ता गा	रा ज भा गा
लघु-गुरु का क्रम	। ऽ ऽ ऽ	ऽ । ऽ ऽ
मात्राओं की संख्या	7	7

इनमें से हरिगीतिका की प्रथम 2 मात्रायें छोड़ कर ताल को शुरू किया जाए और गीतिका के अन्त में 2 मात्रा को लम्बा कर लिया जाए तो इन दोनों छन्दों में तथा रंगी, वृत्त में ये छन्द अत्यधिक अनुकूल होते हैं।

सादरा अथवा झपतालः- सादरा में 2, 3 के अनुसार तथा झपताल में 2, 3, 2, 3 के क्रम से 10 मात्राएँ होती हैं। इनमें भी प्रत्येक विभाग की पहली मात्रा पर अधिक बल होता है। मन्थान, भुजंगप्रयात, महामोदकारी, स्रग्विणी तथा सादर-वृत्तों के लिए ये ताल उपयुक्त हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारिणी-घ (झपताल)

छन्द का नाम	मन्थान	भुजगंप्रयात्	महामोदकारी	स्रिग्विणी	सादर
लक्षण	तत	यययय	यययययय	रररर	सनगाल
लक्षण का स्पष्टीकरण	ताराजताराज	यमातायमाता यमातायमाता	यमातायमाता यमातायमाता यमातायमाता	राजभाराजभा राजभाराजभा	सलगान सलगाल
लघु-गुरु का क्रम	SS।SS।	।SS।SS ।SS।SS	।SS।SS।SS ।SS।SS।SS	S।SS।S S।SS।S	।।S।।।S। ।SS।SS
मात्राओं की संख्या	10	20	30	20	10

इन सभी में पाँच-पाँच (2+3) मात्राओं के विभाग बनते हैं। सादर-छन्द 19वीं सदी के अन्त में हुए सूदन-कवि की देन है। सम्भव है इसी सादर-छन्द के आधार पर सादरा-ताल की रचना हुई हो।

त्रिताल:- (क) 4-4-4-4 के मात्रा खण्डों के अनुसार इसमें कुल 16 मात्राएँ होती हैं। समान मात्रिक खण्ड होने, पर्याप्त लम्बा होने तथा द्रुत, मध्य, तथा विलम्बित तीनों लयों में प्रयोग क्षमता के कारण इसमें चौपाई, दोधक तोटक, मोदक, सवैया और इसी तरह के अन्य छन्द जिनमें चार-चार के समूह बनते हों, तीन ताल के अनुकूल हैं।

(ख) समान मात्रा से भी अधिक ध्यान देने वाला तथ्य ताल के विभागों का है। छन्द के समान मात्रा वाले अनेक ताल शास्त्रीय-संगीत में प्रयुक्त होते हैं। जैसे-चौदह मात्रा वाली झूमरा, आड़ाचारताल, धमार, दीपचन्दी। इनकी मात्रा समान है पर इनके विभागों में अन्तर है। दीपचन्दी, झूमरा में 3, 4, 3, 4 के विभाग हैं तो आड़ाचारताल में 2, 2 के विभाग हैं। धमार में 3, 2, 2 पर बल होता है पर विभाग तो 5, 2, 3, 4 के हैं।

(ग) ताल के विभागों को समान करने के लिए छन्द की कितनी मात्राओं को छोड़ कर आरम्भ किया जाए यह भी विचारणीय बिन्दु है। भुजगंप्रयात् में यदि एक लघु के पश्चात् आरम्भ किया जाए तो झपताल का 2, 3, 2, 3 विभागों से सामञ्जस्य स्थापित हो जाता है। उदाहरणार्थ:-

'भवानी दयानी' भैरवी-राग की झपताल में प्रसिद्ध बन्दिश है जो भुजगंयात् छन्द की कही जा सकती है। इस बन्दिश की प्रथम दो पंक्तियाँ भुजगंयात् छन्द के पूर्ण अनुकूल हैं:-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ वाऽ नीऽ, द बाऽ नीऽ, म हाऽ वाऽ, क वाऽ नीऽ
य माऽ ताऽ, य माऽ ताऽ, य माऽ ताऽ, य माऽ ताऽ
। ऽ ऽ, । ऽ ऽ, । ऽ ऽ, । ऽ ऽ

(घ) मात्रा पूर्ति के लिए छन्द की मात्राओं में कुछ वृद्धि करके ताल से सामञ्जस्य स्थापित करना होता है। समान छन्द की मात्राओं की तालें बहुत ही कम होती हैं अतः छन्द की मात्रा को तो घटा नहीं सकते पर बढ़ाने की परम्परा अधिकतर बन्दिशों में देखी जाती है। कर्षण या लम्बा करते समय यह ध्यान रखना होता है कि किसी लघु अक्षर को लम्बा न किया जाए बल्कि गुरु अक्षर की मात्राओं को सुविधानुसार बढ़ा लिया जाय।

द्वितीय प्रकारः- किसी ताल में बजने वाले बोलों को किसी छन्द की बनावट देकर उस छन्द का आभास दिलानाः-

क-(1) किसी ताल में ताल-वादक या नर्तक लयकारियों का प्रदर्शन करते समय विभिन्न छन्दों का आभास दिलाते हुए एक मात्रा में छन्द के अनुकूल मात्राओं को दिखाता है जैसे यदि तीन-ताल मुख्य ताल है और उसमें झपताल दिखानी है तो तीन-ताल की प्रत्येक मात्रा अथवा लय बढ़ाकर तीन ताल के प्रत्येक विभाग में दो-तीन (कुल पाँच) बोलों को एक मात्रा में प्रदर्शित करेगा, जैसेः-

धागेधिनग ताकेतिनक ताकेधिनग धागेधिनग

(2) तीन ताल में ही रूपक की लयकारी इस प्रकार होगीः-

धा तिट धा धा तिट ता तिट धा धा तिट
धा तिट धा धा तिट ता तिट धा धा तिट

ख-(1) सितार, सरोद, सन्तूर वादक आदि लयकारी दिखाते समय तीन ताल में झपताल दिखाने के लिए स्वरों के दो-तीन, दो-तीन के समूह बनाते हैं, जैसेः-

सारेसारेग, रेगरेगम, गमगमप, मपमपध।

(2) यदि रूपक की लयकारी दिखानी हो तोः-

सारेगसारेगम, रेगमरेगमप, गमपगमपध, मपधमपधनि होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लयकारी

समान चाल को लय कहते हैं। दो भिन्न प्रकार की संख्याओं को समान रूप से विभाजित करना लयकारी है। दूसरे शब्दों में, निश्चित मात्राओं में उससे कम या अधिक मात्राओं को समान रूप से विभाजित करके बोलना, गाना, बजाना या लिखना लयकारी कहलाती है। कुछ विद्वानों के अनुसार समान मात्राओं को समान बोलों या अंकों को कहना, गाना-बजाना या लिखना भी लयकारी है। पर हमारे विचार से समान मात्राओं को समान मात्राओं में कहना या लिखना तो बराबर की ठाह की (बराबर) लय हुई और इसे लयकारी नहीं कहना चाहिए। जैसे समान आंदोलनों वाले दो स्वरों (सा-सा, म-म आदि) को संवाद नहीं कहा जाता बल्कि दो अलग-अलग स्वरों 'सा-म', 'सा-प' आदि को ही स्वरान्तर कहा जाता है। वैसे पश्चिमी संगीत में समान आंदोलनों के दो स्वरों में भी 'यूनिसन-इण्टरवल' कहा जाता है।

लयकारी दो प्रकार की हो सकती हैं:– (1) सरल लयकारी, (2) कठिन लयकारी

1. **सरल लयकारीः–** सरल लयकारी वह है जिसमें एक मात्रा में पूर्णांक बोले या लिखे जाएँ। जैसे दो गुन, तीन गुन, चार गुन आदि। इसे सरल लयकारी इसलिये कहा जा सकता है कि प्रत्येक मात्रा में पूरे-पूरे अक्षर या बोल होते हैं। गाने-बजाने में छोटे ख़याल या द्रुत-गत में दो गुन की तानें इसी लयकारी की होती हैं। ध्रुपद में दुगुन, तिगुन, चौगुन, छह गुन आदि की लयकारी की जाती है। इसे सरल लयकारी कहने का एक कारण और भी है कि प्रत्येक मात्रा पर कोई न कोई बोल या अक्षर अवश्य आता है।

2. **जटिल लयकारीः–** इस लयकारी में भिन्नांक में लिखी जाने वाली संख्याएँ समान अन्तर से आती हैं, जैसे सवा गुन, डेढ़ गुन, पौने दो गुन, सवा दो गुन आदि। वैसे कितनी भी गुन की लयकारी हो सकती है, जैसे साढ़े तीन गुन, सवा चार गुन, पौने पाँच गुन आदि। लेकिन सामान्यतया पाँच प्रकार की लयकारियाँ प्रयोग में आती हैं। यही ताल की लयकारियाँ हैं, जो ताल की जातियाँ–त्रयश्र, चतुरश्र, खण्ड, मिश्र और संकीर्ण नामों से जानी जाती हैं। इनमें–त्रयश्र–पौन गुन, चतुरश्र–बराबर, खण्ड–सवा गुन, मिश्र–पौने दो गुन और संकीर्ण–सवा दो गुन होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सरल लयकारी और कठिन भिन्नांक लयकारियाँ पुनः दो-दो प्रकार की हो सकती हैं। पहली निश्चित मात्रा में इससे अधिक मात्राओं को दिखाने वाली और दूसरी निश्चित मात्राओं में उससे कम मात्राओं को दिखाने वाली लयकारी जैसे सरल के अन्तर्गत दो गुना तीन गुन आदि और आधी गुन चौथाई गुन आदि तथा कठिन लयकारी के अन्तर्गत सवा गुन, डेढ़ गुन आदि और पौन गुन और दो तिहाई गुन आदि होंगी।

सरल लयकारियाँ लिखने की विधिः-

1-प्रथम विधि- सरल लयकारियों को लिखने के लिए जिस गुन की लयकारी लिखनी हो उस ताल के ठेके को उतनी बार एक साथ लिख लें। जो लयकारी कही गई हो उतने-उतने बोलों को एक मात्रा में बन्द कर दें। मान लीजिए- झपताल की तिगुन लिखनी है तो झपताल के ठेके को तीन बार लिख लें तो (10 x 3=)30 बोल हुए और तीन-तीन बोलों को एक अर्ध-चन्द्र में बन्द कर दें। उन्हें तीन-तीन बन्द करने पर पुनः दस अर्ध-चन्द्र तैयार हो जाएँगे। अब उन दसों को झपताल के विभाग दो-तीन, दो-तीन के अनुसार बनाकर ताल के चिह्न लगा दें, यह झपताल की तिगुन हो गई जैसेः-

झपताल की तिगुन

1	2		3	4	5		
धी ना धी	धी ना ती	|	ना धी धी	ना धी ना	धी धी ना	|	
X			2				
6	7		8	9	10		1
ती ना धी	धी ना धी	|	ना धी धी	ना ती ना	धी धी ना	|	धी
0			3				x

इसी प्रकार मान लें कि एक ताल की चौगुन लिखनी है तो एकताल के ठेके को चार बार लिख लें जोकि (12 X4=)48 बोल हो जाएँगे। ध्यान रहे जिन मात्राओं में पहले से ही एक से अधिक बोल हैं जैसे एकताल की तीसरी, चौथी, नवीं, दसवीं में एक से अधिक बोल हैं। इन्हें छोटे अर्ध-चन्द्र में बन्द कर लें। अब 48 बोलों को चार-चार में पुनः बन्द कर दें, जिससे 12 अर्ध-चन्द्र बनेंगे। अब एकताल के अनुसार उनके दो-दो के विभाग बनाकर ताल के चिह्न लगाने से एकताल की चौगुन हो जाएगी। जैसेः-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकताल की चौगुन

1	2	3	
धिंधिं धागे तिरकिट	तूनाकत्ता	धागे तिरकिट धीना	
X		0	
4	5	6	
धिंधिं धागे तिरकिट	तूनाकत्ता	धागे तिरकिट धीना	
	2		
7	8	9	
धिंधिं धागे तिरकिट	तूनाकत्ता	धागे तिरकिट धीना	
0		3	
10	11	12	1
धिंधिं धागे तिरकिट	तूनाकत्ता	धागे तिरकिट धीना	धिं
	4		x

2.द्वितीय विधिः- पूछी गई ताल की मात्राओं को जितने गुन करना है, से विभाजित करके ताल की सम्पूर्ण मात्राओं में से उत्तर को घटा लें और शेष बची मात्राओं में ताल के ठेके को एक गुन में लिखें, उसके बाद ताल के सम्पूर्ण ठेके को शेष बची मात्राओं में लयकारी के अनुसार बोलों को बन्द करने से वह लयकारी एक ही आवर्तन में लिखी जा सकेगी। जैसे- यदि तीनताल में चौगुन करनी है तो तीनताल की सोलह मात्राओं को चार से विभाजित कर उत्तर चार को सोलह में से घटाएँ तो शेष बारह बचेगा।

अब बारह तक एक गुन में तीनताल के बोल लिख लें और अन्तिम चार मात्राओं की प्रत्येक मात्रा में चार-चार बोल लिखने से तीनताल की चौगुन एक आवर्तन में हो जाएगी। इस विधि में पहले दी गई विधि से कम लिखना होता है, जैसेः-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीनताल की चौगुन एक आवृत्ति में

1 2 3 4	5 6 7 8	9 10 11 12
धा धिं धिं धा	धा धिं धि धा	धा तिं तिं ता
X	2	0

13	14	15	16	1
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा	धा
3				x

जिन तालों की मात्राएँ पूरी विभक्त नहीं होतीं, उनमें कुछ कठिनाई होती हैं। उनकी विधि वही है, पर कुछ अवग्रह लगाने होंगे। जैसे मान लें झपताल की तिगुन करनी है तो $10/3$ करने पर उत्तर $3^1/_3$ प्राप्त हुआ, इसे पूरी दस मात्राओं में से घटाने पर $(10-3^1/_3=)$ $6\,^2/_3$ आया, चूँकि पूर्णांक छह है अतः छह मात्राओं तक तो एक गुन में ही लिखना होगा। सातवीं मात्रा में दो अवग्रह और एक झपताल का बोल लिख कर आगे ताल के शेष नौ बोलों को एक मात्रा में तीन-तीन लिख कर बन्द करना होगा या सातवीं मात्रा में दो अवग्रह में से प्रथम अवग्रह के स्थान पर सातवाँ बोल (ना) लिखें और आगे एक अवग्रह लगाएँ, उसके बाद झपताल के पूरे बोलों को लिखकर भी झपताल की तिगुन को एक आवर्तन में लिखा जा सकता है।

उदाहरण निम्नवत है:-

झपताल (तिगुन) एक आवृत्ति में

1 2	3 4 5	6 7
धी ना	धी धी ना	ती ऽऽधी
X	2	0

8	9	10	1
ना धी धी	ना ती ना	धी धी ना	धी
3			x

(विशेषः- ऽऽधी = नाऽधी भी हो सकता है।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जटिल लयकारियाँ लिखने की विधिः-

पहली लयकारी प्रकार में निश्चित मात्राओं में इससे कम या अधिक मात्राओं या बोलों को लिखना होता है, जैसेः- चार मात्राओं में तीन या पाँच मात्राओं में सात मात्राओं को लिखना। दूसरे प्रकार में किसी ताल को किसी अन्य ताल में लिखना होता है, जैसे झपताल को तीन ताल में या रूपक को एकताल में लिखना आदि।

वस्तुतः अंकों को या किसी ताल को दूसरी ताल में लिखना एक ही बात है। बस पहले प्रकार का दूसरे प्रकार में विस्तार हो जाता है। यदि ताल के स्थान पर उसकी मात्राओं को रख लें और गणित की भाषा में उन दोनों तालों की मात्राओं की संख्या का संक्षेप हो सके तो इसके बाद अंकों वाली स्थिति ही सामने आ जाएगी। पहले यहाँ अंकों पर विचार करते हैं।

ऐसे प्रश्नों में दो संख्याएँ होती हैं जैसे पाँच मात्राओं में चार मात्राओं को, तीन मात्राओं में चार मात्राओं को, सात मात्राओं में दस मात्राओं को लिखना आदि। दी गई दोनों संख्याओं पर विचार करने से पता चलेगा कि एक 'आधार' है, दूसरा 'आधेय'। आधार वह है जिसमें कुछ रखा जाता है और जो रखा जाता है वह आधेय होता है। जैसे व्यक्ति कुर्सी पर बैठा है तो इसमें कुर्सी आधार है और व्यक्ति आधेय। इसी प्रकार कॉपी में पैन, गिलास में पानी को समझा सकता है। इस प्रकार 'ताल-वांद्य' के साथ दिया जाने वाला लहरा आधार है और उसमें किया जाने वाला कार्य आधेय है। हाथ से हम लयकारी करते हैं तो जो हाथ से ताल दी जा रही है वह आधार है और मुँह से बोले जाने वाले बोल या लयकारी आधेय है। पूछे गए प्रश्न में भी एक संख्या आधार होगी और दूसरी आधेय। हिन्दी, संस्कृत आदि भाषाओं को सिखाते समय "कर्ता ने, कर्म को, करण से, सम्प्रदान के लिए, अपादान से अलग, सम्बन्ध का-के-की (रा-रे-री), अधिकरण में-पे-पर" पढ़ाया जाता है। इसमें सप्तमी विभक्ति के 'में', 'पे' या 'पर', चिह्न है। लयकारी के पूछे गए प्रश्न में दो संख्याएँ होती हैं उनमें से जिसके साथ 'में' है वह आधार है और दूसरी संख्या आधेय। मान लो प्रश्न है कि चार में पाँच लिखोः- यहाँ 'में' चिह्न चार के बाद है, अतः चार आधार हुआ और पाँच आधेय। यानी यदि हाथ से लयकारी करनी होगी तो हाथ से चार मात्राएँ दिखलानी होंगी तथा मुँह से पाँच अंक बोलने होंगे। इसे लिखते समय मुँह से बोले जाने वाले अंकों को ऊपर लिखना होगा। आधार में आने वाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संख्या चार के बराबर प्रत्येक मात्रा के टुकड़े करने होंगे अर्थात् ऊपर लिखित पाँच अंकों के आगे तीन-तीन अवग्रह लगाने होंगे और एक तो अंक स्वयं है ही। अतः पाँचों अंकों को इतनी दूरी पर लिखें कि सब अंकों के आगे तीन-तीन अवग्रह लग सकें। अवग्रह मिलाकर कुल संख्या बीस हो जानी चाहिए क्योंकि पाँच तो अंक ही हैं और सबके आगे तीन-तीन अवग्रह लगे हैं। इस तरह कुल पन्द्रह अवग्रह हुए अतः कुल संख्या बीस हो गई। अब जो आधेय है अर्थात् ऊपर लिखे अंकों वाली संख्या जो पाँच है, के बराबर टुकड़ों को बन्द करने से चार अर्ध-चन्द्र तैयार हो जाएँगे। जैसेः–

1ऽऽऽ2 ऽऽऽ3ऽ ऽऽ4ऽऽ ऽ5ऽऽऽ

एक उदाहरण और देखें:- यदि प्रश्न हो कि तीन में दो लिखें तो यहाँ 'में' से पूर्व 'तीन' है अतः वह आधार हुआ। आधेय जो कि 'दो' है, को लिखना है अतः दो अंकों को लिखना होगा। दोनों मात्राओं के तीन-तीन टुकड़े करने के लिए दो-दो अवग्रह लगाने होंगे और ऊपर दो अंक लिखे थे अतः दो-दो टुकड़ों को अर्ध-चन्द्र में बन्द करना होगा। जिससे तीन अर्धचन्द्र तैयार हो जायेंगे।

जैसेः- 1ऽ ऽ2 ऽऽ

इसी प्रकार सभी लयकारियाँ लिखी जा सकती हैं। तीन ताल को एक ताल में लिखना, यानी सोलह मात्राओं को बारह मात्राओं में लिखना है। यहाँ पहले 16 और 12 का संक्षेप करना होगा। जो क्रमशः 4 और 3 हैं। अब प्रश्न यह बना कि चार को तीन में लिखो या यूँ कहा जाए कि तीन-ताल के चार बोलों को तीन में लिखो। यहाँ आधार तीन है अतः प्रत्येक बोल के आगे दो-दो अवग्रह लगाकर तीन-तीन टुकड़े होंगे। इस प्रकार कुल 48 टुकड़े प्राप्त होंगे। जिसमें 16 बोल और 32 अवग्रह हैं- संक्षेप करने पर जो चार आया था, वह आधेय था। अतः चार-चार बन्द करने पर कुल बारह अर्ध-चन्द्र बनेंगे। अब दो-दो विभाग बनाकर एकताल के चिह्न लगाने से परिणामतः तीनताल, एकताल में हो जाएगी। उदाहरण निम्नलिखित हैः–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकताल में तीनताल

1	2	3	4	5	6
धाऽऽधिं	ऽऽधिंऽ	ऽधाऽऽ	धाऽऽधिं	ऽऽधिंऽ	ऽधाऽऽ
X		0		2	

7	8	9	10	11	12
धाऽऽतिं	ऽऽतिंऽ	ऽताऽऽ	ताऽऽधिं	ऽऽधिंऽ	ऽधाऽऽ
0		3		4	

दूसरा उदाहरणः– झपताल (दस मात्रा) को धमार (चौदह मात्रा) में लिखो। तो इसमें दस को चौदह में लिखना है, अतः झपताल के बोल लिखे जाएँगे। दोनों तालों की मात्राओं का संक्षेप करने पर पाँच और सात हुआ। अतः पाँच बोल लिखकर सात-सात भाग या टुकड़े करने के लिए छह-छह अवग्रह लगाने होंगे। झपताल के सभी दस बोलों के आगे छह'छह अवग्रह लगाने पर कुल 70 (दस बोल, साठ अवग्रह) टुकड़े हुए, जिनको पाँच-पाँच में बन्द करने से 14 अर्ध-चन्द्र बनेंगे, जिन्हें धमार के 5, 2, 3, 4 विभागों में बाँट कर ताल के चिह्न लगाने से झपताल धमार में हो जाएगी, जो इस प्रकार है:–

धीऽऽऽऽ	ऽऽनाऽऽ	ऽऽऽऽधी	ऽऽऽऽऽ	ऽधीऽऽऽ	ऽऽऽनाऽ	ऽऽऽऽऽ
X					2	
तीऽऽऽऽ	ऽऽनाऽऽ	ऽऽऽऽधी	ऽऽऽऽऽ	ऽधीऽऽऽ	ऽऽऽनाऽ	ऽऽऽऽऽ | धी
0			3			x

कुछ तालों के बोल एक मात्रा में एक से अधिक होते हैं। ऐसी तालों की मात्राओं के टुकड़े करते समय ध्यान देना होगा कि कुल टुकड़े जितने चाहिए उतने ही हों जैसेः- एक ताल को यदि तीन ताल में लिखना हो तो एक ताल के बोल लिखे जाएँगे और विभाग तीन ताल के बनेंगे। बारह और सोलह का संक्षेप करने पर तीन और चार आया। अब प्रत्येक मात्रा के चार-चार भाग करने हैं। एक ताल की तीसरी और नौवीं मात्रा में पहले से ही दो-दो बोल (धागे) हैं। अतः उन मात्राओं में दो ही अवग्रह लगेंगे और वे भी एक 'धा' के बाद तथा दूसरा 'गे' के बाद। चौथी और दसवीं मात्रा पर तिरकिट है जिसमें पहले से ही चार भाग हैं अतः इसमें कोई अवग्रह नहीं लगेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आड़, कुआड़ या बियाड़ लिखते समय कुछ और बातों की ओर ध्यान देना होता है। आड़ का अर्थ है डेढ़ गुन यानी दो मात्राओं में तीन मात्रा कहना या लिखना। विस्तृत रूप हुआ कि किसी ताल की आड़ में तीन आवर्तनों को दो आवर्तनों में लिखना। जैसे यदि चारताल की आड़ करनी है तो चारताल के तीन आवर्तनों को दो आवर्तनों में लिखना होगा। पहले डेढ़ आवर्तन को लिखकर प्रत्येक बोल के आगे एक-एक अवग्रह लगाएँगे, जिससे प्रत्येक मात्रा के दो-दो भाग हो जाएँगे। अब तीन-तीन बन्द करेंगे इसी प्रकार बाद का डेढ़ आवर्तन (आधा दूसरे का अन्तिम भाग और तीसरा पूरा) को भी एक-एक अवग्रह लगा कर तथा तीन-तीन बन्द करके दो आवर्तनों में तीन आवर्तन लिखे जाएँगे और ताल के चिह्न दो बार लगेंगे। जैसेः-

चौताल की आड़

धाऽधा	ऽदिंऽ	ताऽकि	टधाऽ	दिंऽता	ऽतिट	कतग	दिगन	धाऽधा	ऽदिंऽ	ताऽकि	टधाऽ
X		0		2		0		3		4	

दिंऽता	ऽतिट	कतग	दिगन	धाऽधा	ऽदिंऽ	ताऽकि	टधाऽ	दिंऽता	ऽतिट	कतग	दिगन
X		0		2		0		3		4	

कुआड़ का अर्थ है सवा गुन अर्थात् पाँच अंकों को चार में लिखना। इसे 'खण्ड-जाति' भी कहते हैं। यदि किसी ताल की कुआड़ करनी है तो उस ताल को पाँच बार लिख कर चार आवर्तनों में बैठाना होगा। पहले की तरह ही सबके आगे तीन-तीन अवग्रह लगा कर पाँच-पाँच को बन्द करना होगा। उदाहरण निम्नवत हैः-

रूपक ताल की कुआड़

तीऽऽऽती	ऽऽऽनाऽ	ऽऽधीऽऽ	ऽनाऽऽऽ	धीऽऽऽना	ऽऽऽतीऽ	ऽऽतीऽऽ
0			2		3	
ऽनाऽऽऽ	धीऽऽऽना	ऽऽऽधीऽ	ऽऽनाऽऽ	ऽतीऽऽऽ	तीऽऽऽना	ऽऽऽधीऽ
0			2		3	
ऽऽनाऽऽ	ऽधीऽऽऽ	नाऽऽऽती	ऽऽऽतीऽ	ऽऽनाऽऽ	ऽधीऽऽऽ	नाऽऽऽधी
0			2		3	
ऽऽऽनाऽ	ऽऽतीऽऽ	ऽतीऽऽऽ	नाऽऽऽधी	ऽऽऽनाऽ	ऽऽधीऽऽ	ऽनाऽऽऽ
0			2		3	
ती						
0						

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

झपताल की एक आवर्तन में कुआड़ की लयकारी इस प्रकार होगीः-

थी	ना	धीऽऽऽना	ऽऽऽधीऽ	ऽऽधीऽऽ	ऽनाऽऽऽ	तीऽऽऽना	ऽऽऽधीऽ	ऽऽधीऽऽ	ऽनाऽऽऽ
X		2			0		3		

बियाड़ः- पौने दोगुन अर्थात् सात मात्राओं को चार मात्राओं में लिखना या बोलना बियाड़-लयकारी कहलाती है। ताल की जातियों में इसे 'मिश्र' नाम दिया गया है। किसी ताल की बियाड़-लयकारी को लिखने के लिए सात आवर्तनों को चार आवर्तनों में लिखा जाएगा। यहाँ दादरा-ताल की बियाड़ का उदाहरण दिया जा रहा है:-

दादरा ताल की बियाड़

धाऽऽऽधीऽऽ	ऽनाऽऽऽधाऽ	ऽऽतूऽऽऽना	ऽऽऽधाऽऽऽ	धीऽऽऽनाऽऽ	ऽधाऽऽऽतूऽ
X			0		
ऽऽनाऽऽऽधा	ऽऽऽधीऽऽऽ	नाऽऽऽधाऽऽ	ऽतूऽऽऽनाऽ	ऽऽधाऽऽऽधी	ऽऽऽनाऽऽऽ
X			0		
धाऽऽऽतूऽऽ	ऽनाऽऽऽधाऽ	ऽऽधीऽऽऽना	ऽऽऽधाऽऽऽ	तूऽऽऽनाऽऽ	ऽधाऽऽऽधीऽ
X			0		
ऽऽनाऽऽऽधा	ऽऽऽतूऽऽऽ	नाऽऽऽधाऽऽ	ऽधीऽऽऽनाऽ	ऽऽधाऽऽऽतू	ऽऽऽनाऽऽऽ
X			0		

इस उदाहरण में दादरा का ठेका सात बार लिखना पड़ा अतः यदि एक ही आवृत्ति में किसी ताल की बियाड़ की जाए तो भूलों की सम्भावना कम है। यहाँ तीव्रा-ताल की बियाड़ एक आवर्तन में दी जा रही है:-

1	2	3	4	5	6	7
धा	दिं	ता	धाऽऽऽदिंऽऽ	ऽताऽऽऽतिऽ	टऽकऽतऽग	ऽदिऽगऽनऽ
x			2		3	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत में लय का महत्त्व

शार्ङ्गदेव ने संगीत-रत्नाकर (भाग-1,पृ-13) में संगीत की परिभाषा देते हुए कहा है कि गीत, वाद्य व नृत्त इन तीनों कलाओं के समूह को संगीत कहते हैं अतः संगीत की परिभाषा यदि यूँ दी जाए कि स्वर व लय के माध्यम से भाव व्यक्त करना संगीत है तो भी उचित होगा। इस दृष्टि से संगीत के दो तत्त्व हुए, स्वर व लय। गायन, वादन व नृत्य तीनों में यह लागू होता है। इन तीनों विधाओं में लय का विशेष महत्त्व है और बिना लय के संगीत की कल्पना नहीं की जा सकती। संगीत ही क्यों लय तो जीवन के हर पहलू में है:- जिस प्रकार शरीर में नाड़ी की धड़कन का स्थान है वही संगीत में लय का स्थान है।

गायक या वादक स्वरों के माध्यम से कभी विलम्बित-लय में, कभी मध्य-लय में तो कभी द्रुत-लय में अपने मनोगत भावों को श्रोताओं तक पहुँचाता है। संगीत रूपी संसार में स्वर की तुलना माँ से और लय की तुलना पिता से की जाती है। बच्चे के पोषण में माँ लालन-पालन को महत्त्व देती है और पिता बच्चे को अनुशासन सिखाता है, अतः जिस प्रकार बच्चे के विकास में माता-पिता का योगदान होता है उसी प्रकार संगीत में स्वर और लय का स्थान है।

स्वर उत्पन्न होने में आंदोलनों का होना आवश्यक है। यदि एक निश्चित क्रम में लगातार एक ही गति से आंदोलन होते हैं तभी स्वर की उत्पत्ति होती है। और जहाँ एक ही गति से आंदोलन हुए वहीं लय अस्तित्त्व में आ गई क्योंकि लय के लिए समान गति का होना आवश्यक है अतः बिना समान गति के ध्वनि आंदोलनों के स्वर उत्पन्न नहीं हो सकता और जहाँ समान गति शब्द आया वहीं लय विराजमान हुई। लय का तात्पर्य है समान चाल या गति। गति को प्रदर्शित करने के लिए आघात करना होगा और आघात शब्द आते ही स्वर अपने आप आ गया। भरत ने भी स्वर और लय को एक दूसरे से अभिन्न माना है (ना.शा.-2, अ.14, श्लो.47)। स्वर और लय संगीत के मूलभूत तत्त्व हैं अतः निश्चित ही संगीत में लय का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संगीत के किसी कार्यक्रम को देखें तो पहले ध्रुपद गायक या वादक आलाप करता है तो आलाप में भी लय कुछ न कुछ हर समय झलकती रहती है जैसे आरम्भ में विलम्बित-लय तथा आगे चलकर गत अंग के वाद्यों में जोड़ का आलाप होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसमें भी लय क्रमानुसार बढ़ती रहती है और अन्त में झाला होता है जो द्रुत-लय में होता है अर्थात् आलाप जो कम से कम लयबद्ध होता है उसमें भी पग-पग पर लय के दर्शन हो जांते हैं। कार्यक्रम में आलाप यानी स्वर-विस्तार के पश्चात् जब तालवादक अपनी कला का प्रारम्भ करता है तो विधिवत् लय प्रकट हो जाती है और संगीत के उस आयोजन में स्वर और लय समानान्तर रूप से एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हुए भी सम्बद्ध होकर आगे बढ़ते हैं। यह भी सच है कि लय बिना स्वर के नहीं हो सकती। कार्यक्रम के आरम्भ में जब आलाप या स्वर विस्तार का क्रम चल रहा होता है तो प्रायः यह माना जाता है कि अभी कार्यक्रम सुचारु रूप से शुरू नहीं हुआ है। तालवादक लगातार आलाप सुनते-सुनते अपना जौहर दिखाने के लिए मन ही मन तैयारी कर रहा होता है। आलाप के समापन पर गत के शुरू होने पर वह लम्बी परन आदि से श्रोताओं का मन मोह लेता है। सब लोग अनायास ही वाह कर उठते हैं। इसके पश्चात् तो राग के स्वर और ताल का खेल आरम्भ होता है। बारी-बारी से कलाकार अपनी कला से श्रोताओं को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। यदि तालवादक ज़रा भी गायक या वादक से अधिक जानकारी है तो ताल का स्वरूप लय के माध्यम् से अत्यन्त मुखर होकर सामने आता है। श्रोताओं का कदाचित् आलस्य से घिरा हुआ मन सहसा ताल प्रदर्शन से चैतन्य हो जाता है यह सब निश्चित ही लय के कारण होता है।

कार्यक्रम के समापन से कुछ पूर्व विशेषकर सितार, सरोद, वायलिन वादक आदि सवाल-जवाब करते हैं। कुछ समय के लिए वादक कुछ बजाता है और तालवादक उसका अनुकरण करता है। इस क्रिया में क्रमशः समय की मात्रा कम करते करते पुनः एक साथ दोनों द्रुत-लय में भिड़ जाते हैं। अन्त में इस क्रिया को पराकाष्ठा तक पहुँचाते हुए कार्यक्रम का समापन करते हैं। इस दौरान श्रोताओं के आनन्द का भी चरमोत्कर्ष होता है और वह स्वर व लय के इस परस्पर खेल में लय का महत्त्व पूरी तरह अनुभव करते हैं।

संगीत के अतिरिक्त भी लय तो जीवन के हर पहलू में विद्यमान है। लय प्रकृति के कण-कण में है, जैसे सूर्य का समय पर निकलना, ऋतुओं का निश्चित अन्तराल पर आना, सभी नक्षत्रों का निश्चित गति से भ्रमण करना आदि लय के कारण ही हो पाता है। यदि वे लयहीन हो जाएँ तो प्रलय आ जाए। लय का अर्थ है लीन होना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् समाधिस्थ होना। किसी क्रिया में गति का उस क्रिया का अपरिहार्य अंक बन जाना लय है अर्थात् लय के बिना कोई क्रिया सुचारु रूप से सम्भव नहीं है। लय का दूसरा नाम सन्तुलन है। जहाँ सन्तुलन है वहाँ रचना और आनन्द है। जहाँ सन्तुलन नहीं है वहाँ विनाश तथा विषाद है।

हृदय गति का समान गति से चलना ही स्वस्थ होने का प्रमाण होता है। जहाँ धड़कन में असमानता आई यानी लय नहीं रही वहीं शरीर अस्वस्थ हुआ अतः पुनः सिद्ध है कि लय सर्वव्यापी है।

लय-सम्बन्धी भ्रान्तियाँः- प्राचीन काल से ही लय कुल तीन मानी जाती हैं- विलम्बित, मध्य और द्रुत। शुरू से ये भी कहा जाता है कि इनमें आपस में दुगने और चौगुने का सम्बन्ध होता है आज भी प्रायः यही मान्यता है परन्तु हमारा विचार इससे कुछ भिन्न है। पहली बात तो लय के तीन प्रकार के स्थान पर कम से क़म पाँच प्रकार मानने चाहिएः- अति विलम्बित, विलम्बित, मध्य, द्रुत तथा अतिद्रुत। इसमें दो किनारे हैं- विलम्बित और द्रुत। दोनों का एक मध्य भाग भी होगा ही, बस इतना ही इन तीन लयों में सम्बन्ध होना चाहिए, जैसे मोटा व्यक्ति और दुबला व्यक्ति। अब सामान्य को मध्यम व्यक्ति कहा जाएगा, इसी प्रकार लम्बा आदमी या ठिगना आदमी यहाँ भी सामान्य को मध्यम कहा जाएगा। प्राचीन और वर्तमान विद्वानों के अनुसार कहा तो यही गया है कि तीनों लयों में दुगने का सम्बन्ध है पर यदि व्यवहार को देखा जाए तो कम से कम उत्तर-भारतीय-संगीत में तो यह दुगने का सम्बन्ध नहीं दिखाई देता है। हाँ, कर्नाटकी संगीत में अवश्य दृष्टिगोचर होता है। हिन्दुस्तानी-संगीत में विलम्बित-लय गिश्चित नहीं है और कलाकर अपनी सुविधा से लय निश्चित करके गाता या बजाता है। अतः लय तीन मानी जाएँ या पाँच लेकिन उनमें ठीक दुगने का सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं है।

दूसरी भ्रान्ति लय की परिभाषा के सम्बन्ध में है। लय का अर्थ होता है विश्रान्ति। विश्रान्ति जितनी बढ़ती जाती है उतनी ही लय विलम्बित होती जाती है। संगीत-रत्नाकर (भाग-3, पृ.-24) में लय के विषय में कहा गया हैः-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रियानन्तरविश्रान्तिर्लयः स त्रिविधो मतः।
द्रुतो मध्यो विलम्बश्च द्रुतः शीघ्रतमो मतः।।
द्विगुणद्विगुणौ ज्ञेयौ तस्मान्मध्यविलम्बितौ।
मार्गभेदाच्चिर-क्षिप्र-मध्य-भावैरनेकधा।।

सभी प्राचीन ग्रन्थकार सदा यह कहते रहे हैं कि द्रुत का दुगना मध्य और मध्य का दुगना विलम्बित होता है, क्योंकि वहाँ लय की परिभाषा ही दो आघातों के बीच का समय है। आजकल दो आघातों के मध्यकाल को लय तो कहा जाता है परन्तु उस काल के दुगना होने पर उसे विलम्बित न कहकर द्रुत कहा जाता है यानी आज लय का स्थान गति ने ले लिया है। गति जितनी बढ़ती जाती है लय उतनी ही द्रुत होती जाती है। प्राचीन विद्वान् गति को लय न मानकर दो आघातों के मध्यकाल को लय मानते थे अतः उन्हें तो कहना ही पड़ता था कि दो आघातों का अन्तराल जितना बढ़ेगा लय उतनी ही अधिक विलम्बित होगी। अब यदि प्रश्न करें कि मध्यलय की दुगनी लय कौन सी है? तो प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार उत्तर होगा- विलम्बित लय। इसके विपरीत वर्तमान के अनुसार उत्तर होगा- द्रुत-लय। वर्तमान में चूँकि आघात या गति को लय कहा जाने लगा जिससे द्रुत, मध्य व विलम्बित का अर्थ तो वही रहा परन्तु यह कहना पड़ा कि विलम्बित की दुगनी मध्य और मध्य की दुगनी द्रुत है। इसका अर्थ यह हुआ कि जितने अन्तराल में दो आघात पड़ते हों वह विलम्बित, उसी अन्तराल में यदि चार आघात पड़ें तो मध्यलय और उसी अन्तराल में यदि आठ आघात पड़े तो द्रुत-लय हुई। लय का वास्तविक विश्रान्तिकाल तो दो गुना के स्थान पर आधा हो गया इसी प्रकार विलम्बित से द्रुत में भी यही हुआ कि विलम्बित की अपेक्षा द्रुत-लय का विश्रान्ति काल एक चौथाई हो गया पर कहा यही जाता है कि विलम्बित का दुगना मध्य एवं मध्य का दुगना द्रुत। यहाँ आघात दुगने हो रहे हैं और विश्रान्ति काल दुगना होने के बजाए आधा हो रहा है। इसलिए यदि लय के स्थान पर गति को यानी आघातों को आधार या लय माने तो समस्या का समाधान हो सकता है।

संगीत में लय का महत्त्वः- संगीत में लय का महत्त्व तो इसी बात से पता चल जाता है कि ताल या लय के समावेश होते ही श्रोता झूमने लगते हैं। जब तक लय नहीं होती कार्यक्रम कुछ ढीला-ढीला लगता है। ताल के आते ही एक फुर्तीलापन आता है। लोकगीतों मे विशेषकर पञ्जाबी लोकगीतों में तो लय के कारण ही लोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाच उठते हैं। केवल तालवाद्य के कार्यक्रम में भी श्रोता झूमते हुए देखे जा सकते हैं अतः स्पष्ट है कि संगीत में लय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि संगीत से लय या ताल को निकाल दिया जाए तो संगीत, संगीत न रहकर एक उदासीन विषय हो जाएगा और नीरस होने लगेगा। अन्ततः इसमें सन्देह नहीं कि लय या ताल के बिना संगीत नहीं हो सकता।

नाट्य-शास्त्र के लेखक भरत के नाम भ, र और त हैं। 'भ' का अर्थ है भाव, 'र' का अर्थ राग और 'त' का अर्थ है ताल। इस दृष्टि से भी संगीत भाव, राग व ताल का ही समन्वय है। स्वर से राग तथा लय से ताल बनती है।

संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन व नृत्य आते हैं। इन तीनों में स्वर, लय व भाव ही होते हैं अन्तर केवल इतना होता है कि स्वर व लय की मात्रा में अन्तर आता है। नृत्य में सबसे अधिक लय का स्थान है और स्वर की मात्रा अत्यल्प है। वाद्यों में घटवाद्य में भी लय का स्थान अधिक है स्वर का नहीं। ताल वाद्यों में तबला, पखावज, मृदंग आदि में लय का स्थान अधिक है और स्वर का बहुत कम। सितार, सरोद, सन्तूर आदि प्रहार करने वाले वाद्यों में स्वर व लय का स्थान समान मात्रा में होता है। गज वाले वाद्यों में लय घटने लगती है और स्वर का विस्तार हो जाता है। इन वाद्यों में भी गत-अंग से वादन करने वाले कलाकार गायकी-अंग की अपेक्षा लय को अधिक प्रधानता देते हैं। गायकी शैली से वादन करने वाले कलाकार के लिए लय की अपेक्षा स्वर का महत्त्व अधिक हो जाता है।

गायन में स्वर का स्थान अधिक है लय का कम। गायन में भी ख़याल गायकी की अपेक्षा ध्रुपद शैली में लय को अधिक महत्त्व दिया जाता है क्योंकि ध्रुपद में लयकारी का अधिक प्रयोग होता है। तिहाइयों के प्रयोग से कलाकार श्रोताओं को आकर्षित करते हैं। ख़याल गायकी में यदि घरानों को देखा जाए तो किराना-घराने में लय की अपेक्षा स्वर पर अधिक बल दिया जाता है इसलिए इस घराने के कलाकार अतिविलम्बित लय का प्रयोग करते हैं। आगरा व जयपुर वाले लय को अपेक्षाकृत अधिक स्थान देते हैं इसलिए इन घरानों में अतिविलम्बित लय का प्रयोग नहीं किया जाता।

इस प्रकार यदि ध्यान से देखा जाए तो स्पष्ट है कि संगीत में लय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साहित्य और संगीत का सम्बन्ध

कलाएँ पाँच प्रकार की मानी जाती है वास्तु, मूर्ति, चित्र, साहित्य और संगीत। इन कलाओं में वास्तुकला का माध्यम मिट्टी-गारा, मूर्ति का पत्थर, छेनी-हथौड़ी, चित्रकला का रंग और ब्रश होता है। संगीत और साहित्य का माध्यम नाद है। पाँचों कलाओं के माध्यमों की दृष्टि से नाद आकाश का विषय होने के कारण सबसे सूक्ष्म है। अतः ये दोनों शेष कलाओं से श्रेष्ठ है। इनका माध्यम नाद ही होने के कारण ये दोनों कलाएँ परस्पर से इतना अधिक जुड़ी हुई हैं कि इनको पृथक करना कठिन है। साहित्य, शब्द प्रधान और संगीत स्वर प्रधान है। साहित्य में शब्द होने के कारण उसके पास भाव व्यक्त करने की क्षमता अपेक्षाकृत अधिक है। उसके पास भाव व्यक्त करने के लिए शब्द हैं, जिनसे प्रत्येक प्रकार के भाव व्यक्त किए जा सकते हैं पर यदि ध्यान से देखा जाए तो पता चलता है कि शब्द प्रकट करने के लिए स्वर का आश्रय लेना ही होगा। शब्द का आश्रय तो नाद ही है, बिना नाद या स्वर के शब्द को तो उच्चारित ही नहीं किया जा सकता अर्थात् साहित्य को स्वर का सहारा तो लेना ही होगा। भरत ने तो स्वर को शब्द और ताल को छन्द कहा ही है।

दो शब्दों या अक्षरों के मध्य कुछ समयान्तराल होता है जो लय का काम करता है। यही स्वर और लय, संगीत में भाव को प्रकट करने के माध्यम हैं। स्पष्ट है कि स्वर और लय के बिना संगीत नहीं हो सकता।

साहित्य और संगीत में समानताः- साहित्य और संगीत दोनों का ही माध्यम नाद है। 'नाद' ही पूरे जगत् का आधार है। नाद से स्वर और शब्द बनते हैं। शब्दों से भाषा और भाषा से सारे संसार का व्यवहार होता है। भाषा बुद्धि का विषय है इसमें कृत्रिम विकास होता है। भाषा का यदि ज्ञान नहीं है तो उसका प्रभाव श्रोता पर नहीं पड़ता। नाद का सम्बन्ध हृदय से है जिसमें सहजता है। अतः प्राणी मात्र पर ही नहीं, वनस्पतियों पर भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है। जब संगीत और साहित्य का माध्यम एक ही है तो दोनों में सम्बन्ध तो अटूट मानना ही होगा।

अलंकारः- साहित्य और संगीत दोनों में ही अलंकारों का विशेष स्थान है। अलंकार से अभिप्राय अलंकरण अर्थात् सजावट से होता है। साहित्य में अनुप्रास, यमक आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनेक अलंकार प्रयोग में लाए जाते हैं इसी प्रकार संगीत में स्वरों को कण, खटका, मुर्की आदि आभूषणों या अलंकारों से सजाकर राग को प्रस्तुत किया जाता है। विद्यार्थियों को स्वरज्ञान कराने के लिए आरम्भ में अलंकार सिखाए जाते हैं जैसेः– सारेग रेगम, सारेसारेग रेगरेगम आदि। इन अलंकारों से स्वर ज्ञान के अतिरिक्त राग में तान का अभ्यास स्वतः हो जाता है।

रसः– साहित्य और संगीत में दोनों का अन्तिम उद्देश्य रसानुभूति होता है। सगहित्य में शब्द-संयोजन और संगीत में स्वर-संयोजन से रस की प्राप्ति की जाती है। रस नौ होते हैं- करुण, शृंगार, भयानक, रौद्र, वीर, हास्य, वीभत्स, अद्भुत, तथा शान्त। आगे चलकर वात्सल्य आदि रसों के जुड़ने से रसों की संख्या बारह हो गई। संगीत में भाव व्यक्त करने का माध्यम् केवल स्वर होते हैं अतः इसमें सभी प्रकार के रसों को तो प्रदर्शित नहीं किया जा सकता परन्तु मृदु, हास्य और वीर ये तीन रस प्राप्त किए जा सकते हैं। साहित्य में शब्दों की अधिकता के कारण रस की प्राप्ति उपेक्षाकृत सुविधापूर्वक हो पाती है जबकि संगीत में शब्दों के अभाव में मात्र नाद के माध्यम से रसों की अनुभूति कराना ही गायक या वादक का उद्द्देश्य होता है। यदि कलाकार सिद्धहस्त है तो आसानी से अपने उद्द्देश्य में सफल हो जाता है। दुर्भाग्य से आजकल ऐसे समर्पित और पारंगत कलाकारों की कमी होती जा रही है।

ताल और छन्दः– संगीत और साहित्य की प्रतिष्ठा ताल या छन्द में होती है। ताल या छन्द, काल के पैमाने हैं। ताल की परिभाषा में कहा गया है कि **'गीतं वाद्यं तथा नृत्तं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्'** (सं.र.-3, पृ-3) अर्थात् संगीत ताल से प्रतिष्ठा पाता है। ठीक इसी प्रकार साहित्य छन्द के सहारे चलता है यानी ताल और छन्द दोनों ही समय को मापने वाले पैमाने हुए। काव्य और संगीत दोनों में लघु सबसे छोटी इकाई है इस कारण दोनों में ही लघु को एक मात्रा माना जाता है। यदि ताल और छन्द का सम्बन्ध देखा जाए तो दोनों एक दूसरे पर आश्रित ही नहीं बल्कि एक ही हैं।

छन्द और ताल में अन्तरः– ह्रस्व और दीर्घ का ध्यान रखते हुए बिना व्यवधान के छन्द को पढ़ना काव्य-पाठ होता है यानी लघु को लघु और गुरु को गुरु ज्यों का त्यों व्यक्त करना होता है। जबकि ताल में उसी छन्द को बाँधते समय अक्षरों को सुविधा के अनुसार बढ़ाया जा सकता है। ताल में शब्दों की कहीं पर सम्पीडन तो कहीं विरलन की स्थिति आ सकती है परन्तु संगीत में यह ध्यान तो रखा ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है कि किसी ह्रस्व या लघु को दीर्घ न किया जाए बस दीर्घ या गुरु को और अधिक कर्षण किया जा सकता है। किसी-किसी बन्दिश में तो छन्द को बिना बिगाड़े या बिना परिवर्तन किए ज्यों का त्यों गाया जाता है जैसे तिलक कामोद का ध्रुपद है:-'चंचल चित चोर चतुर' इसमें प्रथम पंक्ति में तो छन्द के ही अनुसार गाया जाता है और दूसरी 'पंक्ति में इस प्रकार गाते हैं:-'अटक मोसे गुँई ऽ ऽ ऽ याँ' अर्थात् 'गुँई' को और अधिक लम्बा किया गया है। भाषा के लघु को संगीत में यथासम्भव लघु ही रखा जाता है किन्तु गुरु को ताल की मात्राओं की आवश्यकतानुसार बढ़ा कर छन्द को गेय बना लिया जाता है।

यति :- संगीत और साहित्य में यति का महत्वपूर्ण स्थान है। काव्य में छन्द का प्रयोग किया जाता है छन्द में पाद या चरण में होने वाली अल्पविश्रान्ति जो मात्रा अथवा वर्ण के नियत संख्या समूह पर आती है, यति कहलाती है। दूसरे शब्दों मे, यति का अर्थ विराम है। यह प्रायः पाद के अन्त में होती है। लम्बे छन्दों में मध्य में भी यति का विधान है। जैसे-मन्दाक्रान्ता छन्द के **"शान्ताकारम् भुज़गशयनम् पद्मनाभ्मम् सुरेशम्"** में चौथे, दसवें और पाद के अन्त में यति है।

संगीत में (विलम्बित, मध्य, द्रुत) लय के प्रयोग को यति कहा गया है, 'लय प्रवृत्तिनियमों यतिरित्यभिधीयते' (संर.श्लो.46) मुख्य तीन यतियाँ हैं नाम समा, स्त्रोतोत्रता, गोपुच्छा है। भरत ने केवल इनके नाम दिए है लक्षण नहीं। जबकि शार्गदेव ने लक्षण भी दिए हैं। पिपीलि का और मृदंगा दो प्रकार की यतियाँ और जोड़ दी जिनसे इनकी संख्या पाँच हो गई।

काकु का महत्त्वः- काकु का अर्थ है ध्वनि के उतार-चढ़ाव से भाव व्यक्त करना। संगीत में सभी स्वर आधार स्वर से ऊँचे या नीचे होने पर बनते हैं जिनसे संगीत निर्मित होता है। काकु से स्वरों का उतार-चढ़ाव या स्वरों का ऊँचा नीचापन प्रदर्शित होता है इसीलिए काकु को संगीत की जननी कहा जाता है (सं.चि.,पृ-394)। समान शब्द होने पर भी यदि ध्वनि को भाव के अनुसार ऊँची या नीची कर दी जाए तो भाव में अन्तर आ जाता है। जिससे अर्थ बदल जाता है। प्रश्नवाचक वाक्य में स्वर नीचे से ऊपर होता है जैसे यदि यह पूछना हो कि 'वह आया है?' तो ध्वनि मध्य-षड्ज से पंचम तक उठती है इसके विपरीत जब उत्तर देना हो, "वह आ गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है" ध्वनि मध्य-षड्ज से नीचे पंचम तक जाती है (ध्व.सं., पृ.-143)। कहने का भाव यह है कि यदि लिखा हुआ न हो केवल कहना हो तो समान वाक्य होते हुए केवल मध्य-षड्ज से मध्य-पंचम तक ध्वनि जाए तो प्रश्न जैसा लगता है और यदि मध्य-षड्ज से मन्द्र-पंचम तक ध्वनि छोड़ी जाए तो उत्तर लगता है। यही काकु का प्रयोग है। काकु का क्षेत्र विशाल है। शार्गंदेव ने संगीत-रत्नाकर (भाग- 2, पृ.-175) में छह प्रकार के काकुओं का उल्लेख किया है जैसे स्वर काकु, राग काकु, अन्य-राग काकु, देश काकु, क्षेत्र काकु, और यन्त्र काकु।

1. स्वर काकुः- किसी स्वर में जब दूसरे स्वर की छाया या श्रुतियां प्रयुक्त होती हैं वह स्वर काकु कहलाता है।

2. राग काकुः- प्रत्येक राग का मुख्य स्वर समूह जिससे वह पहचाना जाता है राग काकु कहलाता है।

3. अन्य-राग काकुः- गाते बजाते समय मुख्य राग में दूसरे राग स्वर समूह अन्य-राग काकु कहलाते हैं।

4. देश काकुः- देश का अर्थ है स्थान या प्रान्त। हर व्यक्ति में अपने प्रान्त की झलक देश काकु कहलाता है।

5. क्षेत्र काकुः- क्षेत्र का अर्थ है शरीर। हर व्यक्ति का शरीर भिन्न होने के कारण उसके कण्ठ की ध्वनि एक दूसरे से चेहरे के समान ही भिन्न होती है। यही क्षेत्र काकु है।

6. यन्त्र काकुः- यन्त्र का अर्थ है वाघ। हर वाद्य की ध्वनि समान स्वर होते हुए भी यन्त्र काकु के कारण अलग से पहचान में आ जाती है।

इसके अतिरिक्त भाव व्यक्त करने के लिए कभी किसी शब्द पर दबाव देने के लिए ज़ोर देना होता है। कभी कोमल भावनाओं को प्रदर्शित या व्यक्त करने के लिए ध्वनि को अपेक्षाकृत मुलायम बनाना होता है। इन दोनों प्रकारों का साहित्य और संगीत दोनों में एक समान रूप से प्रयोग किया जाता है। जैसे-साहित्य में डराने के भाव को कठोर शब्दों से वैसे ही संगीत में स्वर को बुलन्द करके या वाद्य में ज़ोरदार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रहार करके प्रदर्शित करते हैं। मधुरता के लिए कोमल भावों से शब्दों या स्वरों की सहायता से काकु के सहारे भाव द्वारा व्यक्त किए जाते हैं।

भारतीय-दर्शन वाक्, प्राण और मन से व्याप्त है। जिसका सम्बन्ध सत्, चित् व आनन्द से या सच्चिदानन्द से जोड़ा जाता है। सत् का क्रिया, चित् का ज्ञान और आनन्द का इच्छा से सम्बन्ध होता है। महत्ता की दृष्टि से ये क्रमानुसार एक दूसरे से बढ़कर हैं। यानी रसानुभूति का अन्तिम लक्ष्य आनन्द प्राप्ति है।

भरत ने गांधर्व को 'स्वरतालपदात्मकम्' कहा है। यही लक्षण संगीत का भी हुआ। इन तीनों शब्दों पर यदि विचार करें तो ताल का क्रिया से, पद यानी शब्द का ज्ञान से और स्वर का आनन्द से सम्बन्ध सहज ही दृष्टिगोचर होता है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से तो स्वर, ताल और पद यही क्रम है। परन्तु अनुभूति की दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो क्रमशः ताल, पद और स्वर ये क्रम रखना होगा।

ताल बिना क्रिया के सम्भव नहीं है। चाहे उसे सशब्द क्रिया से दिखाया जाए या निःशब्द क्रिया से, कोई न कोई क्रिया तो करनी ही होगी। पद, अर्थ-बोधक होने के कारण ज्ञान से सीधे सम्बन्धित है ही। ज्ञान प्राप्ति में शब्द या पद अथवा उससे बनी भाषा ही सहायक होती है। बिना भाषा के ज्ञान सम्भव नहीं अतः पद ज्ञान से जुड़ा हुआ है।

स्वर नादात्मक है। सभी विद्वानों ने नाद स्वर को ब्रह्म या ब्रह्मानन्द माना है अतः स्वर, ताल व पद को ताल, पद एवं स्वर के क्रम से रखने पर आनन्द की अनुभूति होती है इसमें कोई सन्देह नहीं है (भा.सं.ता.और रू.वि.पृ.-306)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट

संगीत-सम्बन्धी ग्रन्थों में गणित का महत्त्व

गणित एक ऐसा व्यापक विषय है, जो कि हर युग में हर स्थान पर व्याप्त है, प्रकृति में सुन्दरता भी गणित की ही देन है। गणित से ही सन्तुलन होता है। जहाँ असंतुलन है वहाँ उसका अर्थ है कि गणित के अनुपात में कुछ कमी है।

सभी कलाओं में गणित के बिना एक कदम भी बढ़ना कठिन है, संगीत में तो स्वर-लय दोनों ही गणित पर आधारित् है। नाद या स्वर की उत्पत्ति ही आंदोलन संख्या पर निर्भर है। एक स्वर दूसरे स्वर से कितना ऊँचा यानि कितने आंदोलन संख्या का स्वर या किस अनुपात में ऊँचा है।

इसी प्रकार लय में भी गणित का ही खेल है। दुगुन, तिगुन, आड़, कुआड़, आदि लयकारियाँ मध्य, विलंबिल, द्रुतलय में भी सभी जगह गणित ही गणित है और तिहाइयों का सम्बन्ध तो सीधे गणित से है ही। मेलों या थाटों की अधिकतम संख्या एक थाट से 484 रागों की उत्पत्ति स्वरों में संवाद-विवाद ज्ञात करना सभी गणित के माध्यम से ही संभव है। सभी प्रकार के स्केल (ग्राम) की प्राप्ति भी गणित से ही हो पाती है। हारमोनियम आदि टेम्पर्ड स्केल वाले वाद्यों के स्वर कौन से स्वर शुद्ध अवस्था से नीचे या ऊँचे है यह सब कान से तो सुना ही जा सकता है पर सिद्ध गणित के माध्यम से ही होता है। ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि अमीर खुसरो 1279 ई. में मुलतान गये। उस समय मुलतान मुस्लिम विद्याओं का केन्द्र था। संगीत को गणित की एक शाखा मानकर उसका अध्ययन एवं अध्यापन होता था। इसका अर्थ यह हुआ कि गणित और संगीत का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मध्ययुग किसे कहा जाये इतिहासकार 8वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालखण्ड को मध्ययुग मानते हैं। संगीत में ग्राम-मूर्च्छना प्रणाली जब तक थी वह प्राचीन, उसके बाद और अंग्रेजों के आगमन तक मध्ययुग। "संगीतरत्नाकर" के पश्चात् यानि 13वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक के कालखण्ड को मध्ययुग कह सकते हैं।

इस काल में संगीत-सम्बन्धी 17 ग्रंथ प्राप्त होते हैं। इनमें से सोमनाथ के "रागविबोध", व्यंकटमखी के 'चतुर्दण्डी-प्रकाशिका', अहोबल के 'संगीतपारिजात', और श्रीनिवास के 'रागतत्य-विबोध' में गणित का चमत्कार प्राप्त होता है।

मुख्य रूप से पाँच बिंदु (1) स्वर-प्रस्तार (2) वीणा पर स्वरों की स्थापना (3) मेल बनाने की विधि और उनसे प्राप्त मूर्च्छनाओं की विपुल संख्या (4) कटपयादि संज्ञा के आधार पर 72 मेलों के स्वर ज्ञात करना। (5) संगीत सूर्योदय में ताल प्रस्तारों के चार के स्थान पर 5 अंगों (1.अनुद्रुत 2. द्रुत 3. लघु 4. गुरू 5. प्लुत) से ताल के प्रत्ययों का स्पष्टीकरण। इन पर विचार प्रस्तुत हैं-

(1) स्वर-प्रस्तार - स्वर-प्रस्तार या कूटतान का वर्णन 'संगीत-रत्नाकर' में विस्तार-पूर्वक किया गया है। मध्ययुग में पूण्डरिक विठ्ठल ने अपने ग्रन्थों में कूटतानों का संक्षिप्त वर्णन किया है। 'संगीत-पारिजात' में भी पं0 अहोबल ने इस बिंदु पर कुछ विस्तार पूर्वक विचार किया है। सात स्वरों के 5040 स्वर-प्रस्तार इनमें से किसी स्वर-प्रस्तार की संख्या को प्राप्त करना नष्ट और किसी भी प्रस्तार की संख्या ज्ञात करना उद्दिष्ट कहलाता है। सात स्वरों के 5040 प्रस्तार बनाने की विधि को नीचे सारिणी में दिया जा रहा है-

सारिणी

सा	रे	ग	म	प	ध	नि
1	2	3	4	5	6	7
1	2	6	24	120	720	5040

(2) वीणा पर स्वरों की स्थापना - मध्य युग में वीणा पर तार की लंबाई के आधार पर स्वरों को प्राप्त करने की विधि का आविष्कार सर्वप्रथम पं0 अहोबल ने किया। इन्हीं का अनुकरण हृदयनारायण देव ने और कुछ सुधार करके श्रीनिवास ने 'रागतत्व विबोध' में वीणा पर स्वरों की स्थापना गणित के आधार पर की है। तार के दो या तीन भाग करके सभी शुद्ध विकृत स्वरों की प्राप्ती की गई। जहाँ कहीं उपयुक्त स्वर प्राप्त ना हो उसे संवाद के आधार पर प्राप्त करने का भी निर्देश है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरसंवादिताज्ञानं स्वरस्थापनकारणम् (सं.पा.श्लो.सं.336पृ.सं.95)

खुले तार पर मध्य सा, तार के दो भाग कर तार सा, मध्य सा और तार सा के मध्य म, पूरे तार के तीन भाग कर पहले भाग पर प, सा-प के मध्य ग, सा प के ही तीन भाग कर पहले भाग पर रे, प और तार सा के मध्य ध, जिसका रे से संवाद होना आवश्यक है, तथा प और तार सा के ही तीन भाग कर प की ओर से दूसरे भाग पर नि की स्थापना अहोबल और हृदयनारायण देव ने समान रूप से की है। श्रीनिवास ने एक नवीन स्वर अतितार सा तथा प को भिन्न रीति से अंतमेरू तथा तार सा के तीन भाग कर दूसरे भाग पर प की प्राप्ती की है। आगे अहोबल तथा श्रीनिवास के शुद्ध तथा विकृत स्वरों की तालिकायें दी जा रही हैं–

वीणा पर अहोबल के शुद्ध स्वरों की तालिका

क्रं.	स्वर का नाम	दो भाग करने पर	तीन भाग करने पर	तार की लम्बाई (इंच में)
1.	मध्य सा	—	—	36 इंच
2.	तार सा	पूरे तार के	—	18 इंच
3.	शुद्ध म	अन्त्यमेरु और तार सा के	—	27 इंच
4.	प	—	पूरे तार के, अन्त्यमेरु की ओर से प्रथम भाग पर	24 इंच
5.	ग	अन्त्यमेरु और प के	—	30 इंच
6.	रे	—	अन्त्यमेरु और सा की ओर से पहले भाग पर	32 इंच
7.	ध	प और तार सा के (रे, ध में संवाद होना आवश्यक है)	—	21 $^1/_3$ इंच
8.	नि	—	प और तार सा के दूसरे भाग पर।	20 इंच

अहोबल के स्वरों का क्रम–

सामोपे गारी दीनि।

सा-सां, मो-म, पे-प, गा-ग, री-रे, दी-ध, नी-नि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीणा पर अहोबल के विकृत स्वरों की तालिका

क्र0	स्वर का नाम	दो भाग करने पर	तीन भाग करने पर	तार की ल0(इंच में)
1.	कोमल रे	—	अन्त्यमेरु और शुद्ध रे के तीन भाग करके अन्त्यमेरु की ओर से दूसरे भाग पर	33 1/3 इंच
2.	तीव्र ग	अन्त्यमेरु और ध के	—	28 2/3 इंच
3.	तीव्रतर म	—	ग और तार सा के प्रथम भाग पर	25 1/9 इंच
4.	कोमल ध	—	प और तार सा के प्रथम भाग पर (कोमल रे से सा-प संवाद आवश्यक है)	22 2/9 इंच
5.	तीव्र नि	—	ध और तार सा के दूसरे भाग पर	19 1/9 इंच

अहोबल के स्वरों की तालिका

क्रन सं.	स्वर	36 इंच तार लम्बाई पर स्वर स्थान	90 सेमी तार लम्बाई पर स्वर स्थान
1	मध्य षड्ज	36 इंच	90 सेमी
2	कोमल ऋषभ	33 1/3 इंच	83 1/3 सेमी
3	शुद्ध ऋषभ	32 इंच	80 सेमी
4	शुद्ध गांधार	30 इंच	75 सेमी
5	तीव्र गांधार	28 2/3 इंच	71 2/3 सेमी
6	शुद्ध मध्यम	27 इंच	67 1/2 सेमी
7	तीव्र मध्यम	25 1/9 इंच	62 7/9 सेमी
8	पंचम	24 इंच	60 सेमी
9	कोमल धैवत	22 2/9 इंच	55 5/9 सेमी
10	शुद्ध धैवत	21 1/3 इंच	53 1/3 सेमी
11	शुद्ध निषाद	20 इंच	50 सेमी
12	तीव्र निषाद	19 1/9 इंच	47 7/9 सेमी
13	तार षड्ज	18 इंच	45 सेमी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(1) वीणा पर श्रीनिवास के शुद्ध स्वरों की तालिका

क्र0	स्वर का नाम	दो भाग करने पर	तीन भाग करने पर	तार की लम्बाई (इंच में)
1.	मध्य सा	—	—	36 इंच
2.	तार सा	पूरे तार के	—	18 इंच
3.	अति तार सा	तार सा और पूर्वमेरु के	—	9 इंच
4.	शुद्ध म	अन्त्यमेरु और तार सा के	—	27 इंच
5.	प	—	अन्त्यमेरु और तार सा के दूसरे भाग पर अन्त्यमेरु की ओर से	24 इंच
6.	ग	अन्त्यमेरु और प के	—	30 इंच
7.	रे	—	अन्त्यमेरु और प की ओर से दूसरे भाग पर	32 इंच
8.	ध	प और तार साके (रे, ध में संवाद होना आवश्यक है)	—	21 $^{1}/_{3}$ इंच
9.	नि	—	प और तार सा के दूसरे भाग पर।	20 इंच

श्री निवास के स्वरों का क्रम-

सासमोपे गारीदीनि।

सा-सां, स = सां, मो-म, पे-प, गा-ग, री-रे, दी-ध, नी-नि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(1) वीणा पर श्रीनिवास के विकृत स्वरों की तालिका

क्र0	स्वर का नाम	दो भाग करने पर	तीन भाग करने पर	तार की ल0(इंच में)
1.	कोमल रे	—	अन्त्यमेरु और शुद्ध रे के तीन तीन भाग करके अन्त्यमेरु की ओर से दूसरे भाग पर	$33^1/_3$ इंच
2.	तीव्र ग	अन्त्यमेरु और ध के	—	$28\,^2/_3$ इंच
3.	तीव्रतर म	—	ग और तार सा के प्रथम भाग पर	$25\,^1/_9$ इंच
4.	कोमल ध	—	प और तार सा के प्रथम भाग पर (कोमल रे मे सा-प संवाद आवश्यक है)	$22\,^2/_9$ इंच
5.	तीव्र नि	—	ध और तार सा के दूसरे भाग पर	$19\,^1/_9$ इंच

मेलः- मेल शब्द हिन्दी के मिलना से बना है। सर्वप्रथम विजयनगर के विद्यारण्य ने 1336 ई. में 'संगीतसार' नामक पुस्तक में तत्कालीन प्राप्त 50 रागों का समान स्वरों के आधार पर 15 मेलों में वर्गीकृत किया। यह पुस्तक उपलब्ध नहीं है, इनका उल्लेख रघुनाथ भूप और गोविन्द दीक्षित की 'संगीतसुधा' के राग लक्षण में प्राप्त होता है, ऐसा के. वासुदेव शास्त्री का कथन है। सं.शा.पृ.6 आगे चलकर 'स्वर-मेल कलनिधि' में 20 मेल और सोमनाथ ने 'राग विबोध' में 23 मेल स्वीकार किये।

सोमनाथ ने 'राग-विबोध' 1609 में 15 (3रे, 4ग, 2म, 3ध, 3नि) विकृत और सात शुद्ध स्वरों के आधार पर 960 मेल गणित के माध्यम से प्राप्त किये।

शुद्ध रे, तीव्र रे, तीव्रतर रे, तीव्रतम रे (4) रे, शुद्ध ग, साधारण ग, अंतर ग, मृदु म, तीव्रतम ग (5) ग x शुद्ध म, तीव्रतम म, मृदु प (3) म, शुद्ध ध, तीव ध्र, तीव्रतर ध, तीव्रतम ध (4) ध शुद्ध नि, कैशिक नि, काकली नि, मृदु सा (4) नि (4x5x3x4x4=960)। इनमें से अनेक मेल ऐसे हैं जो मेल की परिभाषा स्वरों के क्रमानुसार होने की शर्त को पूरी नहीं करते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसेः- चौथा रे दसवीं श्रुति पर है और शुद्ध ग नौवीं पर जिससे स्वरों का क्रम सा ग रे म हो जायेगा। इसी प्रकार और भी अनेक स्थलों पर यहीं स्थित प्राप्त होती है। इसी तरह कुछ मेल समान स्वरों पर स्थित होने से मान्य नहीं हुए जैसे -तीव्रतम रे और साधारण ग, तीव्रतम ध और कैशिक नि।

1620 ई. में व्यंकटमखी ने च. प्र. की रचना की जिसमें मेलों की 72 संख्या सिद्ध की है। इसमें स्वरों को क्रमानुसार रखने के लिए नवीन विधि का आश्रय लिया गया। आगे इन 72 मेलों को बनाने की विधि दी जा रही है।

	पूर्वांग				उत्तरांग			
1 -	सा	रे	रे	म	प	ध	ध	सां
2 -	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
3 -	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
4 -	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
5 -	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
6 -	सा	ग	ग	म	प	नि	नि	सां

पूर्वांग के प्रत्येक अर्धमेल के साथ उत्तरांग के सभी छहों अर्धमेलों को क्रमानुसार मिलाने पर छह पूर्णमेल तैयार होंगे। इसी प्रकार क्रमशः दूसरे, तीसरे, चौथे आदि के प्रत्येक पूर्वांग के साथ उत्तरांग के अर्धमेलों को जोड़ने से (6 x 6=)36 पूर्णमेल तैयार हो जाएँगे। इन सभी मेलों में 'शुद्ध मध्यम' है, अब यदि 'शुद्ध मध्यम' के स्थान पर 'तीव्र मध्यम' कर दिया जाए तो पुनः 36 और नवीन मेल तैयार हो जाएँगे। अतः इस प्रकार कुल (36 + 36 =) 72 मेल तैयार हो सकेंगे।

हिन्दुस्तानी संगीत की दृष्टि से पूर्वांग के प्रथम-क्रम में गांधार नहीं है और छठे क्रम में ऋषभ नहीं है। इसी प्रकार उत्तरांग के प्रथम-क्रम में निषाद नहीं है और छठे क्रम में धैवत नहीं है। इस शंका का समाधान यह है कि पं. व्यंकटमखी के 12 स्वर हिन्दुस्तानी 12 स्वरों के समान नहीं थे। व्यंकटमखी ने थाट को सम्पूर्ण करने हेतु कुछ स्वरों के काल्पनिक नाम दिए थे जो इस प्रकार हैं:-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दुस्तानी पूर्वार्द्ध स्वर-नाम	व्यंकटमखी के काल्पनिक-नाम
1-सा रे रे म	1-सा र ग म
2-सा रे ग म	2-सा र गि म
3-सा रे ग म	3-सा र गु म
4-सा रे ग म	4-सा रि गि म
5-सा रे ग म	5-सा रि गु म
6-सा ग ग म	6-सा रु गु म

हिन्दुस्तानी उत्तरार्द्ध स्वर नाम	व्यंकटमखी के काल्पनिक नाम
1-प ध ध सां	1-प धा ना सां
2-प ध नि सां	2-प धा नि सां
3-प ध नि सां	3-प धा नु सां
4-प ध नि सां	4-प धि नि सां
5-प ध नि सां	5-प धि नु सां
6-प नि नि सां	6-प धु नु सां

इस प्रकार व्यंकटमखी ने स्वरों को कल्पित स्वर-नामों की संज्ञाएँ देकर अपने मेल (थाट) को स्थापित किया तथा गणितीय सहायता से 72 मेलों (थाटों) की रचना की।

सारिणी से स्पष्ट है कि रे, ग, ध, नि स्वरों में अ, इ, उ मात्राओं का विभिन्न क्रमों में प्रयोग किया गया है। 'अ' का प्रयोग शुद्ध स्वर के लिए, 'इ' का प्रयोग शुद्ध से ऊपर वाले या पहले विकृत स्वरों के लिए तथा और ऊपर वाले यानी दूसरे विकृत स्वरों के लिए 'उ' हुआ। थाट में स्वर क्रमानुसार रखे जाते हैं, अर्थात् ऊँचे स्वर के बाद कोई नीचा स्वर नहीं आ सकता है। अ-इ-उ भी क्रमशः एक दूसरे से बड़े हैं, अतः कहीं भी बड़े स्वर के बाद छोटे स्वर का प्रयोग नहीं हो सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि ऐसा किया जाए तो थाट के स्वरों का क्रम भंग हो जाएगा। जैसे- सा रु ग म, सा रु गि म आदि नहीं हो सकता है क्योंकि 'रु' का अर्थ है रे (ऋषभ) का तीसरा रूप (कोमल-गांधार) और ग का अर्थ है ग (गांधार) का पहला रूप (शुद्ध-ऋषभ), अतः सा रु ग म का अर्थ सा <u>ग</u> रे म हो जाएगा और यह क्रम थाट के अनुसार अशुद्ध है। इसी तरह सा रु गि म भी नहीं हो सकता है क्योंकि 'रु' और 'गि' दोनों ही कोमल-गांधार के द्योतक हैं। मात्रा भेद से स्वरों का शुद्ध-विकृत रूप का ज्ञान कराने की विधि का निर्माण भी व्यंकटमखी ने किया जिससे पाठकों को तो विषय सुगम हुआ ही, स्वयं ग्रन्थकार की भी सम्बन्धित विषय में विशेषज्ञता परिलक्षित होती है। (सं.जि. स.पृ.153-54)

यहाँ तक कर्नाटकी संगीत में प्राप्त मेलों का विवरण हुआ। हिंदुस्तानी संगीत में 'संगीत पारिजात' और 'रागतत्व विबोध' में मेल तीन प्रकार के संर्पूण, षाडव और औडव दिये हैं। अहोबल ने सात शुद्ध और 22 विकृत कुल 29 स्वर स्वीकार किये हैं। जिससे सम्पूर्ण मेंलो की संख्या 2664 षाडव मेलों की 5175 और औडव मेलों की 3501 कुल योग 11340 है।

अहोबल के शब्दों में-

> अथ शुद्धैः स्वरैर्मेलाः कथ्यन्ते विकृतैरपि।
> तेषां मितिः ख-वेदौ च वन्हिश्चन्द्रद्वयं तथा।।

(सं.पा.श्लो.सं.328पृ.सं.95)

मेलों की संख्या बताने से पूर्व अहोबल ने सौ श्लोकों में 103 से 203 शुद्ध और विकृत स्वरों की संपूर्ण, षाड्व, औडव मूर्च्छनाएं विस्तार पूर्वक दी हैं जिसका यहाँ वर्णन दिया जा रहा है।

दोनों ग्रामों की चौदह मूर्च्छनाओं को चार से गुणा करने पर 14x4 =56 मूर्च्छनाएं संगीत रत्नाकर तक के प्राचीन-ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं। पं. अहोबल ने संगीत पारिजात में बाइस विकृत और सात शुद्ध कुल उन्नतीस (29) स्वर कहें हैं। अतः स्पष्ट है कि संगीत पारिजात की मूर्च्छनाएँ भी बड़ी संख्या में हैं। स्वयं पं. अहोबल ने सम्पूर्ण मूर्छनाएं 18648, षाडव 31050 तथा औड़व 17505 कही हैं।

सर्वप्रथम यहाँ अहोबल के विकृत स्वरों पर विचार किया जा रहा है। शुद्ध स्वर 4, 7, 9, 13, 17, 20 और 22 क्रम की श्रुतियों पर क्रमशः सा रे ग म प ध नि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहोबल ने प्राचीन ग्रन्थों के समान ही माने हैं। सा-प के अतिरिक्त शुद्ध अवस्था से एक श्रुति ऊँचे होने पर रे, ग, म, ध, नि तीव्र, दो श्रुति ऊँचे होने पर तीव्रतर, तीन श्रुति ऊँचे होने पर तीव्रतम तथा चार श्रुति ऊँचे होने पर अति तीव्रतम होते थे। शर्त यही थी कि आगामी स्वर से आगे न जायें जैसे-सातवीं श्रुति पर शुद्ध रे और नवीं पर शुद्ध ग है इसलिए रे के दो ही तीव्र और तीव्रतर रूप होंगे। यही स्थिति ध की है। म और नि तीन-तीन श्रुति ऊँचे हो सकते हैं इसलिए इनके तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम तीन-तीन विकृत रूप होंगे। केवल ग के चार विकृत रूप हैं। अतः अहोबल ने रे=2, ग=4, म=3, ध=2, नि=3 (2+4+3+2+3)=14 विकृत स्वर शुद्ध अवस्था से ऊँचे कहे हैं।

वर्तमान समय में रे, ग, ध, नि स्वर शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर कोमल कहलाते है। यही स्वर पं. अहोबल के भी शुद्ध अवस्था से एक श्रुति नीचे होने पर कोमल और दो श्रुति नीचे होने पर पूर्व कहलाते थे। इस प्रकार चार कोमल तथा चार पूर्व कुल आठ स्वर शुद्ध अवस्था से नीचे हुये। अतः विकृत स्वरों की कुल संख्या 14+8=22 हुई। जो आगे सारणी में प्रस्तुत हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रम	श्रुतियों के नाम	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर				कोमल स्वर	
			तीव्र	तीव्रतर	तीव्रतम	अतितीव्रतम	कोमल	पूर्व
.1.	तीव्रा		नि					
2.	कुमुद्वती			नि				
3.	मन्दा				नि			
4.	छन्दोवती	सा						
5.	दयावती							रे
6.	रञ्जनी						रे	
7.	रक्तिका	रे						ग
8.	रौद्री		रे				ग	
9.	क्रोधा	ग		रे				
10.	वज्रिका		ग					
11.	प्रसारिणी			ग				
12.	प्रीति				ग			
13.	मार्जनी	म				ग		
14.	क्षिती		म					
15.	रक्ता			म				
16.	सन्दीपनी				म			
17.	आलापिनी	प						
18.	मदन्ती							ध
19.	रोहिणी						ध	
20.	रम्या	ध						नि
21.	उग्रा		ध				नि	
22.	क्षोभिणी	नि		ध				
	योग		5	5	3	1	4	4
							महयोग = 22	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रे के तीन रूप पूर्व, कोमल और तीव्र क्रमशः 5, 6 और 8 वें क्रम की श्रुतियों पर कहे गये हैं। तीव्रतर रे 9वीं श्रुति पर है वहीं पर शुद्ध ग होने से रे के चौथे विकृत रूप को यहाँ नहीं लिया गया है। ग के कोमल, तीव्र, तीव्रतर, और तीव्रतम ये चार विकृत रूप क्रमशः 8, 10, 11, और 12वें क्रम की श्रुतियों पर कहे गये हैं। 7वीं श्रुति पर पूर्व ग और 13वीं श्रुति पर अतितीव्रतम ग भी है, इन्हीं श्रुतियों पर शुद्ध रे और म होने के कारण उन्हें नहीं लिया गया है। म के तीन-तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम जो कि 14, 15 और 16वें क्रम की श्रुतियों पर हैं। ध के तीन-पूर्व, कोमल और तीव्र क्रमशः 18, 19, 21 क्रम की श्रुतियों पर स्थित है। तीव्रतर ध 22वें क्रम की श्रुति पर है वहीं पर शुद्ध नि भी होने के कारण उसे नहीं लिया गया है। नि के कोमल, तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम ये चार रूप हैं जो कि 21, 1, 2, 3 श्रुतियों पर स्थित हैं। पूर्व नि 20वें क्रम की श्रुति पर है वहीं पर शुद्ध ध होने के कारण उसे नहीं लिया गया है अतः रे के 3, ग के 4, म के 3, ध के 3 और नि के 4 विकृत रूप होने से इनकी कुल संख्या 17 है। यद्यापि 22 विकृत स्वर संगीत-पारिजात में कहे गये हैं, किन्तु मूर्च्छना में क्रमानुसार स्वरों का प्रयोग आवश्यक है इसलिये पाँच विकृत स्वर-पूर्व ग, तीव्रतर रे, अतितीव्रतम ग, पूर्व नि, तीव्रतर ध क्रमशः शुद्ध रे ग म ध नि पर होने के कारण प्रयुक्त नहीं होते। अतः 17x7=119 मूर्च्छनाएँ एक विकृत स्वर वाली हुई।

रे-ग के कुल 16 भेद इस प्रकार हैं- पूर्व रे के साथ पूर्व ग, कोमल ग, तीव्र ग, तीव्रतर ग, तीव्रतम ग ये पाँच भेद हुये। यही पाँच भेद कोमल रे के साथ ग मिलाने से होंगे। तीव्र रे के साथ तीव्र ग, तीव्रतर ग तीव्रतम ग तीन भेद हुये। यही तीन भेद तीव्रतर रे के साथ प्राप्त होंगे अतः रे-ग के कुल (5+5+3+3)=16 विकृत प्रकार प्राप्त हुये।

इसी तरह रे 3 x म 3 = 9, रे-ध के 9, रे 3 x नि 4 = 12, ग-म 15, ग-ध 12, ग-नि 16, म-ध 9, म-नि 12, और ध-नि 16 कुल दो विकृति स्वरों वाले 126 मेल हुए, जिन्हें 7 से गुणा करने पर 882 दो विकृत स्वरों वाली मूर्च्छनाएँ हुईं।

रे-ग-म के 60 रूप इस प्रकार है। पूर्व रे यानी 5वीं श्रुति के साथ पूर्व, कोमल, तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम और अतितीव्रतम ग के ये रूप जोड़ने से 6 प्रकार बने पुनः 6ठे क्रम की कोमल रे के साथ ग के यही 6 रूप होंगे फिर 8वें क्रम की तीव्र रे के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ ग के तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम और अतितीव्रतम तथा 9वें क्रम के तीव्रतर रे के साथ ग के यही चार रूप जोड़ने से 6+6+4+4=20 रे-ग के विकृत स्वरों के साथ तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम म तीन रूप होने के कारण 20x3=60 रूप प्राप्त हुये। इसी तरह रे-ग 16 x ध 3 = 48 रे-ग 16 x नि 4 = 64 रे-म-ध 27, रे-म-नि 36, रे-ध-नि 48, ग-म-ध 45, ग-म-नि 60, ग-ध-नि 64 और म-ध-नि के 48 कुल तीन विकृति स्वरों वाले 500 मेल हुए जिन्हें 7 से गुणा करने पर 3500 सम्पूर्ण मूर्च्छनाएँ हुईं। इसी प्रकार चार विकृत स्वरों वाले 1060 और पाँच विकृत स्वरों वाले 960 कुल 2664 सम्पूर्ण मेल हुए, जिन्हें 7 से गुणा करने पर 18648 सम्पूर्ण मूर्च्छनाएँ हुईं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पूर्ण मेल और मूर्च्छनाएँ

स्वरों का विवरण	मेलो की सं.	मूच्छनाओं की सं.
शुद्ध	1 X 7	7
1. विकृतः रे3+ ग4+म3+ध3+नि4= 17	17X 7	119
2. विकृतः रेग16+रेम9+रेध9+रेनि12+ गम 15+ गध12+गनि16+ म ध 9+ मनि12+धनि16 = 126	126 X 7	882
3. विकृतः रेगम 60+ रेगध48+ रेगनि 64 +रेमध27+ रेमनि 36+ रेधनि48+गमध 45+गमनि60 + गधनि64+ मधनि48 = 500	500 X 7	3500
4. विकृतः रेगमध180+ रेगमनि 240+रेगधनि 256+ रेमधनि144+ गमधनि 240=1060	1060 X 7	7420
5. विकृतः रेगम 60 X धनि16 = 960	960 X 7	6720
	2664 x 7 =	18648
	प्रस्तार	2664 X 5040 = 13426560 = 13426560

इस प्रकार षड्ज ग्राम की 18648 मूर्च्छनाएँ हुई। अहोबकल के शब्दों में-

वसुरब्धी रसाष्टौ च चन्द्रश्चेति मितिर्भवेत्।
भवन्ति मूर्च्छना एता ग्रामेऽस्मिन्षड्जसंज्ञके।।

(सं.पा.श्लो.147 पृ.47)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पूर्ण मेलों की संख्या 2664 को सात स्वरों के अधिकतम प्रस्तार 5040 से गुणा करने पर 13426560 प्रस्तार हुई। अहोबल के शब्दों में-

तावत्संख्याविशिष्टानां तानानां गणना कृता।
खरसेषुरसा नेत्रमब्धिर्वह्निः शशीति च।।

(सं.पा.श्लो.151पृ.47)

षाड़व मेल और मूर्च्छनाएँ

वर्जित करके	स्वरों का विवरण	मेलों की सं.	मूर्च्छना की सं.
	शुद्ध	6 X 6	36
नि	1 विकृतः रे3+ ग4+ म3+ ध3 = 13	13 X 6	78
ध	रे3+ ग4+ म3+ नि4 = 14	14 X 6	84
प	रे3+ ग4+ म3+ ध3+ नि4 = 17	17 X 6	102
म	रे3+ ग4+ ध3+ नि 4 = 14	14 X 6	84
ग	रे 3+ म3+ ध3+ नि4 = 13	13 X 6	78
रे	ग4+ म3+ ध3+ नि4 = 14	14 X 6	84
नि	2 विकृतः रेग16+ रेम9+ रेध9+ गम15 गध12+ मध9 = 70	70 X 6	420
ध	रेग16+ रेम9 + रेनि12+ गम15+ गनि16+ मनि12+ = 80	80 X 6	480
प	रेग16+ रेम9+ रेध 9+ रे नि 12+ गम15+ गध12+ गनि16 म ध 9 + मनि12+धनि16 = 126	126 X 6	756
म	रेग16+ रेध9+ रेनि12+ गध12+ गनि16+ धनि16 = 81	81 X 6	486
ग	रेम 9+ रेध 9+ रेनि 12+ मध 9+ मनि12+ धनि12 = 67	67 X 6	402
रे	गम15+ गध12+ गनि16+ मध9 + मनि12+ धनि16 = 80	80 X 6	480

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षाडव मेल और मूर्च्छनाएँ

वर्जित करके	स्वरों का विवरण	मेलों की सं0	मूर्च्छना की सं0
नि	3 विकृतः रेगम 60+ रेगध 48 + रेमध +27 गमध 45 = 180	180 X 6	1080
ध	रेगम 60+ रेगनि 64+ रेमनि 36 गमनि 60 = 220	220 X 6	1320
प	रेगम 60+ रेगध 48+ रेगनि 64+ रेमध 27+ रेमनि 36+ रेधनि 48+ गमध 45+ गमनि 60+ गधनि 64+ मधनि 48 = 500	500 X 6	3000
म	रेगध 48+ रेगनि 64+ रेधनि 48 + गधनि 64 = 224	224 X 6	1344
ग	रेमध 27+ रे म नि 36+ रेधनि 48 + मधनि 48 = 159	159 X 6	954
रे	गमध 45+ गमनि 60+ गधनि 64+ मधनि 48 = 217	217 X 6	1302
नि	4 विकृतः रेगमध 180	180 X 6	1080
ध	रेगमनि 240	240 X 6	1440
प	रेगमध 180+ रेगमनि 240+ रेगधनि 256+ रेमधनि 144+ गमधनि 240 = 1060	1060 X 6	6360
म	रेमधनि 256	256 X 6	1536
ग	रेमधनि 144	144 X 6	864
रे	गमधनि 240	240 X 6	1440
प	5 विकृतः रेगम 60 X धनि 16 = 960	960 X 6	5760
		5175 x 6 =	31050
		5175 x 720 = 3726000 प्रस्तार = 3726000	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार अहोबल की षाडव-मूर्च्छनाएँ 31050 हुईं। उन्हीं के शब्दों में-

मूर्च्छनानां प्रभेदानां षाडवानाञ्च सर्वशः।
खबाणशून्यचन्द्रैश्च पावकेन मितिर्भवेत्।।

(सं.पा.श्लो.181 पृ.51)

षाडव मेल 5175 को 6 स्वरों के अधिकतम 720 से गुणा करने पर 3726000 प्रस्तार हुईं। अहोबल के शब्दों में-

सप्तशत्या-सविंशत्या गुणितानां मितिर्भवेत्।
शून्यत्रयं रसो नेत्रं सप्त वह्निरिति क्रमात्।।

(सं.पा.श्लो.183पृ.51)

औडव मेल और मूर्च्छनाएँ

स्वरों का विवरण	मेलो की सं.	मूच्छनाओं की संख्या
शुद्ध	15 X 5	75
1. विकृत 17 X 10 = 170	170 X 5	850
2. विकृत 126 X 6 = 756	756 X 5	3780
3. विकृत 500 X 3 = 1500	1500 X 5	7500
4. विकृत 1060 X 1 = 1060	1060 X 5	5300
	3501 x 5	17505
		3501 X 120 = 420120 प्रस्तार = 420120

इस प्रकार अहोबल की औडव-मूर्च्छनाओं की संख्या 17505 हुईं। उन्हीं के शब्दों में-

औडुवानांच सर्वेषां मूर्च्छनानाम्मितिर्भवेत्।
सप्तदश सहस्राणि पंच पंचशतानि च।।

(सं.पा.श्लो.201पृ.53)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

औडव मेल 3501 को 5 स्वरों के अधिकतम 120 से गुणा करने पर 420120 प्रस्तार हुईं। अहोबल के शब्दों में-

सविंशत्या शतेनात्र गुणितानाम्मितिर्भवेत्।
शून्यं नेत्रं शशी शून्यं नेत्रोदधीति संख्यया।।

(सं.पा.श्लो.203 पृ.54)

(4) कटपयादि संज्ञा : राग लक्षण नामक ग्रंथ में 72 मेलों के स्वर ज्ञात करने की नवीन विधि दी गयी है जिसे कटपयादि संज्ञा कहा गया है। यह एक ऐसी विधि है जिससे केवल मेल के नाम से ही उसकी क्रम संख्या ज्ञात हो जाती है और क्रम संख्या के आधार पर उसके स्वरों का ज्ञान हो जाता है। इसके लिए प्रत्येक मेल से पूर्व दो अक्षर लगा दिए गए हैं जैसे कल्याण से पूर्व मेच, शंकराभरण के पूर्व धीर, हरप्रिया के पूर्व खर, भैरवी के पूर्व हनुमत, काम्भोजी के पूर्व हरि आदि। इन दो अक्षरों की कौन सी संख्या है यह कटपय - विधि द्वारा ज्ञात किया जाता है। कटपय -विधि में चार अक्षर होते हैं- क, ट, प और य। इन अक्षरों में से 'क' का अर्थ है कवर्ग और चवर्ग, दोनों को मिलाकर नौ अक्षर और शून्य। 'ट' का अर्थ है टवर्ग और तवर्ग के नौ अक्षर और शून्य। 'प' का अर्थ है पवर्ग के पाँच अक्षर तथा 'य' का अर्थ है य से ह तक के आठ अक्षर। आगे चलकर के. व्ही गिरमाजी राव ने कटपादि संज्ञा से तालों की त्रिस्त्र चतस्त्र, खण्ड, मिश्र और संकीर्ण जातियो को भी समझाया है।

यदि प्राप्त होने वाली संख्या 36 से अधिक है तो उसमें से 36 घटाना पड़ेगा क्योंकि 36 तक तो शुद्ध-मध्यम वाले मेल हैं उससे आगे (37 से 72 तक) तीव्र-मध्यम वाले मेल होते हैं। आगे तीन उदाहरण विषय को स्पष्ट करने के लिए दिये जा रहे हैं।

पहला उदाहरणः- अब यदि जैसे कटपय-विधि से मेचकल्याण की संख्या ज्ञात करनी हो तो 'प' से पाँचवाँ अक्षर 'म' है जिसे इकाई में रखेंगे और 'क' से गिनने पर छठा अक्षर 'च' है अंकानामू 'वामतो-गतिः' (संख्याओं को बाई ओर से गिनना) के आधार पर जिसे दहाई में लगाएँगे अतः यह संख्या 65 प्राप्त होती है बस यही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कल्याण की संख्या है। धीर-शंकराभरग के 'ध' की संख्या 'ट' से गिनने पर 9 हुई जिसे इकाई में लगाएँगें और 'य' से गिनने पर 'र' की संख्या 2 है जिसे दहाई में लगाएँगे अतः 29 क्रम का धीर-शंकरा-भरण है। इसी प्रकार हनुमत तोड़ी के हनु में य से गिनने पर ह आठ हुआ जिसे इकाई में लगाएँगे नु ट से गिनने पर दसवाँ अक्षर यानि शून्य है जिसे दहाई में लगाँगे। दायीं ओर शून्य का कोई अर्थ नही होता है इसलिए हनुमत तोड़ी की संख्या 8 हुई। इसी प्रकार शेष मेलों की संख्या भी प्रारम्भ के दो अक्षरों से ज्ञात की जा सकती है।

दूसरा उदाहरणः- माया-मालवगौल को देखें। 'म' पवर्ग का पाँचवाँ अक्षर है जिसे इकाई में रखेंगे और 'य' तो पहला ही है जिसे दहाई में रखने पर 15 संख्या प्राप्त हुई। अब छह का तीन बार पहाड़ा पढ़ते हैं तो 18 प्राप्त होता है जिसमें 15 समाहित है। अतः पूर्वांग का तीसरा यानी भैरव अर्थात् कोमल-ऋषभ, शुद्ध-गांधार और शुद्ध-मध्यम प्राप्त हुए। उत्तरांग के लिए दूसरे वर्ग के बाद 13 से 15 तक गिनते हैं तो क्रम संख्या 3 प्राप्त होती है अर्थात् कोमल -धैवत और शुद्ध-निषाद प्राप्त होते हैं। इस प्रकार माया मालवगौल के स्वर भैरव के हुए।

तीसरा उदाहरणः- इसमें शुभपन्तु-वराली को देखते हैं। 'य' से गिनने पर 'श' पाँचवाँ अक्षर है, 'प' से गिनने पर 'भ' चौथा है अतः अंकानाम् वामतो-गतिः के अनुसार 45 संख्या प्राप्त हुई। चूँकि 36 से 45 अधिक है अतः इसमें से 36 घटाना होगा। जिससे संख्या 9 प्राप्त हुई। यह संख्या छह के पहाड़े में दूसरे क्रम पर प्राप्त होती है अतः पूर्वांग में दूसरा क्रम सा <u>रे</u> <u>ग</u> म होगा तथा 7 से गिनने पर 9 तीसरे क्रम पर आता है अर्थात् उत्तरांग में तीसरा यानी भैरव होगा। अब चूँकि 45 में से 36 घटाया गया है अतः भैरवी में तीव्र-मध्यम लगाना होगा और उत्तरांग में भैरव अर्थात् तोड़ी के स्वर (सा <u>रे</u> <u>ग</u> मं प <u>ध</u> नि) शुभपन्तुवराली के हुए।

(5) ताल प्रस्तार : संगीतशास्त्र में ताल प्रस्तार का उल्लेख सर्वप्रथम विस्तृत एवं स्पष्ट रीति से शार्गदेव के संगीत रत्नाकर, राणा कुम्भा के संगीतराज व लक्ष्मीनारायण के संगीत सूर्योदय में प्राप्त होता है। ताल के प्लुत, गुरु, लघु, द्रुत ये चार अंग राणाकुंभा और शार्गदेव ने मानकर बड़े अंग के अधिकतम कितने प्रस्तार बनते है और उनमें द्रुत, लघु आदि किस-किस क्रम पर होंगे। यह विस्तार पूर्वक दिया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मी नारायण ने चार के अतिरिक्त 5वाँ अंग अनुद्रुत भी दिया हैं। जिससे चतुरंग के स्थान पर पंचांग प्रस्तार बने हैं। ताल के 19 प्रत्यय होते हैं।

(1) प्रस्तार (2) संख्या (3) नष्ट (4) उद्दिष्ट (5) पाताल आदि। राणाकुम्भा द्वारा लिखित बृहद ग्रन्थ संगीतराज वाद्यरत्न कोष के अन्तर्गत ताल प्रत्ययों पर विस्तृत विचार किया गया है। 'घनोल्लास' में प्रत्ययों पर 177 श्लोक का एक 'परीक्षण' है। गणित का अधिकतम उपयोग ताल प्रस्तारों में हुआ है।

इस प्रकार हमने देखा कि मध्ययुग में गणित सम्बन्धी विवरण स्वर-प्रस्तार, वीणा पर स्वरों की स्थापना, संपूर्ण, षाडव, औडव मेल और उनसे विपुल संख्या में मूर्च्छनाओं की प्राप्ती की गई है।

सोमनाथ के 960 मेलों में कहीं-कहीं क्रमानुसार स्वर नहीं थे। जिसका व्यंकटमखी ने अ इ उ मात्रा भेद से अपने 72 मेलों में निवारण किया। हिंदुस्तानी संगीत में अहोबल का जितना नियंत्रण गणित पर दिखाई देता है, वह उसके मेलों की संख्या और उनसे प्राप्त मूर्च्छनाओं द्वारा स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है।

शार्गंदेव ने कुल 56 मूर्च्छनाओं से 5040 को गुणा करके 282240 संख्या प्राप्त की है (सं.र.1,4श्लो034), जबकि अहोबल ने कुल सम्पूर्ण मूच्छनाएँ 18648 से गुणा न करके 2664 मेलों को 5040 से गुणा कर 13426560 संख्या प्राप्त की है।

कटपयादि संज्ञा से जैसे कर्नाटकी संगीत में मेलों के स्वर ज्ञात किये जाते हैं, ऐसी ही हिन्दुस्तानी संगीत के लिए भी यदि कोई विधि हो सके तो अच्छा है। शास्त्रकारों को इस पर विचार करना चाहिए।

ताल प्रत्ययों को लेकर तो बहुत ही उदासीनता है। ताल के जानकार लोग भी इस विषय में रूचि नहीं दिखाते। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में कितनी दुर्लभ विधियाँ दी गई हैं उनका हमें जहाँ तक हो सके उसका उपयोग करना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहायक ग्रन्थों की संकेत सूची
(साभार)

1. अभि. रा. मं. – अभिनव राग मंजरी : पं. विष्णु शर्मा, बालचन्द्र सीताराम सुकथनकर, सन् 1921 ई.

2. चतु. प्र. – चतुर्दण्डी प्रकाशिका : व्यंकटमखी, पं. एस. सुब्रह्मण्यम शास्त्री ; म्यूज़िक अकादमी, मद्रास, 1934

3. ध्व. सं. – ध्वनि और संगीत : प्रो. ललित किशोर सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी (द्वितीय संस्करण–1962)

4. ना. शा. भाग-4 – नाट्यशास्त्र : भरत मुनि, ओरिएण्टल इं. बड़ौदा – 1964

5. बृह. – बृहद्देशी : मतङ्ग, के. सांबशिव शास्त्री, त्रावणकोर संस्कृत सीरीज़ – 1928

6. भ. सं. सि. – भरत का संगीत सिद्धान्त : कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति, सूचना विभाग (उ. प्र.)–1959

7. भात. सं. शा. – भातखण्डे संगीत शास्त्र : पं. विष्णु नारायण भातखण्डे, अनुवादक-विश्वम्भर नाथ भट्ट, सुदामा प्रसाद दुबे, संगीत कार्यालय हाथरस (उ.प्र.) :- भाग–1 (1964), भाग–2 (1969), भाग–3 (1968), भाग–4 (1957,1969)

8. भा. ता. शा. वि. - भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन- डॉ. अरूण सेन प्रकाशकः मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, © मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वितीय संस्करण 1989

9. भा. सं. इ. – भारतीय संगीत का इतिहास – ठाकुर जयदेव सिंह, प्रथम संस्करण – 1994

10. भा. स्मृ. ग्र. – भातखण्डे स्मृति ग्रन्थः श्री प्रभाकर नारायण चिंचोरे, (सन् 1960 ई. का 100वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में) म.प्र.–1966

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

11. रस कौमुदी – श्रीकण्ठ, ए. एन जानी, ओरि. इन्स्टी. बड़ौदा-1963

12. रा. त. – रागतरंगिणी : लोचन, सम्पादक – डॉ शशिनाथ झा, प्रथम संस्करण – 1981

13. रा. वि. – राग विज्ञान : पं. विनायक राव जी पटवर्धन; मधुसूदन विनायक पटवर्धन, जमखिण्डी – करवाड़ा।
भाग – 1 अष्टम संस्करण 1962
भाग – 2 अष्टम संस्करण 1961
भाग – 3 सप्तक संस्करण 1967
भाग – 4 चतुर्थ संस्करण 1959
भाग – 6 द्वितीय संस्करण 1964

14. रा. मा. – राग माला : यशोदानन्दनशुक्ल, काशी प्रसाद–यशोदानन्दन जायसवाल शोघ संस्थान पटना–1976

15. सं. कौ. – संगीत कौमुदी–प्रो. वी. एस. निगम, भाग–2 (1985), भाग– 3 (1993), भाग –4 (2002)

16. सं. चि. – संगीत चिन्तामणि : आचार्य बृहस्पति, लक्ष्मी नारायण गर्ग, संगीत कार्यालय हाथरस, प्रथम संस्करण 1966, द्वितीय संस्करण–1976 (संशोधित)

17. सं. पा. – संगीत पारिजात : पं. अहोबल, कवि कलिन्द, संगीत कार्यालय, हाथरस–1971

18- सं. र. – संगीत रत्नाकर : पं. सुब्रह्मण्यम शार्ङ्गदेव आड्यार लाइब्रेरी, द्वितीय संस्करण, भाग-1(1943), भाग-2 (1959), भाग-3 (1951) एवं भाग-4 (1953)–

19- सं. र. संगीत रत्नाकर : सुभद्रा चौधरी (भाग-1, प्रथम संस्करण-2000 ,भाग-2] प्रथम संस्करण-2002)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

20- सं. रा. – संगीत राज : महाराणा कुम्भा डॉ. प्रेम लता शर्मा, का. हि. वि.वि., वाराणसी – 1963

21- सं. श. – संगीत शास्त्र : के. वासुदेव शास्त्री, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश लखनऊ, द्वितीय आवृत्ति–1968

22- सं. संच. – संगीत संचयनः डॉ. सुभद्रा चौधरी कृष्ण अजमेर ब्रदर्स।

23- संगीताञ्ज्जलि – पं. ओमकार नाथ ठाकुर
भाग – 2 प्रथम आवृत्ति – फरवरी – 1954
भाग – 3 प्रथम आवृत्ति – अप्रैल – 1955
भाग – 4 अप्रैल – 1957
भाग – 5 प्रथम आवृत्ति 1958
भाग – 6 प्रथम आवृत्ति 1962

24. हृदय कौतुक – हृदय नारायण देव–शक 1840, सन् 1918 ई.

25. Matang and his work Brhaddesi – Dr. Prem Lata Sharma - 1995

26. Universal History of Music – S.M. Tagore - 1963

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम	: डॉ0 तेज सिंह टाक
पिता	: स्व. किशन सिंह
माता	: श्रीमती भगवान कौर
जन्म	: 11 दिसम्बर सन् 1945 ई0
जन्म स्थान	: ग्राम- फुल्लोमिट्ठी, जनपद-बठिण्डा (पंजाब)
शिक्षा	: प्रारम्भिक-अन्धविद्यालय अमृतसर, पंजाब उच्च-गांधर्व मण्डल, नई दिल्ली पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़
शोध	: बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ0प्र0) जूनियर रिसर्च फेलोशिप प्राप्त (1973-78)
प्रकाशित कृतियाँ	: संगीत : विज्ञान एवं गणित, सुबोध संगीत शास्त्र एवं सरल संगीत शिक्षा भाग-1,2,3, नेट संगीत
अन्य	: सेमिनार प्रतिभागिता-

1. मैक्समुलर भवन, कलकत्ता
2. अन्धविद्यालय, अहमदाबाद
3. हम्पी विश्वविद्यालय, हम्पी (कर्नाटक)
4. राज्य स्तरीय पुरस्कार से सम्मानित (2006)
5. एशिया में ब्रेल लिपि का स्तर (2008)

सम्प्रति	: भातृखण्डे संगीत संस्थान (सम विश्वविद्यालय), लखनऊ में सन् 1979 ई0 से प्रारम्भ में शास्त्र एवं पश्चात् में व्यवहार तथा विगत् दस वर्षों से शास्त्र शिक्षक से रूप में सेवारत।
पता	: 503/322 बरौलिया, डालीगंज, लखनऊ – 226020 दूरभाष (0522) 2740630, 09621405080

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

RADHA PUBLICATIONS

4231/1, Ansari Road, Daryaganj
New Delhi-110002
Phones : 23247003, 23254306
website. radhapublications.com
Email : radhapublications@rediffmail.com

ISBN 81-7487-779-7

9788174877796

₹ 650/-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi